“LOKGEETON KE STREE SWAR : AWADHI AUR MANIPURI LOKGEETON KE VISHESH SANDARBH MEIN”

A Thesis submitted during 2012 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a Ph. D. degree in Department of Hindi School of Humanities.

By

AHONGSHANGBAM SUNDER SINGH

09HHPH11

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

(P.0.) Central University

Prof. C. R. Rao Road

Gachibowli

Hyderabad - 500 046

Andhra Pradesh

(INDIA)

लोकगीतों के स्त्री स्वर : अवधी और मणिपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

2012

शोधार्थी

अहोंगशांगबम सुन्दर सिंह

निर्देशक

डॉ. गरिमा श्रीवास्तव

असोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद – **500 046**

विभागाध्यक्ष

प्रो. रवि रंजन

हिन्दी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद – **500 046**

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the thesis entitled ***"LOKGEETON KE STREE SWAR : AWADHI AUR MANIPURI LOKGEETON KE VISESH SANDARBH MEIN" (लोकगीतों के स्त्री–स्वर : अवधी और मणिपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में)*** Submitted by ***AHONGSHANGBAM SUNDER SINGH*** bearing Reg. No. 09HHPH11 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

The thesis has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

।। Countersigned ।।

Head of the Department   Dean of the School

<u>DECLARATION</u>

I, ***AHONGSHANGBAM SUNDER SINGH*** hereby declare that this thesis entitled ***"LOKGEETON KE STREE SWAR : AWADHI AUR MANIPURI LOKGEETON KE VISESH SANDARBH MEIN"*** ***(लोकगीतों के स्त्री–स्वर : अवधी और मणिपुरी लोकगीतों के विशेष सन्दर्भ में)*** Submitted by me under the guidance and supervision of Dr. Garima Srivastava is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Name : ***AHONGSHANGBAM SUNDER SINGH***

(Signature of student)

Regd. No. : **09HHPH11**

Date :

अ नु क्र म णि का

			पृ. सं.
भूमिका			i-vi
1. पहला अध्याय	:	लोक संस्कृति और भारतीय समाज –	12-37
2. दूसरा अध्याय	:	लोकगीत एवं स्त्री स्वर –	38-59
3. तीसरा अध्याय	:	अवधी और मणिपुरी संस्कार–गीतों के स्त्री–स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन –	60-107
4. चौथा अध्याय	:	अवधी और मणिपुरी श्रम–गीतों के स्त्री स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन –	108-138
5. पाँचवा अध्याय	:	ऋतु–सम्बन्धी अवधी एवं मणिपुरी लोक–गीतों के स्त्री–स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन –	139-192
6. उपसंहार	:		193-198
7. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	:		199-201
8. सहायक ग्रंथ सूची	:		202-205
9. परिशिष्ट	:		206-220

भूमिका

शोध एवं अध्ययन केन्द्रों में स्त्री सम्बन्धी साहित्य आज अनुसंधान के प्रमुख विषयों में से एक के रूप में उभर कर सामने आया है। साहित्य एवं समाजशास्त्रीय विमर्श के कई क्षेत्रों में शब्दों के भीतर छिपे या प्रमुख अर्धसत्यों से इतर सत्यों और उनमें छिपे आर्थिक रहस्यों को खोजने के प्रयास चल रहे हैं। पाठ के 'मेटाक्रिटिसिज्म' की प्रक्रिया एवं प्रविधि बड़े पैमाने पर अपनाई जा रही है। साहित्य में भी लोकगीतों और उनमें अभिव्यंजित शाब्दिक अर्थच्छायाओं के माध्यम से झाँकते चेहरों की गतियों, स्थितियों, राग-विराग, दुःख-सुख को पढ़ने का प्रयास हो रहा है। इस प्रयास से संभव है, स्त्री के उन स्वरों को जानने-सुनने में मदद मिले। जिन्हें इतिहास ने मौखिक परंपरा के खाते में डालकर लगभग उपेक्षित कर दिया है। जब कि वास्तविकता यह है कि लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियों ने सदियों से आत्माभिव्यक्ति की है। इन लोकगीतों के माध्यम से ही स्त्री जीवन के विविध संदर्भों, विसंगतियों, विडंबनाओं और वेदनाओं के मूल तक पहुँचा जा सकता है।

लोकगीतों में सदियों से पितृसत्ता और पुरूष वर्चस्व की शृंखला में जकड़ी स्त्रियों के स्वरों को, उनकी आत्मा को अभिव्यक्ति मिली। लोकगीतों का विराट और मुक्त आँगन ही वह जगह रही है जहाँ पुरुष वर्चस्व, पितृसत्तात्मक जकड़न स्वयं के द्वारा आरोपित रूढ़ियों से परे जाकर स्त्रियों ने आत्मसाक्षात्कार किया। लोकगीत का क्षेत्र ही वह क्षेत्र रहा है "जहाँ कोमल हास-परिहास का भी वे एक रणनीति के तहत उपयोग करती रही हैं, आज से नहीं आदिकाल से। यह बात अलग है कि उनकी वाचिक परंपरा को कोई अपना संकलनकर्ता, कोई अपना व्यास नहीं मिला। जो कुछ सुरक्षित रह सका, वह केवल धर्म के आश्रय से, धर्मनिरपेक्ष सारी चीजें संतरणशील रहीं।" (स्त्रीत्व का मानचित्र : लेख-लोकसाहित्य का वातायन - अनामिका, पृ. 39)

स्त्री की जो छवि पारंपरिक रूप से पुरुष के मन में स्थित होती है उसमें वह उसके कोमल मधुर भावों को लहराती, दुलराती छवि है। साहित्य में भी स्त्री की यही छवि प्रचलित रही है जिसके प्रति स्त्रियों का अपना मानसिक अनुकूलन भी हुआ। स्त्रियों ने भी अपने आपको इसी छवि से परिभाषित मान लिया। लोकगीतों की रचयिता प्रायः स्त्रियाँ रही है, साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि जिन गीतों की रचना स्वयं स्त्रियों ने नहीं की उन्हें भी धुन और राग में स्त्रियों ने ही पिरोया। लोकगीतों में उनके हृदयगत भाव, तमाम वेदनाएँ असीम मन की कल्पनातीत उड़ानें, सभी कुछ कंठ के राग बनकर निकल पड़े। इसी वजह से राग एवं भाव की जैसी सहभागिता लोकगीतों में देखने को मिलती है, वैसी अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। लोकगीतों में स्त्रियों ने अपनी आकांक्षाओं की ईमानदार अभिव्यक्ति की है। उनमें स्त्रियोचित निष्पक्षता और निडरता है। हालाँकि मुख्य धारा के साहित्य में भी स्त्रियों की सक्रिय और विशिष्ट भागीदारी रही है, लेकिन वहाँ उनकी उपस्थिति कमोवेश पितृसत्ताक मान्यताओं और व्याख्याओं से परिभाषित हुई है, साथ ही उनके रचे साहित्य की उपेक्षा भी हुई है। लोकगीत ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्त्रियों ने स्वयं को सार्थक, स्वायत्त और ज्यादा पुरजोर ढंग से पहचानने, अपने स्वर को अभिव्यक्त करने का साहस किया है। उनकी अभिव्यक्ति यहाँ सत्यतापूर्ण है क्योंकि उनमें भाव और अभिव्यक्ति के बीच बनाव और निखार की बौद्धिक कृत्रिमता नहीं है, लगभग निरक्षर स्त्री लोकगीतकारों ने अपने मनोभावों को उसमें ढाला और गाया है। स्त्री का एकाकीपन, स्त्री होने के कारण जिस दमन और उत्पीड़न का शिकार उसे बनना पड़ना है – उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में लोकगीत एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। ये लोकगीत चाहे वे पूर्वी भारत के हों या सुदूर मणिपुर के स्त्री मन के उल्लास के गीत हैं – मन के दबे-छिपे भावों व अतल में डूबी वेदनाओं के साथी हैं। कई लोकगीतों में स्त्री प्रकृति के विभिन्न उपादानों को संबोधित करती है – जैसे कोयल, पपीहा, कौआ, तोता, बादल, वृक्ष – तो ये संबोधन अनायास नहीं है, बल्कि प्रकृति के इन उपादानों के प्रति स्त्री का अटूट विश्वास ही इसके पीछे है। मनुष्येतर प्राणियों से स्थापित करने की प्रकृति और मनुष्य के प्रति एकात्मता स्थापित करने के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए। प्रकृति के विभिन्न अवयव ही स्त्री की पीड़ा एवं वेदना के प्रति सहिष्णु हो सकते हैं – यही विश्वास ऐसे संबोधनों का कारण है। ये मनुष्येतर उपादान केवल काव्य रूढ़ि या प्रतीक मात्र नहीं हैं। वे ऐसे साधन भी हैं जिनसे एक स्त्री अपनी व्यथा को बाँटने में अपनी भावनाएँ बाँट सकने में सक्षम अनुभव करती

है। प्रकृति के इन अवयवों से कुछ भी कहने में वह हिचक या संकोच नहीं करती। साथ ही चिड़िया, कौआ, तोता जैसे प्रतीकात्मक प्रयोग आज़ादी की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। पक्षियों की दुनिया की स्वच्छन्दता, स्वतंत्रता और विषम स्थिति में पिंजरे में कैद हो जाने की परवशता से वे सहज तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं। इनके माध्यम से वे अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति अकृत्रिम और अकुण्ठ भव से कर ले जाती हैं। वस्तुतः लोकगीत स्त्रियों के लिए वह माध्यम है जहाँ उनके लिए स्वाधीनता और स्वच्छन्दता है, उन्मुक्तता है। कल्पना में, लोकगीतों की यह दुनिया उसकी अपनी दुनिया है, वह उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं का संसार है। जहाँ वह पुरुष वर्चस्ववादी समाज और ठोस विसंगतियों से परे जाकर अपने लिए कल्पना का संसार रचती है जहाँ वह गीतों में कभी पति, कभी पिता, कभी पितृसत्तात्मक सोच को वहन करती सास, ननद, भाभी के तानों-रिश्तों को गाकर ही सही अभिव्यक्त तो कर सकती है। जीवन की विषम परिस्थितियों में जी रही श्रमशील स्त्री, पुत्र लालसा में तड़पती, सास-ससुर की प्रताड़ना से परास्त स्त्री के लिए लोकगीत उसका अपना वैकल्पिक विश्व है। यहाँ वह कल्पना के स्तर पर ही सही-शमन कर सकती है। ऐसी भावनाएँ जिनका शमन यथार्थ जीवन में हो सकना संभव नहीं। उदाहरण के लिए किसी स्त्री के प्रेम की अतृप्त लालसा का शमन विभिन्न मनोसामाजिक कारणों से वास्तविक जीवन में कई बार नहीं हो पाता, लेकिन लोकगीत उस स्त्री के विरेचन के लिए विकल्प के तौर पर उपस्थित हैं। विवाह के अवसर पर पूर्वी भारत में गाये जानेवाले गाली (गारी) गीतों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। गालीगीतों में वह खुले रूप से यौन-प्रतीकों एवं शब्दों का प्रयोग करती है - इसके साथ ही दमित और सलज्ज स्त्री भी दूसरे पक्ष के पुरुष-वर्ग को 'गाली गीतों' में भरपूर चुनौती देती है। वाचिक स्तर पर ही सहीं, स्त्रियों का निजी स्वत्व प्रखर रूप में उभर कर सामने आता है।

इन लोकगीतों के माध्यम से स्त्री अपने श्रम-जनित दुखों का परिहार भी करती है। रोपाई, बोआई, जाँत, कटनी आदि कार्य करते समय स्त्रियाँ कोई न कोई गीत गाती हैं। लोकगीत उसके श्रम या वेदना के परिहार का माध्यम बनते हैं। कई बार जो बात किसी से नहीं कर पाती, वह लोकगीतों के माध्यम से कह डालने में सक्षम हो जाती है।

उदारीकरण, बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के इस समय में मूल्यों का निरंतर ह्रास हुआ है इससे सामाजिक और राजनीतिक संरचनाएँ काफी परिवर्तित हुई है। लोक-संस्कृति का क्षेत्र भी

इससे अछूता नहीं है। पारम्परिक लोकगीत – विशेषकर मौखिक साहित्य की परंपरा लुप्त होने के कगार पर है – लोक संस्कृति पर बाजार ने अपना आधिपत्य जमा लिया है – इसने स्त्री को उसकी पारम्परिक जमीन से विस्थापित कर दिया है। ऐसे में लोकगीतों के संग्रह एवं प्रस्तुति का कार्य स्त्री और संस्कृति संबंधी शोध एवं अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि – "स्त्री द्वारा रचित साहित्य (जिसमें मौखिक साहित्य सम्मिलित है), स्त्री भाषा ने, न सिर्फ पितृसत्तात्मक भाव और मूल्यबोध में सेंध लगाई हैं बल्कि स्त्री की दृष्टि से देखे, सुने–गुने जीवन को पाठकों तक पहुँचाकर पाठकीय रुचि को भी परिष्कृत किया है . . . . अकादमिक शोध केंद्रों और आलोचकों की लंबी उपेक्षा के बावजूद, इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में, रचना और आलोचकों के स्तर पर स्त्रीवादी सिद्धान्त एक परिपक्व अनुशासन के तौर पर उपस्थित हैं। पश्चिम और भारत के शोध और क्षेत्रगत अकादमिक अध्ययन केन्द्रों में स्त्री रचना, स्त्री–पाठ और स्त्री भाषा पर अनेक दृष्टियों से अनुसंधान और आलोचना की प्रक्रिया चल रही है। स्त्री के कहे और लिखे की उपेक्षा एक सोची समझी रणनीति का हिस्सा है। जो अब तक झेला गया, पर कहा नहीं गया, जो कहा गया पर सुना नहीं गया, स्त्री की आत्माभिव्यक्तियाँ उसी देखे हुए को दिखाने की पुरजोर कोशिश के रूप में हमारे सामने आई हैं। अब 'स्त्री' एक व्यक्ति के रूप में सामने उभरी है, एक व्यक्ति जो वर्ग, नस्ल/रंगभेद, लिंग के अनुभव जीता है, इसका प्रभाव यौनिकता और सामाजिक संबंधों पर भी पड़ता है।" (स्त्री आत्मकथा : सिद्धान्त विचार–लेख, गरिमा श्रीवास्तव, बहुवचन पत्रिका (म. गां. अं. हिं. वि. वि. जनवरी–मार्च, 2010 अंक पृ. 125)

आज राजनीति, आर्थिक परिवर्तन और विश्वग्राम की अवधारणा के साथ–साथ सौंदर्यशास्त्रीय अभिरुचियाँ भी बदल रही हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हाशिए के विमर्श केन्द्र में आने शुरू हुए हैं, जिसमें स्त्री पाठों को नए सिरे से आलोचना ने साहित्य और समाज सैद्धांतिकी के संदर्भ में परिवर्तनकारी भूमिका अदा की है। स्त्री के कहे और लिखे के पाठ और सैद्धांतिकी की माँग ने स्त्री स्वरों की पहचान, स्त्री यौनिकता और स्त्री जीवन चक्र से आलोचकों को रू–ब–रू कराया। आज लैंगिक अध्ययन केन्द्रों, क्षेत्रीय एवं तुलनात्मक अध्ययन केन्द्रों में ऐसे 'टेक्स्ट' की बड़ी भारी माँग है जो बदलते शैक्षिक आग्रहों और आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और व्यक्ति और समाज के विविधमुखी अनुभवों को प्रामाणिकता में प्रस्तुत करे। पश्चिमी आलोचकों जिनमें मेरी एलयान (थिंकिंग अबाउट वूमन) ऐलेन मोयर्स (लिटरेरी वूमन) एलेन

शोवाल्टर (ए लिटरेचर ऑफ़ देयर ओन) प्रमुख हैं – ने पितृसत्ता और स्त्री स्वरों की उपेक्षा का सम्बन्ध उजागर किया। इन आलोचकों का कहना है कि – “साहित्येतिहास और आलोचना के ध्यान में यह बात आई ही नहीं, कि प्रारंभिक काल से ही स्त्रियाँ अपनी रचनाओं के साथ अनिवार्यतः उपस्थित रही हैं – चाहे वे लिखित हों या मौखिक, हाशिए के स्त्री स्वर हमेशा से मौजूद रहे हैं।” (वही, पृ. १२८) भारत के संदर्भ में भी यही सत्य है। विविध प्रान्तों में स्त्री स्वरों की उपस्थिति जो लोकगीतों में मिलती है – उनको एकत्र करना न सिर्फ स्त्रियों की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का अनुसंधान करने में सहायक हो सकता है बल्कि दो भिन्न प्रान्तों की मौखिक और विस्मृत साहित्य परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन समाज वैज्ञानिक शोध निष्कर्षों को नया आयाम भी प्रदान कर सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध इसी दिशा में एक प्रयास है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रबंध को भूमिका के अतिरिक्त पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में लोक संस्कृति और लोक साहित्य की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए भारतीय समाज में अवधी और मणिपुरी स्त्री की स्थिति पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में लोकगीत का स्वरूप और परिभाषाओं का विवेचन किया गया है, साथ-साथ लोकगीत और स्त्री स्वर के अन्तर्सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है। साथ ही अवधी और मणिपुरी जन-जीवन के प्रमुख संस्कार-जन्म, विवाह एवं मृत्यु के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में स्त्री-स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। चौथे अध्याय में श्रम गीत को स्पष्ट करते हुए अवधी और मणिपुरी श्रम-गीतों में स्त्री-स्वरों का तुलनात्मक आधार पर विवेचन किया गया है। पाँचवें अध्याय में ऋतु-सम्बन्धी अवधी और मणिपुरी लोकगीतों में स्त्री-स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अंत में उपसंहार के रूप में अध्ययन की उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जिन विद्वानों का सहयोग मिला, उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम मैं अपनी शोध निर्देशिका डॉ. गरिमा श्रीवास्तव जी के प्रति कृतज्ञ तथा आभारी हूँ, उन्होंने विषय निर्धारण से लेकर प्रबन्ध को पूरा होने तक मार्गदर्शन किया। उन्होंने मेरी हर कठिनाई दूर की और इस प्रबंध को सुगठित और सुव्यवस्थित बनाने में सहयोग दिया।

मैं अपने गुरु डॉ. रामानुज अस्थाना जी का आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ

जिन्होंने अवधी लोकगीतों के संकलन एवं अवधी लोक–साहित्यकारों से मिलाने में सहयोग दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मैं यह काम कर सका।

क्षेत्र कार्य सामूहिक कार्य है। मणिपुर में क्षेत्र कार्य के दौरान मेरे पिताजी, भैया, गाँव के मुखिया, विद्वानों एवं मित्रों ने जो सहयोग किया है मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। सबसे ज्यादा मैं मणिपुर के उन स्त्री–पुरुषों का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने लोकगीत संकलन में मेरी मदद की तथा मौखिक परम्परा के गीतों को उपलब्ध कराया।

दिलीप पिस्तुलकर (कम्प्यूटर ऑप़रेटर, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा) ने शोध प्रबन्ध की पाण्डुलिपि को अत्यंत अल्पावधि में शुद्ध, सुंदर एवं आकर्षित रूप में टंकित किया है। उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

हैदराबाद, **(अहोंगशांगबम सुन्दर सिंह)**

दि.

1. पहला अध्याय : लोक–संस्कृति और भारतीय समाज

1.1 लोक–संस्कृति

1.2 लोक–साहित्य : स्वरूप और परिभाषा

1.3 लोक–साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता

1.4 भारतीय समाज और स्त्री

1.5 अवधी समाज और स्त्री

1.6 मणिपुरी समाज और स्त्री

1. पहला अध्याय : लोक–संस्कृति और भारतीय समाज

1.1 लोक–संस्कृति :

किसी भी देश की लोक–संस्कृति उसकी जातीय स्मृति का रूपक होती है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक–संस्कृति के सम्बन्ध में लिखा है कि "लोक संस्कृति के अन्तर्गत जनजीवन से सम्बन्धित जितने भी आचार–विचार, रहन–सहन, विधि–विशेष, प्रथ–परम्परा, धर्म–कर्म, पूजा–पाठ, खान–पान, वेश–भूषा और मूढ़ाग्रह अनुष्ठान आदि हैं वे भी इसके अन्तर्गत आते हैं।"[1] श्रीरामनाथ 'सुमन' ने भी लोक–संस्कृति के सम्बन्ध में लिखा है कि – "जीवन अगणित तरंगों में बहाः अगणित वाद्यों में बजा और अगणित गीतों में फूट उठा। यही सब समष्टिगत आत्म–प्रकाश लोक–संस्कृति है। इसमें हृदय का उद्रेक अतः स्वाभाविकता अधिक है। इसमें मानव–हृदय का अमृत अकृत्रिम रूप में विद्यमान है।"[2] डॉ. देवी लाल सामर के शब्दों में "पूर्ण रूपेण वसुधा की संस्कृति लोक संस्कृति ही है। किसी भी राष्ट्र की साहित्यगत, समाजगत, कलागत, धर्मगत एवं विज्ञान गत आचरण प्रक्रिया में एक स्वाभाविक मानवीय साम्य मिलता है यही साम्य लोक–संस्कृति का मूल तत्व है।"

भारतीय मूल संस्कृति के रूप यहाँ की लोक–संस्कृति में देखा जा सकता है। "भारतीय जीवन के अनन्त स्त्रोतों को मूल उद्गम लोक–संस्कृति ही है। संस्कृति शब्द बहुत ही व्यापक और गंभीर अर्थ का बोधक है। मेरी समझ में सुधरे हुए, सँवारे हुए संस्कारों और आचार–विचारों का समुच्चय ही संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का संस्कार लोक–संस्कृति द्वारा ही हुआ है। यह लोक–संस्कृति अपने प्रकृत रूप में आज भी हमारे गाँवों, जंगलों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए है।"[3] लोक–संस्कृति की आत्मा गाँवों और जंगलों में रहनेवालों की रीति–रिवाजों, लोक–गीतों और आचार–विचारों में निहित है। भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक–संस्कृति है। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ ने लिखा है कि "भारतीय लोक–संस्कृति की आत्मा भारतीय साधारण जनता है, जो नगरों से दूर गाँवों, वन–पर्वतों में

निवास करती है। 'आत्मौपम्यन सर्वत्र' यही भारतीय लोकसंस्कृति का सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त का स्वभावतः पालन करती हुई भारतीय साधारण जनता ब्रह्मतत्व और मायातत्व को अनजाने समझती है। भारतीय ग्राम-वासिनी संस्कृति के मूलाधार, जिन्हें आजकल की परिभाषा में अपढ़, वनेचर कहा जाता है, भारतीय संस्कृति के जीवित, जाग्रत प्रहरी है।"[4]

"लोक संस्कृति की प्रवृत्ति और प्रकृति सदा से नारी रूपा रही है। नारी ने जहाँ अपने मनोगत उछाह दुख-सुख के उद्‌गारों की भाव लहरियाँ लोक-गीतों की गंगा में प्रवाहित की है वहाँ मैहंदी, मॉडना, गोदना, थापे और साँझी चित्रित कर-कर के लोक कलाओं की प्रस्थापना की है - वस्त्राभूषणों की साज-सज्जा ने भी नारी के कला प्रेम को अभिव्यक्त किया है। त्यौहार, उत्सव आदि मनाने की पद्धतियाँ नारी के ही मनोभावों की प्रतीक हैं। नारी मन ने लोक संस्कृति की इस थाती को गीतों के रूप में प्रवाहित करके भारतीय संस्कृति को संजीवनी शक्ति प्रदान की है।"[5] प्राचीन काल से स्त्री का कंठ गीतों को माधुर्य देता आ रहा है। त्यौहारों में, नृत्य गीतों में, मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों पर गाए जानेवाले स्त्री के गीत एवं कलात्मक मांगलिक रूप हमारी लोक संस्कृति के परिचायक है।

1.2 लोक साहित्य : स्वरूप और परिभाषा :

लोक साहित्य में लोक संस्कृति की झाँकी मिलती है और जन-मानस की प्रकृत भावनाओं, स्वाभाविक आवेग-उल्लास का यथार्थ स्वरूप हमें लोक साहित्य में मिलता है। "लोक साहित्य के अन्तर्गत आँचल में प्रचलित जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डोरा-ताबीज, शकुन-अपशकुन, देवी-देवता, रहन-सहन, खान-पान रीति-रिवाज, छन्द, कथाएँ विधि गीत-संगीत, लोकनाट्य आदि जनसाधारण की संस्कृति के स्वरूप का निर्धारण होता है। इसे ही लोक संस्कृति कहते हैं। अतः लोक साहित्य, लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है।"[6] लोक साहित्य में मानव हृदय का यथार्थ चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है। जीवन के निश्छल और स्वाभाविक रूप का दर्शन हमें लोक साहित्य में होता है।

लोक साहित्य के क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। अनेक विद्वानों ने मानव-जीवन की विभिन्न अनुभूतियों, मान्यताओं, परम्पराओं, लोक-विश्वासों को लोक-साहित्य की परिधि में समाविष्ट

किया है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक-साहित्य के क्षेत्र की व्यापकता सिद्ध करने के लिए लोक साहित्य को मानव समूह के विविध पक्षों, वर्गों, जातियों एवं विविध आयु-वर्गों के मनुष्यों को आनन्द लाभ करानेवाले विशाल, वाङ्मय के रूप में माना है। डॉ. उपाध्याय के ही शब्दों में "लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है, उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।"[7] इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री-पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है। डॉ. सत्येन्द्र भी विस्तार के साथ लोक-साहित्य के बारे में सुस्पष्ट शब्दों में लिखते हैं – "पिछड़ी जातियों में प्रचलित अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अविशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत, कहावतें, जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदित तथा असभ्य विश्वास, अनुष्ठान और त्यौहार, धर्मगाथाएँ अवदान, लोक कहानियाँ गीत, किम्वदंतियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी उसके विषय है।"[8] लोक साहित्य में लोक का प्राण तत्व विद्यमान रहता है और लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।

● लोक साहित्य की परिभाषाएँ :

लोक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार व्यक्त किए हैं –

- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक साहित्य की परिभाषा निर्धारित करते हुए लिखा है कि 'जो चीजें लोक चित्त से सीधे उत्पन्न हों साधारण जन को आन्दोलित करती है वे ही लोक साहित्य नाम से पुकारी जाती हैं।'[9] लोक चित्त से तात्पर्य है जो परम्परा प्रतीत विवेचनात्मक शास्त्रों और उनकी टिप्पणियों से अपरिचित हो।

- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दी है – 'ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति जो लोक की युग-युगीन साधना में समाहित रहते हुए जिसमें लोकमानस प्रतिबिम्बित रहता है, लोक साहित्य है। वह मौखिक अभिव्यक्ति है और सामान्य जन-समूह उसे अपना मानता है।'

- डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने 'ब्रजलोक' में लोक साहित्य के सन्दर्भ में लिखा है कि – 'लोक साहित्य में लोकजीवन प्रतिबिम्बित होता है। लोक जीवन की सृष्टि रूप में अभिव्यक्ति लोक साहित्य में मिलती है। कोई एक व्यक्ति ऐसे साहित्य का न निर्माण कर सकता है न विनाश ही। समस्त जीवन का प्रतिनिधित्व ही लोक साहित्य है।'[10]

- लोक साहित्य के क्षेत्र में जाने माने लेखक डॉ. सत्येन्द्र ने भी लोक–साहित्य की परिभाषा निर्धारित की है, जिसमें आदि मानव, लोक–मानव के तत्व एवं अवशेषी की ही अधिक चर्चा की है।[11]

- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दी है – 'सभ्यता के प्रभाव से दूर रहनेवाली अपनी सहज व्यवस्था में जो निरक्षर जनता वर्तमान है उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, सुख–दुख की अभिव्यंजना जिस साहित्य से प्राप्त होती है, उसे लोक–साहित्य कहते हैं।'[12]

उपयुक्त विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर लोक साहित्य के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि – लोक साहित्य मौखिक परम्परा से पीढ़ी–दर–पीढ़ी से प्राप्त है जिसके रचयिता अज्ञात हैं। लोक साहित्य मनुष्य की आदिम और प्रकृत भावाभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साहित्य है। इसकी शैली अनलंकृत तथा गतिशील होती है। यह हमेशा कालसापेक्ष तथा परिवेश सापेक्ष सम्पन्न साहित्य है।

1.3 लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता :

लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपनी सम्मति व्यक्त की है। नीचे कुछ विद्वानों के मत द्रष्टव्य हैं –

डॉ. श्रीराम शर्मा ने 'लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग' पुस्तक में लोक साहित्य के अध्ययन के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है – "लोक साहित्य के अध्ययन से किसी देश या जाति की सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलती है। किसी संस्कृति विशेष के उत्थान–पतन विषयक उतार–चढ़ावों का जितना सफल अंकन लोक साहित्य में रहता है, उतना अन्यत्र नहीं। किसी देश की संस्कृति की जो जड़ें अतीत में रहती हैं, उसका स्पष्ट रूप कहीं देखना हो तो उस देश के लोक–साहित्य का अध्ययन करना चाहिए।"[13]

इसी क्रम में हरियाणवी लोक साहित्य के अनुसन्धाता विद्वान् डॉ. शंकरलाल यादव का मत द्रष्टव्य हैं – "विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए उसके प्राचीनतम रूपों

की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूल हैं, शिला-लेख और ताम्र-पत्र मलीन हो गये हैं, वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोक साहित्य का गम्भीर अध्ययन जीवन और जगत् की मौलिक एवं प्रामाणिक खोज के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोक साहित्य ही तो है।"[14]

उपयुक्त कथन में लेखक ने मानव समाज की विकास यात्रा के सम्बन्ध में ज्ञान सूत्रों के स्पष्ट परम्परा का बोध देने के लिए लोक साहित्य का आधार व्यक्त किया है। लोक साहित्य के विद्वान् डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - "लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें जनता जनार्दन का अखिल तथा विराट स्वरूप पूर्ण-रूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इन साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ? इसमें जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह स्वस्थ, सदाचारी तथा धर्म-भीरू है; जैसी नीति की प्रतिष्ठा की गई है, वह कल्याण मार्ग की ओर ले जानेवाली है, वह मंगलमय मार्ग की प्रदर्शिका है; जिस धर्म का वर्णन किया गया है, वह संसार में शांति तथा प्रेम का उपदेश देता है; जिस आर्थिक संगठन का उल्लेख हुआ है, वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है; जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है, वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज, नीति, का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चांद लगा देता है।"[15] लोक साहित्य के माध्यम से समाज का अध्ययन सम्भव है क्योंकि इस साहित्य का रचयिता लोक जीवन के सामाजिक पक्ष पर विशेष दृष्टि रखता है। किसी समाज में होने वाले सामाजिक कार्यों, व्यवहारों, प्रथाओं, विश्वासों एवं परम्पराओं का जीवन्त चित्र लोक साहित्य के माध्यम से ही प्राप्त होता है। लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्व के सन्दर्भ में लोक साहित्य की विदुषी डॉ. सत्या गुप्त ने 'खड़ी बोली का लोक साहित्य' पुस्तक में लिखा है कि "वस्तुतः किसी भी देश के लोक साहित्य का अध्ययन उनकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्य, सामाजिक जागरण एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है।"[16] डॉ. स्वर्णलता के शब्दों में "जन को समझने के लिए लोक साहित्य का ज्ञान परम आवश्यक है। बिना उसके जन की मानवीय आवश्यकताओं को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता। साधारण जन की समस्याएँ सामाजिक निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। यही नहीं, समाज के मूल तत्वों का ऐतिहासिक मूल्यांकन लोक साहित्य के अध्ययन के बिना असम्भव है।"[17]

लोक साहित्य के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए डॉ. बापूराव देसाई ने लिखा है – "लोक साहित्य जनता का विश्वविद्यालय कहा जाता है। आज भी अनेक आदिम जातियों में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, कहावतें, मुहावरे आदि का शैक्षणिक प्रयोग किया जा रहा है। आज व्यवहार में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन पर शादी-विवाह के समय बैण्ड-बाजे पर जितनी सफलता, लोकप्रियता लोकगीत को मिलती है उतनी अन्य गीतों को नहीं। लोक साहित्य सामाजिक मूल्यों के सम्प्रेषण के सशक्त साधन है।"[18] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी लोक साहित्य की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए लिखा है "जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है वे गाँव में ऐसी पुस्तकें भेज दे। यहाँ कहीं ऐसे गीत सुने, उसका अभिनन्दन करें, ऐसे गीत बहुत छोटे-छोटे छन्दों में साधारण भाषा में बनै बरंज गंवारी भाषाओं में और स्त्रियों की भाषाओं में विशेष हो। कजली, खेमटा, कँदरवाँ, अद्धाकैती, होली, साँझी, लेबे, लावनी, जाँते के गीत, बिरहा चनैनी, गजल इत्यादि ग्रामगीतों में इसका प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी प्रकार हो।"[19] लोक साहित्य का मुख्य प्रयोजन होता है कि वहाँ अपने समाज के सांस्कृतिक रूप-व्यापारों, रीति-रिवाजों तथा स्थापित संस्थाओं के महत्व को स्थापित करना चाहता है और उनके सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों का प्रसार करना चाहता है। लोक साहित्य के महत्व के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि "भारतीय हृदय का समन्वय स्वरूप पहचानने के लिए पुराने अपरिचित ग्रामगीतों के ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित कार्य परम्परा का अनुशीलन ही अलम् नहीं है।"[20] लोक साहित्य वस्तुतः हमारे आदि संस्कृति का प्रतीक है। यही कारण है कि पूर्ण मानव की सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता रहा है। डॉ. बापूराव देसाई ने लोक साहित्य के अध्ययन के महत्व को समझाते हुए लिखा है – "लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पहले से आज अधिक है क्योंकि इसके अध्ययन से अनेक प्रकार के लाभ होकर वर्तमान के लिए जीवित अभिलेख तैयार होते हैं।"[21] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक साहित्य के महत्व को ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं भाषाशास्त्र सम्बन्धी परिवेश में देखा है। उनके इन भौगोलिक, आर्थिक एवं धार्मिक शीर्षकों के अन्तर्गत ही अन्तर्गत प्रतिपादित लोक साहित्य के महत्व को हमने सांस्कृतिक परिधि के अन्तर्गत ही अन्तर्भुक्त मानकर इन शीर्षकों की अनावश्यक पुनरावृत्ति के मार्ग को उचित नहीं समझा है।[22] हाँ, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के निम्न कथन को उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिसमें उनके द्वारा प्रतिपादित लोक साहित्य के महत्व के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है-

“किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य का महत्व अत्यधिक है। ह्व ह्व ह्व इस मौखिक साहित्य में धर्म, समाज तथा सदाचार सम्बन्धी अमूल्य सामग्री भरी पड़ी हैं। इसके साथ ही स्थानीय इतिहास और भूगोल सम्बन्धी बातें भी उपलब्ध होती है। भाषा–शास्त्रीय के लिए तो यहाँ साहित्य रत्नाकर के समान है, जिसमें गोता लगाने पर उसे अनेक अनमोल रत्न प्राप्त हो सकते हैं।”[23]

उपयुक्त विभिन्न विद्वानों के विवरण एवं उद्धरणों से लोक साहित्य की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। लोक साहित्य से राष्ट्रीय जीवन को गति और प्रगति प्राप्त होती है। हमारे राष्ट्रीय सांस्कृतिक इतिहास के लिए समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि अनेक शास्त्रों के अध्ययन को पूर्ण बनाने के लिए लोक साहित्य का अध्ययन अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है।

1.4 भारतीय समाज और स्त्री :

सृष्टि के विकास क्रम में पुरुष के समान स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। “प्रजनन जीव का महत्वपूर्ण कार्य है। गर्भ धारण से लेकर संतान को जन्म देने तथा उस शिशु को सूझबूझ आने तक का लालन–पालन मुख्यतः स्त्री ही करती है।”[24] याज्ञवल्क्य मुनि का कहना है “जिस तरह चने अथवा सीप का आधा दल दूसरे से मिलकर पूर्ण होता है उसी प्रकार पुरुष के सामने का खाली आकाश नारी के साथ मिलने से पूर्ण होता है।”[25] प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले योगदान का सदैव महत्व रहा है। शतपथ ब्राह्मण से यहाँ विदित होता है कि – “नारी सर्वशक्ति सम्पन्न मानी गई है तथा विद्या, बुद्धि, यश और सम्पत्ति की प्रतीक मानी गई है।”[26] मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज का आवश्यक अंग है। परिवार एवं परिवार का केन्द्र बिन्दु है स्त्री। विदेशियों को भारतीय संस्कृति की जिन विशेषताओं ने अपनी ओर आकृष्ट किया है उनमें नारी–गौरव प्रमुख है। महामना एण्ड्यूज ने कहा है – “भारतवर्ष की महानता का सच्चा रहस्य तो हमें कुटुम्ब के अन्दर ही मिलता है।. . . एक ओर पुरुष मातृशक्ति के रूप में स्त्री की पूजा करता है, दूसरी ओर स्त्री का आदर्श व अनुपम पतिव्रत धर्म है जो दोनों भारतीय स्त्री–पुरुषों के एक कोमलतम अदृष्य स्नेह–सूत्र में बाँध देते हैं।”[27]

भारतीय स्त्री को समझने के लिए हमें हर इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में उसके वैभव एवं समाज के विन्यास को समझना होगा। जिस तरह से समाज में परिवर्तन के साथ–साथ स्त्री के प्रति नजरियों में परिवर्तन आया है। सामाजिक व्यवस्था की स्पष्ट छाप भारतीय स्त्री पर स्पष्ट

दिखाई देती है इसीलिए वैदिक काल से पूर्व से लेकर आज तक स्त्री का सामाजिक स्थान जानने के लिए उस काल की सामाजिक स्थिति देखना उचित होगा।

● प्रागैतिहासिक युग में भारतीय स्त्री की स्थिति :

ज्ञात इतिहास के पूर्व प्रागैतिहासिक युग के गहन पुरातात्विक अन्वेषण के बाद भी इस काल की स्थिति बहुत कुछ अनुमानों पर आधारित है। यह युग भारतीय सभ्यता का उषःकाल कहा जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार आदिम युग में जब विवाह प्रथा नहीं थी तो छोटे कबीलों में मातृगमन, पितृगमन, भ्रातृ व भगिनीगमन भी मान्य रहा है। "स्त्री-पुरुष छोटे-छोटे सामाजिक समूह में रहते हुए प्रकृति से संघर्ष करते थे यौन सम्बन्धों में मानव, अर्द्धमानव और अर्धपशु जैसा था। नारी पुरुष के बराबर ही नहीं बल्कि उससे श्रेष्ठ मानी जाती थी क्योंकि परिवार मातृसत्तात्मक था।"[28] घर-गृहस्थी में ही स्त्री की प्रधानता न थी, स्त्री के बिना कोई धार्मिक कृत्य अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकता था। अतः प्रागैतिहासिक युग के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में स्त्री को विशेष अधिकार प्राप्त थे।

● वैदिक काल में भारतीय स्त्री की स्थिति :

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति ऊँची थी। "पिता का परिवार हो या पति का परिवार दोनों ही स्थानों पर वांछित सम्मान प्राप्त था। यद्यपि पितृप्रधान पारिवारिक प्रणाली के कारण पुत्र की उत्पत्ति को महत्वपूर्ण व अनिवार्य माना जाता था लेकिन पुत्री के जन्म को भी अशुभ नहीं माना जाता था। विवाह के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति भी अच्छी हो जाती थी।"[29] वेदों में स्त्री की शिक्षा, शील, गुण, कर्तव्य और अधिकारों का विशद् वर्णन है इस प्रकार का वर्णन संसार के किसी भी धर्म ग्रन्थ में नहीं है। चारों वेदों में सैकड़ों स्त्री विषयक मंत्र दिए गए हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में स्त्री का समाज में विशेष स्थान था तथा पुरुषों की भाँति उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में स्थान प्राप्त था।

"वेदों में की द्रष्टा ऋषिकाओं के रूप में भी प्रसिद्ध महिमामयी एवं विदुषी नारियाँ अपने सद्‌गुणों से प्रतिष्ठित है। धन की देवी लक्ष्मी, विद्या की देवी सरस्वती तथा शक्ति की देवी दुर्गा की ही भाँति इन्द्राणी, अदिति, भारती, वाक्, रोमशा, उषा, इला, विश्ववारा, पृरिन, लोपामुद्रा इत्यादि अनेक वैदिक देवियाँ अनेक मंत्रों की अधिष्ठात्री हैं। इन्हें कहीं देवमाता, कहीं कन्या तो कहीं भौतिक शक्तियों की संचालिका कहा गया है।"[30] वैदिक काल में 17-18 वर्ष की आयु से

पूर्व लड़कियों के विवाह नहीं होते थे। शिक्षा काल में लड़कियाँ भी लड़कों की तरह ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। गुरुओं के आश्रमों में गुरु-पत्नी के संरक्षण में एक लम्बे समय तक रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाली अनेक स्त्री ब्रह्मचारियों का उल्लेख भी ऋग्वेद में कई स्थानों पर किया गया है। इके बाद लड़की और लड़के दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। ज्ञान के पठन-पाठन के लिए ब्रह्मवादिनी युवतियों को आजन्म कुमारी रहने की अनुमति थी। बालविवाह की प्रथा नहीं थी। पिता अथवा बड़ा भाई दहेज देकर कन्या का विवाह किसी योग्य वर से कर देता था पर कभी-कभी लड़कियाँ योग्य वर के अभाव में अविवाहित रह जाती थीं। वे पिता के घर में रहा करती थी तथा घर की देखभाल में लगी रहती थी। इस संदर्भ में अपाला और घोषा का नाम उल्लेखनीय है। कभी-कभी पुरुष के अभाव में विवाहित पुत्रियाँ भी अपने पिता के घर पर रहती थी जिन्हें पुत्रिका कहा जाता था। उन्हें पुत्र के सभी अधिकार प्राप्त थे। इस काल में पत्नी अपने पति के साथ यज्ञादि कर्मों में भाग लेती थी। विधवा का पुनर्विवाह पर प्रतिबंध नहीं था। विधवाओं के साथ सम्मानजनक मानवीय व्यवहार किया जाता था।[30]

● उत्तर वैदिक काल में स्त्री की स्थिति :

उत्तर वैदिक काल से स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ है। इस काल में यह भावना विकसित होने लगी कि बौद्धिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से भिन्न है। इस काल में हमें स्त्री के लिए निंदनीय शब्दों का प्रयोग मिलता है। उसे असत्यभाषी और अनृत कहा गया है। जहाँ एक ओर परम्परागत सम्मान का भाव स्त्रियों के लिए मिलता है वहीं दूसरी ओर स्त्रियों के प्रति नवीन अस्वस्थ मान्यताओं का सूत्रपात भी हुआ। अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में स्त्रियों की स्थिति का समुचित वर्णन उपलब्ध होता है जिससे तत्कालीन समाज में उनकी स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। अथर्ववेद में कई ऐसे मंत्र है जिससे स्पष्ट होता है कि परिवार में कन्या का जन्म अनिच्छित माना जाता था। कन्या उत्पन्न नहीं हो इसके लिए अनेक प्रकार के जादू-टोणे काम में लाए जाते हैं। इस काल में समाज का ध्यान, तपस्या में अधिक लगा और तपस्या में सबसे बड़ी बाधा नारी थी। अतः काम प्रवृत्ति की निंदा के साथ नारी निन्दा की जाने लगी। बहुपत्नी प्रथा और अनुलोम विवाह प्रथा के कारण स्त्री का स्थान गिरता गया। शास्त्रकारों ने शूद्रों के साथ नारी को भी वेदों का अनाधिकारी ठहराया। शिक्षा के अभाव में बालविवाह होने लगे। स्त्री को 'पद्मपुराण' में अत्यंत विषयासक्त और दुर्गुणों का भंडार कहा गया। ऐसी स्त्री पर सदैव किसी का अंकुश आवश्यक समझा गया। इसी विचार को मनु ने बताया है -

"पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रः न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।"[31]

अथर्ववेद में केवल दो ही मंत्र आये हैं जिनसे तत्कालीन समाज में विधवाओं की स्थिति के विषय में जानकारी मिलती है। एक मंत्र जो ऋग्वेद का ही है उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि विधवा को मृत पति के साथ लेटना पड़ता था अथवा नहीं। दूसरा मंत्र अथर्ववेद का ही है। इस मंत्र से ऐसा स्पष्ट होता है कि उन दिनों ऐसी प्रथा थी कि विधवा को अपने पति के साथ चिता पर उसकी बगल में लेटना पड़ना था बल्कि उस मंत्र से भी स्पष्ट होता है कि लोग उसे मृत पति के साथ ले जाते थे। उस प्रथा के पूर्ण होने पर उस विधवा को मृत पति के पास से उठा लिया जाता था तथा उठानेवाला व्यक्ति मृत पति का छोटा भाई हुआ करता था। यह स्पष्ट नहीं होता कि अन्य कोई भी उसे उठाता था तथा वह उससे विवाह करना चाहता था। उस मंत्र में यह स्पष्ट है –"जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा है उसके पास तुम लौट जाओ, वह तुम्हारा दूसरा पति है – अब तुम उसके साथ पति–पत्नी के सम्बन्ध में बँध चुकी हो।"[32] अथर्ववेद के दूसरे मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि मृतकों को जलाने की प्रथा थी। विधवा भी अपने मृत पति के साथ जल जाती थी। आर्यों में ऋग्वैदिक युग में भी सती की प्रथा प्रचलित नहीं थी। इसमें यह संदेह लगता है कि इस प्रथा का प्रचलन अथर्ववेद के काल में कैसे हुआ और वह प्रथा समाप्त हो गई। पर अथर्ववेद के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद में स्थान–स्थान पर पूर्व ऐतिहासिक प्रथाओं का उल्लेख हुआ है। ऐसा मत व्यक्त किया जाता है कि अथर्ववेद में उन आर्यों के जीवन का उल्लेख था जो भारत में बाद में आये और ऋग्वैदिक आर्यों से भिन्न थे। अथर्ववेद के मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि इस काल तक पति के साथ जलने की प्रथा समाप्त हो चुकी थी और केवल उसकी नकल होती थी। विधवा विवाह के प्रचलन का उल्लेख हमें अथर्ववेद में भी मिलता है। "उत्तरवैदिक साहित्य में चरित्रहीन स्त्रियों का वर्णन है। जिन लड़कियों के भाई नहीं थे उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती थी।"[33] अतः उत्तरवैदिक काल से ही भारतीय स्त्री की बुद्धि का विकास कुंठित हो गया और वह पुरुष की अधीनस्थ बन गई।

● महाकाव्य काल में भारतीय स्त्री की स्थिति :

"महाकाव्यकालीन सभ्यता की जानकारी के लिए 'रामायण' और 'महाभारत' का भारतीय साहित्य में बहुत अधिक महत्व है। इन दोनों ग्रन्थों को बड़े ही आदर और सम्मान के साथ देखा जाता है। रामायण की रचना वाल्मीकि ने मानव जीवन के सर्वोच्च आदर्श की शिक्षा प्रदान करने

के अभिप्राय से की थी। महाभारत में न केवल कौरव-पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है बल्कि उस काल के समस्त क्षेत्रों पर भी उसके द्वारा प्रकाश पड़ता है।"[34] महाकाव्यकालीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन देखते हैं। समाज में उनका मान कम हो गया था। स्त्रियों की दशा अधिक उन्नत नहीं थी। वे भोग-विलास की सामग्री समझी जाती थीं। बहु-विवाह की भी प्रथा थी। उच्च कुल के लोग कई पत्नियाँ रखते थे। स्त्री हरण और नियोग की भी प्रथा थी। सती प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था। रामायण के अनुसार पतिविहीन स्त्री का जीवन तन्त्रविहीन वीणा तथा चक्रविहीन रथ के समान निरर्थक समझा जाता था। महाभारत में गृहिणी को ही गृह कहा गया था। अन्तर्जातीय विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। प्रतिलोम विवाहों में ययाति और देवयानी का विवाह प्रसिद्ध है। पर्दा प्रथा का भी प्रचलन प्रारंभ हो गया था।

रामायण काल में विवाह के योग्य कन्याएँ माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय बन जाती थी।[35] इस कथन से स्पष्ट होता है कि कन्या का जन्म माता-पिता के लिए हर्ष का विषय नहीं होता था लेकिन दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि पुत्री पिता की प्रेम पात्र थी। कुमारी कन्याओं की मांगलिक और शुभ कार्यों में उपस्थिति अच्छी मानी गई थी। कन्या दान पिता के लिए पुण्य कार्य था।[36] रामायणकालीन समाज में कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी, यथा - कौशल्या, कैकेयी, सीता आदि सभी को विवाह से पूर्व अध्ययन की सुविधा थी। कौशल्या अग्नि में मंत्रों सहित आहुति देती थी।[37] सीता संध्योपासना भी करती थी।[38] तारा भी मंत्रवित् थीं।[39] ये स्त्रियाँ कर्मकाण्ड और शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करती थी। व्यावहारिक और नैतिक शिक्षा भी इन्हें दी जाती थी। उन्हें राजधर्म की भी शिक्षा दी जाती थी।[40] विवाहित स्त्रियाँ अपने परिवार में सम्मान प्राप्त करती थीं। वे सास, ससुर, पुत्रवधु के साथ स्नेह का व्यवहार करती थीं। समाज में पत्नी से कठोर अनुशासन और त्याग की अपेक्षा की जाती थीं। "पति कैसा भी हो - नारी के द्वारा वह वरेण्य है। पति-व्रता साध्वी नारियों की स्तुतियों से सम्पूर्ण रामायण भरी पड़ी है। रामायण में दुष्ट पत्नी के परित्याग की अनुमति दी गई है।"[41] पुत्री को विवाह में धन देने की प्रथा मिलती थी। गृहस्थी की व्यवस्था पर पत्नियों का एकाधिकार रहता था।

रामायणकालीन समाज के सम्मान ही महाभारतकालीन समाज में पिता कन्या के जन्म को कष्टकारी नहीं मानते थे - पुत्र एवं कन्या में बहुत अन्तर नहीं था। पुत्रियों को अपने माता-पिता के घर में नाना प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। पितृगृह में कन्याएँ माता-पिता के कार्य में सहयोग

देती थी। कन्या संन्यासिनी नहीं हो सकती थी। विवाहित स्त्री ही संन्यास ले सकती थी। "महाभारतकाल की नारी पूर्ण स्वतंत्र और स्वच्छन्द नहीं थी। विवाहित स्त्री का पिता के घर में रहना निन्दित माना जाता था। लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। पर संतानहीन विधवा पिता के यहाँ रहती थी।"[42] महाभारत में स्त्री जाति पूज्या मानी जाती थी। यह भी विश्वास था कि जहाँ स्त्रियों आदर होता है वहाँ देवताओं का निवास होता हैतथा जहाँ स्त्रियों का निरादर होता है वहाँ सभी कार्य निरर्थक हो जाते हैं। इस प्रकार महाभारतकाल में स्त्री की स्थिति सम्मानजनक, परिवार की गृहलक्ष्मी और समाज के कल्याण की आधारशीला के रूप में थी।

महाभारत काल के बाद बौद्ध काल आया। बौद्ध धर्म ने विवाहित, अविवाहित, विधवा, वन्ध्या, पतिता सभी को स्वीकार कर इस काल की करुणा-पात्र स्त्री को घर के संकुचित दायरे के बाहर निकालकर संसार की सेवाओं के हेतु उसे संन्यास की अनुमति दी। स्त्रियों के संघ में दीक्षित होते ही धर्म का मूल रूप विकृत हो गया। महायान और वज्रयान में तांत्रिक साधना में स्त्री का दुरूपयोग किया जाने लगा। इन सम्प्रदायों में अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और उनका प्रदर्शन ही सिद्ध समझा गया। सिद्धि लाभ के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, आचार-विहीन गुप्त क्रियाओं विशेषकर - निम्नवर्ग की स्त्रियों से भोग आदि को अपनाया गया। मंदिरों में चौरासी आसनों जैसी मूर्तियाँ इन्हीं की देन हैं। यह उत्तरोत्तर गिरती हुई स्त्री की पतनावस्था का ही प्रतीक है।

● पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री :

ज्यों-ज्यों समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा जड़ जमाने लगी समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था भी ठोस और मजबूत होती गई। भारत हो या पश्चिम सभी समाजों में व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा के जड़ जमाने के साथ-साथ पितृसत्तात्मक व्यवस्था मजबूत होती गई, जिसके समानान्तर स्त्रियों की स्थिति में प्राचीन काल की अपेक्षा नए सिरे से परिभाषित हुई। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनना चाहता है। जब तक समाज में निजी सम्पत्ति की अवधारणा नहीं थी तब तक पुरुष के लिए सन्तानों की भी आवश्यकता उतनी नहीं थी। सम्पत्ति के आते ही पुरुष की चिन्ता का यह अनिवार्य विषय हो गया कि वे कैसे अपनी सम्पत्ति को पीढ़ियों तक सुरक्षित रखे। यहीं से पितृसत्तात्मक शक्ति का प्रयोग पुरुषों ने करना शुरू किया और धीरे-धीरे संतान के जन्म का श्रेय माता से अधिक पिता को मिलने लगा। पुरुष धीरे-धीरे स्त्री के साथ मातहतों जैसा व्यवहार करने लगा। स्त्री अब पुरुष की वस्तु हो गई। पुरुष ने अपनी सत्ता स्त्री पर आरोपित की और सन्तान को पिता के नाम से जाना जाने लगा। किसी स्त्री

को अगर अपने परिवार से कुछ मिलता भी था तो पूरी सम्पत्ति ससुराल के परिवार में आ जाती थी। धीरे-धीरे स्त्री को सम्पत्ति और सत्ता के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया। उसका अपना कुछ भी न रहा। वह मनुष्य की गरिमा से भी वंचित हो गई। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में उसकी स्थिति पहले पिता के अधीन और बाद में पति के अधीनस्थ हो गई। चूँकि स्त्री को उत्तराधिकार में कोई सम्पत्ति नहीं मिलनी थी। इसलिए पुत्री का जन्म बोझ लगने लगा और स्त्री का अस्तित्व पुरुष की कृपा पर निर्भर हो गया।

पिता को अपनी बेटी का अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ विवाह करने का अधिकार था जब कि पुरुष के लिए विवाह की कोई सीमा नहीं थी। जितने चाहे उतने विवाह कर सकता था। स्त्री पर अपना नियंत्रण बनाये रखने के लिए पुरुष सत्ता ने उस पर कड़े बन्धन लगाए। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री को आचरण की सुविधा थी लेकिन पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पुरुष की सम्पत्ति के रूप में जानी जाती थी। स्त्री को नियंत्रण में रखे रहने के लिए स्त्री के अच्छे आचरण पर बल दिया गया। मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री अपनी इच्छा से पति का चुनाव कर सकती थी, जब कि पितृसत्तात्मक समाज के पूरी तरह व्यवस्थित हो जाने पर स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व खत्म हो गया। सामंती व्यवस्था वाले समाज में स्त्री की स्थिति दासी बनकर रह गई। जिन समाजों में भी निजी सम्पत्ति की अवधारणा का विकास हुआ उन समाजों में स्त्री की स्थिति हीनतर होती गई, जिन जगहों पर जैसे ग्रीक के शहरों में व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा नहीं थीं उनमें स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिले हुए थे। रोमन सभ्यता के उदय के साथ परिवार और राज्य के बीच संघर्ष होने शुरू हुए और साथ ही स्त्री की अवस्था भी खत्म होना शुरू हुई। उसकी अपनी निजी स्थिति नहीं रह गई और स्त्री सम्पत्ति के बचे-खुचे अधिकार वंचित हो जाने पड़ा। स्त्री की स्वाधीनता से राज्य ने स्वयं को असुरक्षित अनुभव किया। रोमन स्त्रियों ने अपने अधिकारों की माँग के लिए आन्दोलन किए लेकिन राज्य ने स्त्रियों को और कमजोर बनाया और राज्यों द्वारा उनको कई राजनैतिक अधिकार नहीं दिए गए। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में भीषण परिवर्तनों के कारण स्त्रियों को विपरीत परिणाम भोगने पड़े।

प्रारम्भिक ईसाई सभ्यता में स्त्री को चर्च ने बहुत सम्मान दिया लेकिन पुरुषों की तुलना में उनका स्थान हमेशा गौण रखा गया। संत पॉल ने यहूदी परम्परा में स्त्रियों के प्रति बर्बर और स्त्री विरोधी विचार व्यक्त किए गए। औरत को शैतान कहा गया। संत थॉमस ने औरत की नियति को पुरुष की अधीनता में रहना माना। जस्टीनियन ने स्त्री को कानूनी अधिकारों से वंचित रहने की

बात की। स्त्रियों के लिए पुरुष की बात मानना जरूरी था। विवाह एक सार्वजनिक काम था, पिता की भांति माँ को भी अपनी संतान पर समान अधिकार था लेकिन जैसे-जैसे राज्य प्रमुख भूमिका में पहुँचता गया वैसे-वैसे स्त्री के अधिकार कम होते गये।

सामंती व्यवस्था समाप्त हो जाने के बाद जो भी कानून बने उसका मुख्य उद्देश्य था कि स्त्री को पुरुष के समान नागरिक अधिकार मिलें वह स्त्री होने के कारण वंचित न रहे। बाह्य जगत से स्त्री का सम्पर्क नहीं के बराबर था, स्त्री के तमाम, उत्पादनों पर उसके पति का अधिकार था, यूरोपीय देशों में जितने भी कानून और अध्यादेश बने। वे सब स्त्री के हितों के खिलाफ थे। प्रत्येक देश में निजी सम्पत्ति की अवधारणा प्रचलित थी तथा परिवार एक स्थिर संस्था थी। पूरे विश्व में स्त्रियों की स्थिति पितृसत्तात्मक समाज में अधीनस्थ प्राणी की तरह ही थी।

● मध्यकाल में भारतीय स्त्री की स्थिति :

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति में जितना ह्रास हुआ उसे हमारा इतिहास कलंक के रूप में शायद कभी भी भूल नहीं सकेगा। यह काल स्मृतिकारों का काल भी कहा जाता है। स्मृतिकारों ने स्त्री के सब अधिकारों का अपहरण कर लिया। वैदिक काल के सम्पूर्ण नियमों एवं मान्यताओं को पलट दिया है। "हिन्दू आचार संहिता के रूप में प्रचलित मनुस्मृति में स्पष्टतः यह प्रावधान किया गया है कि नारी को हमेशा ही पुरुषों के संरक्षण में रहना चाहिए। बाल्यकाल में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के संरक्षण में तथा वृद्धावस्था में अपने पुत्रों के संरक्षण में रहना चाहिए। एक स्त्री को कभी भी अपने पिता और पुत्र से स्वतंत्र होने का विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करके वह दोनों परिवारों के लिए घृणित स्थिति का निर्माण कर देगी।"[42] मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद स्त्री की दशा और भी गिरती चली गई। मुसलमान अपनी इच्छा पूर्ति के लिए हिन्दू स्त्रियों का अपहरण करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते थे। इसी कारण से हिन्दूओं में कन्याओं का अल्पायु विवाह प्रथा और पर्दा प्रथा को समाज में बढ़ावा मिला। स्त्रियों की शिक्षा पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वे स्वतंत्रतापूर्वक अपने घरों से बाहर नहीं जा सकती थीं। इस कारण उनकी शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया जाता था, पर यह सुविधा केवल धनवान घर की स्त्रियों को ही उपलब्ध होती थी। "उस काल में हिन्दू घरों में तो पुत्री का जन्म होना अशुभ माना जाता था। जिसके परिमामस्वरूप भ्रूण हत्याएँ भी की जाती थी। परन्तु निम्न वर्ग इन कुप्रथाओं से बचा रहा उनमें पर्दा प्रथा न थी लेकिन बहुत सी निम्न जातियों में तलाक और विधवा विवाह सम्भव थे।"[43] मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की दशा अच्छी न थी परन्तु

मुसलमान स्त्रियाँ कुछ अन्य प्रकार से अच्छी स्थिति में थी। "दिल्ली सल्तनत की अपेक्षा मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति और दयनीय हो गई भी, यद्यपि बादशाह, सरदारों और राजपूत शासकों की स्त्रियों को अच्छी शिक्षा दी जाती थी, तथा उनमें से अनेक ज्ञान और युद्धकौशल में प्रवीण हुआ करती थी, परन्तु साधारण स्त्री की स्थिति बहुत गिरी हुई थी। साधारणतया स्त्रियों को न तो अच्छी शिक्षा दी जाती थी न समाज में उनका सम्मान था और न ही उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व था। बल्कि मुगल बादशाहों, सरदारों अमीरों तथा धनवान व्यक्तियों की बढ़ती हुई विलासिता की प्रवृत्ति ने स्त्री को केवल विलासपूर्ति का साधन मात्र बना दिया था। बादशाहों और राज्य के बड़े-बड़े सरदारों के हरम में हजारों स्त्रियाँ उप-पत्नियों, रखैलों और दासियों के रूप में रहा करती थीं। ऐसे वातावरण का समाज पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था और उससे स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई थी।"[44]

मध्यकाल में मुसलमानों का प्रभाव और मुख्यतया सम्मान की सुरक्षा के अभाव में हिन्दू समाज में स्त्रियों का स्थान निम्न हो गया था। पर्दा प्रथा, बाल विवाह प्रथा, विधवाओं का विवाह न होना, लड़की के जन्म को अपशकुन मानना, सती प्रथा, धनवान व्यक्तियों में बहुविवाह आदि सामाजिक कुरीतियाँ हिन्दू समाज का अंग बन गई। अवैध संतानें भी बड़ी संख्या में होने लगी। नाचने, गाने का पेशा लोकप्रिय हो गया और वेश्यावृत्ति बढ़ गई।

● आधुनिक भारत में स्त्री की स्थिति :

आधुनिक काल को भारतीय स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए हमें दो भागों के अन्तर्गत विभाजित करना चाहिए -

(1) स्वतंत्रतापूर्व भारत में स्त्रियों की स्थिति
(2) स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्रियों की स्थिति

(1) स्वतंत्रतापूर्व भारत में स्त्रियों की स्थिति :

भारत में अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध तथा उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में स्त्री चेतना का युग था, इससे पहले वैदिक काल के पश्चात् धीरे-धीरे स्त्री का वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पतन होता रहा। जिसके गहरे सामाजिक, सांस्कृतिक कारण थे। "उन्नसवीं सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा क्योंकि इस सदी में सारी दुनिया में उनकी अच्छाई-बुराई,

प्रकृति, क्षमताएँ एवं उर्वरा शक्ति गर्मागर्म बहस का विषय थे। यूरोप में फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान और उसके बाद स्त्री जागरूकता का विस्तार होना शुरू हुआ और शताब्दी के अन्त तक इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी।"[45] उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों ने पहली बार भारतीय समाज में स्त्रियों की असमान स्थिति के विरोध में अपनी आवाज उठाई। "राजा राममोहन राय ने सन् 1818 में सतीप्रथा का जमकर विरोध किया था जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक को सती-प्रथा को गैरकानूनी घोषित करना पड़ा। बहुपत्नी-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध के विरुद्ध लड़ते हुए राजा राममोहन राय स्त्री के पक्ष में ही खड़े हुए। स्त्री-उत्तराधिकार की वकालत कर वे स्त्री-स्वतंत्रता की स्वीकृति समाज से प्राप्त करना चाहते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्री शिक्षा पर बल देकर उसे प्राचीन भारतीय गौरव से सम्बद्ध करने का प्रयास किया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरुद्ध आन्दोलन कर 'शारदा एक्ट' पास कराया। विवेकानन्द की दृष्टि के समक्ष अमरीकी स्त्रियों का आधुनिक संसार था। वे प्राचीन भारतीय आदर्श और आधुनिक वैज्ञानिक युग के मध्य एक सेतु का निर्माण करना चाहते थे।"[46] गांधीजी के राजनीति में प्रवेश के साथ, एक व्यापक कर्मक्षेत्र स्त्रियों के समक्ष खुल गया। "उन्नीसवीं शताब्दी में ही दलित-आन्दोलन के नेता श्री ज्योतिबा फुले ने महिलाओं के मताधिकार, शिक्षा और नौकरी के अधिकार के लिए लम्बा संघर्ष किया था। उन्होंने विधवा-विवाह, पर्दा-प्रथा के खिलाफ आदि संवेदनशील मुद्दों पर भी अपनी उँगली रखी थी, पर 'जनवेदना' नामक प्रसिद्ध दलित पत्र ने इस दिशा में एक नई पहल की अपने स्त्री विशेषांक द्वारा।"[47]

स्त्री उदार में भारतीय समाज-सुधारकों के अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों का कार्य भी महत्वपूर्ण रहा है। "ईसाइयत का महत्वपूर्ण प्रभाव पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन पर भी पड़ा। संयुक्त परिवार के विघटन से व्यक्ति का निजी पारिवारिक उत्कर्ष देखने में आया। स्त्री-स्वातंत्र्य इस प्रभाव की प्रमुख देन है। उन्हें समुचित शिक्षा दी जाने लगी। धर्मभीरुता कम होने से उन्हें सामाजिक अभ्युत्थान में योगदान करने का अवसर मिला। सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा बंद हो गई। विधवा-विवाह होने लगे। ईसाई धर्म से तलाक का अधिकार अपनाया गया। इस दृष्टि से स्त्रियों की दशा में महत्वपूर्ण सुधार हुआ।"[48] अतः भारत में स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए समाज सुधारकों ने अनेक आन्दोलन चलाए। इन समाज सुधारकों ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए तमाम कुरीतियों को समाप्त करने, स्त्रियों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने एवं कुप्रथाओं के विरुद्ध सरकार को अधिनियम बनाने से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कार्य किए। इन सभी प्रयासों के वाबजूद भी

व्यावहारिक रूप से स्त्री की दशा में कुछ विशेष सुधार न हो सका। लेकिन इस काल में किए गए इन सभी प्रयासों का लाभ अवश्य हुआ कि भविष्य में भारतीय स्त्रियों की स्थिति में विकास के लिए उचित वातावरण तैयार हो गया।

2. स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्रियों की स्थिति :

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन के लिए बुद्धिजीवियों, समाजशास्त्रियों एवं स्वयं जागरूक स्त्रियों के प्रयास हो चुके थे। "स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जो संविधान बनाया गया उसमें स्त्री-पुरुष कानून के समक्ष बराबर समझे गए तथा उसमें सबको सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्यायिक समानता, वैचारिक स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति, , विश्वास व पूजा आदि के अधिकार दिए गए। इस संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसा लगा कि नारी के प्रति असमानता, हीनता व विभेद की समस्या का समाधान हो गया है। किन्तु हजारों वर्षों की गुलामी की श्रृंखला में बंधी स्त्री अब भी आज़ादी और समानता की सांस नहीं ले पा रही है और वह आज भी पुरुष प्रधान समाज में दूसरे दर्जे की नागरिक का जीवन व्यतीत कर रही है।"[49] "दहेज और बलात्कार की समस्याओं का सामना करते हुए स्त्री-मंचों ने यह अच्छी तरह समझा कि सिर्फ बाह्य प्रदर्शनों-प्रतिरोधों से अंदरूनी परिवर्तन घटित नहीं हो पाते ! संरचनात्मक परिवर्तन घटित किए बिना बात नहीं बनती और ये परिवर्तन तभी घटित हो सकते हैं जब शिक्षा, स्वास्थ्य आदि आधारभूत समस्याएँ जड़ से खत्म की जाएँ ! फलतः 1980 के बाद महिला संगठन नये सिरे से गठित हुए और वहाँ मुफ्त कानूनी सलाहों, स्वास्थ्य-सम्बन्धी मशविरों और रोजगार-सम्मत शिक्षण-प्रशिक्षण की भी व्यवस्था हुई ! आर्थिक स्रोतों की कमी के कारण पीड़ित स्त्रियों को रोजगार देकर स्वावलंबी बनाने, उनके रहने-खाने के लिए हॉस्टलों का निर्माण करने आदि के संकल्प अभी पूरे नहीं हुए पर हर स्त्री-संगठन की कार्यसूची पर ये शीर्षस्थ हैं। बच्चों के डे-केयर सेण्टर और मातृ-शिशु कल्याण सम्बन्धी स्वास्थ्य निकाय भी अभी और ज्यादा खुलने हैं - पर ज्यों हुआ, वह कम नहीं है।"[50]

भारतीय समाज में मध्यवर्गीय स्त्री के लिए सती होना स्थिति से पलायन है लेकिन अपनी मानवीय इच्छा-आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करना बड़ा कठिन है। पुरुष ने हमेशा स्त्री के लिए निर्णय लिए हैं और स्त्री अभी तक पुरुष निर्णय को स्वीकार करती रही है। उसने विरोध नहीं किया, सहना ही अपनी नियति मानती रही यह सहनशीलता ही आज स्त्रियों के लिए अभिशाप बन गयी है। "स्त्री हिंसा को सहती है, पर हिंसा का विरोध नहीं कर सकती, अपना सब कुछ

होम होते देखकर रोती है यहीं पर क्यों का प्रश्न उठता है। स्त्री क्यों रोती है उसका न्यायिक–बोध कम क्यों अपने दिमाग से उचित–अनुचित का विचार नहीं कर पाती।"[51] निम्न वर्ग की स्त्री एकदम निरक्षर होने से उनके दुख दर्द का कोई अंत नहीं है। अंतर केवल इतना है कि बचपन से वृद्धावस्था तक उपेक्षा और शोषण के वातावरण में पलने से अपने अधिकारों के प्रति ये अनभिज्ञ होती है। निम्नवर्ग की ये स्त्रियाँ घर और बाहर दोनों जगह काम की चक्की में दिन–रात पिसती हैं। उस पर भी जो वे कमाती हैं, अपने ऊपर उसका दसवाँ भशाळग भी खर्च नहीं कर सकतीं, क्योंकि पुरुष अपनी आय प्रायः अपने पर ही फूँक देते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति की कहानी उत्थान–पतन एवं पुनः उत्थआन की कहानी है। वर्तमान भारत में समाज–सुधार आन्दोलनों और सरकारी प्रयासों के कारण स्त्रियों की स्थिति में कई परिवर्तन एवं सुधार हुए हैं लेकिन अब भी बहुत सुधार होने बाकी है। कानूनी दृष्टि से यद्यपि उन्हें, पूर्ण समानता मिल चुकी है परन्तु अब भी सिद्धान्त एवं वास्तविकता में पर्याप्त अंतर है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री सम्बन्धी शोध और आलोचना कार्य निरंतर प्रगति पर हैं। पिछले कुछ वर्षों में जब से हाशिए की अस्मिताओं ने केन्द्र में अपनी जगह, अपनी पहचान बनाने की कोशिश की है – स्त्रियाँ अपनी पूरी पीड़ा, वेदना, आशा–आकांक्षा के साथ साहित्य और समाज में अपनी पुरजोर उपस्थिति दर्ज कराने की प्रक्रिया में हैं। यद्यपि इन वर्षों में उनकी कानूनी और आर्थिक स्थिति बदली है लेकिन अब भी पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता वाली सामाजिक संरचना में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान नहीं है। लेकिन इतना तय है कि स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर स्थितियों में भारतीय स्त्री की स्थिति में रेखांकित करने योग्य परिवर्तन हुए हैं। जिनमें भविष्य के समतावादी समाज के बीज छीपे हैं।

1.5 अवधी समाज और स्त्री :

अवधी उत्तर भारत में बोले जानेवाले भारतीय आर्य वर्ग की पूर्वी हिन्दी शाखा की प्रमुख बोली है। "यह उत्तर प्रदेश के लखनऊ, सीतापुर, लखीमपुर, खोरी, उन्नाव, फतेहपुर, बहराइच, बाराबंकी, बलरामपुर, रायबरेली, गोंडा, संत कबीर नगर, फैजाबाद, अम्बेदकर नगर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, सिद्धार्थ नगर, इलाहाबाद, श्रावस्ती, जौनपुर, मिर्जापुर, फतेहपुर, कौशांबी तथा बिहार के मुजफ्फरपुर एवं मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि क्षेत्रों में, लगभग साढ़े चार करोड़ व्यक्तियों के बीच व्यवहृत है। सूरीनाम, फीजी और मारिशस में इसकी प्रतिष्ठा है। भोजपुरी, बुन्देली, कन्नौजी,

छत्तीसगढ़ी, बघेली आदि विभाषाएँ भी इसकी भगिनी हैं। अवधी के मुख्य पाँच रूपान्तर प्राप्त होते हैं ह्न पूर्वी, पश्चिमी, बैसवरी, गांजरी एवं बांगरही। अपनी शब्द सम्पदा के कारण अवधी का स्थान महत्वपूर्ण है।"[52] अवधी एक ऐसे प्रदेश में बोली जाती है जो कि प्राचीनकाल से ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। "इस प्रदेश में अयोध्या (साकेत के नाम से भी विख्यात) नाम, कोसल राज्य की राजधानी है। यह कोसल राज्य बौद्ध काल तक अत्यन्त महत्वपूर्ण राज्य था। स्वयं गौतम बुद्ध का कार्य क्षेत्र मुख्यतया कोसल राज्य था और उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय श्रावस्ती और उसके आस-पास बिताया था। उत्तर-मुगल काल में फैजाबाद तथा लखनऊ का बड़ा महत्व रहा है। अवध के नवाब अपनी संस्कृति, खुशमिजाजी और शान-शौकत के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। रीवा के नरेश न केवल कला और विद्या के आश्रयदाता रहे हैं, अपितु स्वयं कवि तथा साहित्यकार रहे हैं। भारतीय संगीतज्ञों के सम्राट, तानसेन यहीं के महाराजा रामचन्द सिंह की सभा के रत्न थे और बाद में अकबर द्वारा दिल्ली से जाए गए थे।"[53]
हिन्दी की बोलियों में अवधी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक दृष्टि से भी अवधी का महत्व अत्यधिक है । अवधी भाषा के महत्व के सम्बन्ध में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है कि "सच तो यह कि ब्रज को छोड़कर हिन्दी की विभिन्न बोलियों में अवधी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इसका कारण यह है कि हिन्दी के दो महान् कवियों ने इसे अपनी काव्यमयी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। हिन्दी की प्रेममार्गी शाखा के सर्वप्रथम कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' की रचना कर तथा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' का निर्माण कर अवधी को अमर बना दिया है। जिस भाषा में 'मानस' की रचना की गई हो उसका मूल्यांकन करना अत्यन्त कठिन है। 'तुलसी' के स्पर्श से इस भाषा ने अमरता को प्राप्त कर लिया है।"[54] 'रामचरितमानस' हिन्दी ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य में अनुपम है। रामचरित मानस में तुलसीदास ने सभी सामाजिक सम्बन्धों का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। अतः तुलसी ने इसमें अपने काव्य के द्वारा एक आदर्श समाज की परिकल्पना के साथ-साथ लोकमंगल तथा लोक मर्यादा की सृष्टि की है।

अवधी क्षेत्र में स्त्री की तुलना देवी से की गयी है। वह जन्म से ही भाव प्रणव होती है। सरलता, ममत्व और स्नेह उसके अपने गुण हैं। बालिका, युवती, वधू, जननी एवं धात्री जैसे स्त्री के अनेक रूप हैं। इन रूपों की अपनी गरिमा है, पर इसके उपरान्त भी वह सदैव किसी न किसी के अधीन रहती है। बालिका युवती के रूप में पिता के आधीन और वधु, जननी तथा धात्री के रूप में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती है।

अवधी समाज में स्त्री जीवन की गाथा प्रारम्भ होती है जब वह जन्म लेती है। पुत्र–पुत्री का जन्म एक ही कोख से होता है किन्तु पुत्र जन्म पर अपार हर्ष सोहर, सरिया और बधाई गाकर प्रकट किया जाता है, परन्तु उसी माँ की कोख से जन्मी पुत्री के जन्म पर शोक प्रकट किया जाता है। पुत्री के जन्म पर जच्चा की मान मर्यादा, उसके सेवा सत्कार और खान पान जन्म तक ही सीमित न होकर मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। अवधी समाज की यह एक विडंबना है। कन्या धीरे–धीरे बड़ी होती है। माता–पिता कन्या के विवाह की चिन्ता करते हैं। कन्या विवाह के उपरान्त पराई हो जाती है इसलिए कन्या को पराया धन कहा जाता है किन्तु पुत्री के जन्म पर शोक प्रकट करना हमारे समाज की एक विडंबना है। दहेज हमारे समाज की एक ऐसी कुप्रथा है जिसकी जड़ें गहरी हैं। इसकी अनेकानेक शाखाएँ हमारे सामाजिक जीवन को अस्त–व्यस्त कर रही हैं।

अवधी समाज में पत्नी के रूप में स्त्री का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विवाह के पश्चात् स्त्री गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है। दाम्पत्य जीवन जिसमें रति–संभोग विहार, हास–विलास, रूठना, प्रेम के उपालम्भ इत्यादि होते रहते हैं। अतः उसके भी वही कर्तव्य, धर्म और अधिकार होना चाहिए जो पति के हैं। उसको पुरुष के समान ही आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिए। परन्तु अवधी समाज के व्यावहारिक जीवन में ऐसी बात नहीं पायी जाती। स्त्री के लिए पति ही सब कुछ है, वही उसका सोहाग है। इसीलिए अवधी समाज में 'जाको चाहे पिया वही सुहागिन' वाली कहावत प्रसिद्ध ही है।

अवधी समाज में विधवा का स्थान बड़ा ही दयनीय है। पुरुष अनेक विवाह कर सकता है। लेकिन बाल विधवा भी दूसरा विवाह नहीं कर सकती। पुरुष के स्त्री–धर्म–पालन के लिए कोई विशेष नियंत्रण नहीं है परन्तु विधवा की दिनचर्या के लिए बड़े कड़े नियम बनाये गये हैं। विधवा की आर्थिक दशा भी बड़ी दुःखद है। उसे उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं है। अतः पति के मृत्यु के बाद वह पुत्र तथा घर के अन्य कुटुम्बियों की दशा पर आश्रित रहती है। यदि विधवा कहीं साथ ही बन्ध्या भी हुई तो फिर उसकी अकथ कहानी है। उसे भरपेट भोजन और वस्त्र के भी लाले पड़ने लगते हैं।

अवधी समाज में यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति अगाध होता है परन्तु पुत्री के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम नहीं होता। पुत्री के पैदा होने में, उसके विवाह में कितना ही कष्ट क्यों न हो, माँ का प्रेम से परिपूर्ण हृदय इसकी परवाह नहीं करता और वह पुत्री को ममता की दृष्टि से देखती है, जैसे अपने पुत्र को। पुत्री जब ससुराल चली जाती है तब माता सदा इसका ध्यान रखती है कि वह सुखपूर्वक वहाँ रहे और उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

1.6 मणिपुरी समाज में स्त्री :

मणिपुर भारत की पूर्वोत्तर सीमा पर स्थित एक छोटा सा राज्य है। प्राचीन काल में इसे 'सनालैबाक', कडलैपाक, मैत्रबाक, युवापलि, मेखले, मौगले आदि अनेक नाम दिए गए थे, परन्तु कालान्तर में यह अपने वर्तमान नाम (मणिपुर) से ही प्रसिद्ध हुआ। मणिपुर के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर पं.जवाहरलाल नेहरू ने मणिपुर को 'दी लैण्ड ऑफ ज्वेल' (The land of jewel) का नाम दिया था। "मणिपुर न केवल अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए ही प्रसिद्ध है, वरन् अपने नृत्य-संगीत, कला-कौशल और विशिष्ट संस्कृति के कारण देश-विदेश में चर्चित है। यहाँ की जलवायु और मौसम खुशनुमा है। यहाँ के लोग मंगोल वंश के हैं यह गौर वर्ण,सुन्दर और स्वस्थ होते हैं, पुरूष आमोदप्रिय, खुशमिजाज और कलात्मक रूचि के हैं। महिलाएँ रूपवती, परिश्रमी, सौन्दर्य-प्रिय और नृत्य-गान में कुशल होती हैं।"[55]

मणिपुर में 'मैतै' जाति जो घाटी क्षेत्र में ही रहते हैं, वे ही यहाँ की मूलनिवासी है। इनकी भाषा 'मैतैलोन' है। इस भाषा को 'मणिपुरी' कहते हैं। इस भाषा को 1992 में भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। मणिपुर भाषा का प्रचार-प्रसार ईसा की तीन शताब्दी पूर्व से माना जाता है। स्पष्ट है कि मणिपुरी प्राचीन भाषा है और भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार मणिपुरी भाषा चीनी-तिब्बती भाषा परिवार के उपवर्ग की सबसे समृद्ध भाषा है। मणिपुरी भाषा की अपनी लिपि है जिसे 'मैतै लिपि' कहा जाता है। मणिपुर के अतिरिक्त यह भाषा असम,त्रिपुरा,बंगलादेश तथा म्यांमार के कुछ क्षेत्रों में भी प्रयुक्त होती है।

मणिपुरी समाज आम तौर पर पितृसत्तात्मक समाज कहलाता है। यहाँ के जीवन के महत्वपूर्ण फैसले पिता के द्वारा किए जाते हैं। फिर भी मणिपुरी जीवन पद्धति में स्त्री का स्थान महत्वपूर्ण है। माता, पत्नी और जीवन-संगिनी के रूप में वह परिवार की संचालिका है। वह जीवन के हर क्षेत्र में पुरूष से कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। "यह नारी देवी जरूर है, लेकिन पूजा की देवी नहीं, श्रम की देवी है। वह जीवन के हर क्षेत्र में पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। मणिपुरी नारी का कार्यक्षेत्र घर के चौके-बर्तन और पूजागृह से नृत्यशाला तक फैला है। घर में वह कुशल सलीकेदार गृहिणी है, पत्नी है, माँ है, भाभी है, बहू है और बाजार में वह चालाक दुकानदार, निपुण व्यवसायी है।"[56] मणिपुरी समाज में स्त्रियों का बड़ा सम्मान है। डॉ.जगमल सिंह ने मणिपुरी स्त्री के सम्बन्ध में लिखा है कि "भारत के अन्य भागों से मणिपुरी नारी को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। यहाँ की स्त्री बहुत ही उद्यमी होती है। गृह कार्यो के

उत्तरदायित्व के साथ-साथ वे कपड़ा बुनने, कसीदाकारी करने में भी बहुत कुशल हैं। क्रय-बिक्रय का कार्य भी बाजार में स्त्रियाँ ही करती है। मणिपुर में देश का सबसे बड़ा महिला बाजार है, यहाँ सब्जियों से कपड़े तक बेचने का कार्य भी स्त्रियाँ करती हैं। वे बहुत ही चतुर होती है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करती हैं।"[57] मणिपुरी समाज में वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण पुत्र होना आवश्यक माना जाता है,किन्तु भारत के अन्य भागों की भांति पुत्री जन्म को बुरा नहीं माना जाता है। "मणिपुरी समाज में कभी भी कन्या जन्म शोक का विषय नहीं माना गया। यह स्थिति मणिपुरी स्त्री को देश के अन्य भागों की स्त्री से नितांत भिन्न और विशिष्ट स्तर प्रदान करती है, उत्तर भारत की स्त्री से तो अत्यधिक विशिष्ट।"[67] विवाह में लड़कियों को अपना वर चुनने की स्वतंत्रता है। माता-पिता उसके निर्णय को सहज स्वीकार कर लेते हैं किन्तु कभी-कभी माता-पिता के द्वारा भी विवाह तय किए जाते हैं। मणिपुरी स्त्री के लिए पुनर्विवाह और विधवा विवाह यहाँ कोई समस्या नहीं है। बहु-पत्नीत्व अवश्य है किन्तु वह खत्म हो रहा है। यहाँ विवाह विच्छेद की भी व्यवस्था है।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 25
2. सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति विशेषांक, सं. श्री रामनाथ 'सुमन', पृ. 10-11 (संपादकीय)
3. लोक संस्कृति का प्रकृत रूप (लेख), आचार्य युगल किशोर, (सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति), पृ. 15
4. भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की अभिव्यक्ति (लेख), महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, (सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति विशेषांक), पृ. 22
5. लोक साहित्य विमर्श, डॉ. स्वर्णलता, पृ. 26
6. लोक साहित्य (अहिराणीखानदेशी बोली के परिप्रेक्ष्य में), डॉ. बापूराव देसाई, पृ.19
7. लोक साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण), डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.20
8. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र
9. विचार और वितर्क, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 206
10. ब्रजलोक, डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया
11. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 4 - 5
12. लोक साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण), डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 22
13. लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, पृ. 283-284
14. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, पृ. 43
15. लोक साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण), डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 273 (उपसंहार)
16. खड़ी बोली का लोक साहित्य, डॉ. सत्यगुप्त
17. लोक साहित्य विमर्श, डॉ. स्वर्णलता, पृ. 10
18. लोक साहित्यशास्त्र, डॉ. बापूराव देसाई, पृ. 12
19. भारतेन्दु समग्र, सं. हेमन्त शर्मा, पृ. 1028
20. हिन्दी साहित्य का इतिहास (सातवाँ संस्करण), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 600
21. लोक साहित्य, डॉ. बापूराव देसाई, पृ. 28
22. लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, पृ. 285
23. लोक साहित्य की भूमिका (द्वितीय संस्करण), डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 316

24. हिन्दी काव्य और नारी, डॉ. जुल्फिकार बानू देसाई, पृ. 5
25. शब्दकल्पद्रुम भाग-2, पृ. 868 (छायावादी कवियों की नारी भावना-डॉ. मृदुला गर्ग पृ. 35 से उद्धृत)
26. शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10
27. वैदिक संस्कृति और सभ्यता, मुंशीराम शर्मा, पृ. 101
28. हिन्दी काव्य और नारी, डॉ. जुल्फिकार बानू देसाई, पृ. 17
29. हिन्दी महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व, श्रीमती प्रीति मिश्रा, पृ. 33-34
30. मनुस्मृति, 90-91, 9-62
31. मनुस्मृति, अध्याय 9, श्लोक 3, पृ. 479
32. अथर्ववेद, 18.2.35
33. वही, 9.5.27-28
34. नारी : अन्तदर्पण व समाज, सं. चन्द्रमोहन अग्रवाल, पृ. 217
35. रामायण, 7.9.10 "कन्या पितृत्व दुःख हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम।"
36. वही, 1.75.15 "परो धर्मः कन्या प्रदान रूपः कृतो मह्याम्।।"
37. वही, 2.20.25
38. वही, 5.14.19
39. वही, 4.16.12
40. वही, 2.26.4
41. नारी : अन्तदर्पण व समाज, सं. चन्द्र मोहन अग्रवाल, पृ. 218
42. भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, सं. डॉ. आर. पी. तिवारी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ल, पृ. 31
43. हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्व, श्रीमती प्रीति मिश्रा, पृ. 44
44. वही, पृ. 44-45
45. स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800-1990), सं. राधा कुमार, पृ. 23
46. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, डॉ. सुमन राजे, पृ. 303
47. स्त्रीत्व का मानचित्र, डॉ. अनामिका, पृ. 108
48. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृथ्वीकुमार अग्रवाल, पृ. 100-101
49. भारतीय नारी : विविध आयाम (प्रथम खण्ड), सं. चन्द्र मोहन अग्रवाल (प्राक्कथन)
50. स्त्रीत्व का मानचित्र, डॉ. अनामिका, पृ. 114

51. भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान, सं. आर. पी. तिवारी एवं डॉ. डी. पी. शुक्ला, पृ. 68

52. अवधी श्रम गीत, सं. सूर्यप्रसाद दीक्षित, (संपादकीय)

53. अवधी का विकास, डॉ. बाबूराव सक्सेना, पृ. 7

54. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय (प्रस्तावना), पृ. 2

55. पूर्वोत्तर भारत के राज्य, माता प्रसाद, पृ. 71

56. वही, पृ. 79

57. मणिपुर : विविध संदर्भ, सं. डॉ. जगमल सिंह, पृ. 11-12

58. स्त्री सशक्तीकरण के विविध आयाम, सं. डॉ. ऋषभदेव शमा, पृ. 252

❖❖❖

2. दूसरा अध्याय : लोकगीत एवं स्त्री–स्वर

2.1 लोकगीत का स्वरूप : परिभाषाएँ

2.1.1 लोकगीत का स्वरूप

2.1.2 लोकगीत की परिभाषाएँ

2.2 भारत में लोकगीतों की परम्परा

2.3 लोकगीतों के स्त्री–स्वर

2.1 लोकगीत का स्वरूप : परिभाषाएँ

2.1.1 लोकगीत का स्वरूप :

लोकप्रियता की दृष्टि से लोक–साहित्य की विभिन्न विधाओं में से 'लोकगीत' सर्वोपरि हैं। लोकगीत दो शब्दों : 'लोक' और 'गीत' के योग से बना है। इस प्रकार से 'लोक' विशेषण से विशेषित 'गीत' शब्द का गीत के सामान्य अर्थ से कुछ भिन्न और विशिष्ट है। अतः लोकगीत को समझने से पूर्व 'लोक' शब्द के अर्थ को समझना अत्यन्त आवश्यक है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु से 'धञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इस धातु का अर्थ देखना है। जिसका लट् लकार के अन्य पुरूष के एक वचन का रूप 'लोकते' है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता। लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है। "गीता में लोक–शास्त्र तथा लौकिक आचारों की महत्ता स्वीकार की गयी है। बौद्ध धर्म में 'लोक' को प्रमुखता दी गयी है। अशोक के शिला–लेखों में लोक के कल्याण के आदेश हैं। प्राकृत और अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोक जना' और 'लोकप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्त प्रकट करते हैं।"[1]

हिन्दी शब्द सागर में 'लोक' का प्रमुख अर्थ 'स्थान विशेष – जिसका बोध प्राणों को हो', दिया गया है। शायद, आरम्भ में लोक स्थानवाची था, कालांतर में इसका प्रयोग लोक में रहनेवाली जनता के अर्थ में किया जाने लगा। लोक से व्युत्पन्न लोग तो केवल जनता के ही अर्थ में आता है। "उपनिषदों के तीन लोक – पृथ्वी, अंतरिक्ष और धुलोक तथा पौराणिक काल के भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि चौदह लोक भी स्थानवाची है।"[2] महर्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ अन्धकार रूपी अज्ञान से व्यथित लोक (सामान्य जनता) की आँखों को ज्ञान रूपी अंजन की शलाका लगाकर खोलनेवाला है –

"अज्ञान तिमिरान्धस्य;
लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानज्जन शलाकाभिः
नेत्रोन्मीलन कारकम्।।"[3]

इसी प्रकार से महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोक यात्रा का उल्लेख किया गया है –

"पुराणानां चैव दिव्यानां ;
कल्पानां युद्ध कौशलम्
वाक्य जाति विशेषाश्च;
लोक यात्रा क्रमश्चयः।।"[4]

'लोक' शब्द के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इस शब्द का सम्बन्ध अंग्रेज़ी के 'Folk' से देखना भी आवश्यक है। 'लोक' शब्द 'फोक' (Folk) का पर्यायवाची बन गया है। Folk शब्द की उत्पत्ति Folc से हुई है। जर्मन में Volk लिखा जाता है। जिसका तात्पर्य People as a nation है। "आंग्ल-भाषा में इस शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। एक ओर इसका प्रयोग असंस्कृत, अर्धसंस्कृत, असभ्य जाति अथवा समाज के लिए किया गया है। दूसरी ओर सर्व साधारण जनता के अर्थ में भी इसका प्रयोग मिलता है।"[5] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में 'फोक' का भाव आदिम जाति के उन सभी व्यक्तियों का बोधक है जिनसे वह समाज बना है। यदि इस शब्द का व्यापक अर्थ लें तो इसके अंतर्गत किसी देश की सभ्य-से-सभ्य जनता को भी अभिहिंत किया जा सकता है।

विभिन्न लोक-साहित्य के विद्वानों ने 'लोक' (Folk) शब्द की भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या करते हुए अपने अभिमत व्यक्त किये हैं। अंग्रेज़ी साहित्य में 'फोक' शब्द को असभ्य एवं असंस्कृत समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इस पर पुनर्विचार अपेक्षित है। डॉ. रामशरण गौड़ ने इस प्रश्न को उठाते हुए लिखा है कि ह्व "परन्तु वास्तव में 'लोक' अंग्रेज़ी शब्द 'फोक' का न हिन्दी रूपान्तर है न पर्यायवाची है तथा आध्यात्मिक भारत में 'लोक' शब्द अपने परिवेश के अन्तर्गत ही व्याख्यायित होना चाहिए। अंग्रेज़ी विद्वानों ने 'फोक' शब्द की सभ्य और असभ्य के आधार पर व्याख्या की है।"[6] इस

प्रश्न का हल भारतीय संस्कृति के संदर्भ में खोजते हुए डॉ. रामशरण गौड़ यह भी लिखते हैं कि "यह प्रश्न भौतिक सभ्यता के साथ-साथ आध्यात्मिक सभ्यता का भी है, जो मनुष्य के सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित करती है। अतः महत्व उस परिवेश की संस्कृति का है, जिस परिवेश की हम व्याख्या करते हैं। विवादास्पद नहीं है कि भारतीय संस्कृति कभी भी अपने में पूर्ण नहीं रही। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण संस्कृति है तथा सम्पूर्ण समाज की संस्कृति है, जिसमें अभिजात्य व लोक समाज दोनों ही सम्मिलित हैं अतः भारत में 'लोक' शब्द की पारम्परिक परिभाषा 'लोक' के अर्थ को प्रस्तुत करने में सर्वथा असमर्थ है।"[7] डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए इसकी व्याख्या इस प्रकार की है ह्न "लोक मनुष्य समाज का वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा को प्रवाह में जीवित रहता है।"[8] डॉ. कुंजबिहारी दास ने भी 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि ह्न "जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए कमोबेश अपनी पुरातन परिस्थितियों में रह रहे हैं, उन्हें ही 'लोक' कहा जाता है।"[9] डॉ. कुंजबिहारी दास का यह विचार स्पष्ट करता है कि वे संस्कृति और सत्प्रभावों से परे के, कमोवेश अवस्था में निवास करनेवाले जन-समुदाय को ही 'लोक' मानते हैं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि ह्न "लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उन्हें उत्पन्न करते हैं।"[10] इस तरह आचार्य द्विवेदी 'लोक' की भाव-सत्ता को व्यापक मानते हैं। भारत के लोक-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा ने लोक की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है ह्न "लोक से हमारा तात्पर्य उस समाज से है जो शास्त्रीय और पांडित्य से अस्पृश्य है, जिसे नागरिक संस्कृति ने प्रभावित नहीं किया है, जो अपढ़ और ग्रामीण है, जिसमें कृत्रिमता नहीं है और जो आदिम संस्कृति के परम्परागत तत्त्वों को वहन किए हुए है।"[11] डॉ. रवीन्द्र भ्रमर का कहना है कि ह्न "इस शब्द के प्रचलित अर्थ दो हैं ह्न एक तो विश्व और समाज और दूसरा जन-सामान्य अथवा जन-साधारण। साहित्य और संस्कृति के इस विशिष्ट भेद की ओर इंगित करनेवाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता

है, किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं वरन् जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव-समाज जो अपने परम्परा-प्रथित रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।"[12]

डॉ. कुन्दनलाल उत्प्रेती कहते हैं कि "मेरी दृष्टि में 'लोक' ज्ञानाह, बौद्धिक, चेतना, सुसंस्कृत और परिष्कृत रुचि वाले मनुष्यों के समुदाय से इतर अभिजात संस्कार एवं शिक्षा से हीन एक ऐसा समुदाय है जो आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्परा की धारा में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है।"[13] डॉ. उत्प्रेती सभ्यता अभिजात्यता एवं शिक्षा से दूर रहनेवाले परम्पराओं की धाराओं में और कृत्रितमा से रहित आदिम अवस्था में निवास करने वाले समुदाय को 'लोक' मानते हैं। प्रो. बैजनाथ सिंहल ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ह्न "लोक से अभिप्राय विशिष्ट वर्गों और व्यक्तियों से इतर जनों की उस सामूहिक चेतना और संस्कृति से है, जिसे सामूहिक मानव युग-युगों से चली आती परम्पराओं के रूप में सँजोता और विकसित करता है और जिसमें उस समय की आदिम चेतना के अवशेष लगातार सक्रिय रहते हैं।"[14] स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि - प्रो. बैजनाथ सिंहल ने परम्परा और आदिम चेतना के परिप्रेक्ष्य में 'लोक' शब्द को परिभाषित किया है। डॉ. ताराकान्त मिश्र ने भी 'लोक' शब्द के सम्बन्ध में विचार किया है कि ह्न "वस्तुतः लोक पृथ्वी पर फैले उस विशाल जन-समूह का ज्ञापक है जो शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना से शून्य होने पर भी सभी विषयों का ज्ञाता है। ग्राम और नगर, संस्कृत और असंस्कृत, सभ्य और असभ्य तथा वैदिक और अवैदिक इन सभी संकीर्ण परिधियों से ऊपर उठकर 'लोक' अपनी विराटता में अनन्य है। वह ब्रह्म के समान व्यापक है और किसी सीमा तक सम्पूर्ण संसार को अपनी लपेट में लिए हुए है। आज के युग का यह नवीन उपास्य देव 'लोक' मानव कल्याण का नया वरदान लेकर इस धरती पर अवतरित हुआ है। यही कारण है कि भारत में इसके अभिनन्दन की भव्य तैयारी की जा रही है। 'लोक' की व्यापकता, भावाभिव्यंजक्ता तथा लोकप्रियता का ही सुपरिणाम है कि इसका व्यापक प्रयोग अब भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भी होने लगा है। लोकतन्त्र, लोकसभा, लोकपाल आदि इस बात के साक्षी है।"[15] डॉ. मिश्र के उक्त विचार जन-सामान्य से जुड़े 'लोक' शब्द की व्यापक मनोभूमि को दर्शाते हैं।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। 'लोक' ही राष्ट्र का स्वरूप है। लोक के समुचित

ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव – यही हमारे नए जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इनका कल्याण हमारी मुक्ति और निर्वाण का नवीन रूप है। लोक–पृथिवी मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।"[16] डॉ. विद्या चौहान ने अपने पुस्तक 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' में 'लोक' को सरल स्वाभाविक मानव समाज मानते हुए 'लोक' को इन शब्दों में परिभाषित किया है ह्न "लोक का अर्थ सरल स्वाभाविक मानव समाज है, जिसकी भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्त्व विद्यमान रहते हैं।"[17]

उपर्युक्त 'लोक' शब्द की व्याख्याओं का यदि समग्र रूप से मूल्यांकन किया जाए तो विद्वानों की इस मान्यता का पता चलता है कि अभिजात्य संस्कार, सभ्यता और शिक्षा से रहित सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और सहज जीवन जीने का अभ्यस्त जन–समुदाय 'लोक' है। यह सर्व–साधारण, नगर और ग्राम्य दोनों प्रकार की संस्कृतियों में विद्यमान रहकर अपनी आदिम परम्पराओं से जुड़ा हुआ है और इन्हीं प्रवृत्तियों के प्रवाह में अपना जीवन चला रहा है। वस्तुतः ऐसा मानव समाज की भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में समस्त मानव समाज के कल्याण की भावना निहित रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि सुसंस्कृत एवं परिष्कृत लोगों के प्रभावचक्र से परे का वह सहज–स्वाभाविक समाज 'लोक' है जो आदिम संस्कृति के पुरातन तत्वों से युक्तः शास्त्रीयता से दूर और कृत्रिमता से रहित है।

लोकगीत 'लोक' की अभिव्यक्ति है, आम, सामान्य और समष्टि की। लोकगीत से जन–मन का अनुरंजन सदा होता रहा है। इन गीतों में किसी जाति, समूह और देश की लोक संस्कृतियों की परिचायक होते हैं और जीवन की प्रत्येक धड़कनों का स्पन्दन इनमें देखा जा सकता है।

2.1.2 लोकगीत की परिभाषाएँ :

लोकगीत लोक–साहित्य का ऐसा अंग है, जिसने लोक–जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। इसीलिए लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा है। उनमें जीवन के सुख–दुख, मिलन–विरह, उतार–चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई है। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन

लोकगीतों में है, इन में जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है। "लोकगीत उस नदी की धारा के समान हैं, जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण समाज को आप्लावित करती रहती है, वरन जो अपने शीतल वाणी रूपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है और राह पर आनेवाले कंकड़, पत्थर और गन्दगी को जिस प्रकार से नदी की धारा बहा ले जाती है, उसी प्रकार से ग्रामीण जन भी इन गीतों के द्वारा अपने जीवन की विषमताओं और दुखों को भुला देते हैं।"[18]

लोकगीत के लिखित रूप नहीं होते। ये मौखिक परम्परा से लोगों की ज़ुबान पर रहते हैं। लोकगीत नियमों से बंधकर नहीं चलते। जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प को बढ़ने के लिए मुक्त परिवेश की आवश्यकता होती है, लोकगीतों के लिए भी मुक्त परिवेश की आवश्यकता होती है। नियमों के बंधन में बंधकर इसका समुचित विकास नहीं हो सकता। वास्तव में लोकगीत साधारण ग्रामीण, अशिक्षित लोगों के हृदय से सम्बन्धित हैं जिसे लोग प्रसन्नचित्त होकर झूमते हुए गा उठते हैं। लोकगीतों का रचयिता कौन है? इसकी व्युत्पत्ति कहाँ से हुई है? इस पर देवेन्द्र सत्यार्थी का विचार द्रष्टव्य है ह्न "कहाँ से आते हैं इतने गीत? स्मरण-विस्मरण की आँख मिचौनी से। कुछ अट्टहास से। कुछ उदास हृदय से। कहाँ से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेतों में उगते हैं ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, राग-वृत्ति, रस-वृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी - पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुःख ये हैं लोकगीतों के बीज।"[19]

लोकगीत लोक-भाषा में रचे जाते हैं। लोक-भाषा में रचा जाना यह स्पष्ट करता है कि यह लोक-मानस से निरस्ट भावना लोक के अभ्युदय की आकांक्षा से युक्त सहज और प्राकृतिक स्तर की होती है। लोकगीतों की सहजता और स्वाभाविकता का कारण लोक-कंठ द्वारा स्वीकृति है। लोक-गीतकार अलंकार की परवाह न करके लय की तरफ अधिक केन्द्रित रहता है। इसी में इसकी चिर नवीनता सुरक्षित है। वह पुनरूक्ति से नहीं कतराता, अनजाने ही पुनरूक्ति पर अधिक बल देता है। इसमें लोकगीत की पूरी की पूरी पंक्तियाँ दुहरा जाती है। दुहराने की प्रक्रिया इसे अधिक अर्थवती बनाती हैं। लोकगीतकार इन पंक्तियों को भरसक बदलने का प्रयास नहीं करते क्योंकि ये उसके लय की एकतानता को सुरक्षित करते हैं। लोकगीतों में स्थानीय प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है जिस क्षेत्र में जो लोकगीत प्रचलित है उनमें वहाँ के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान और आचार-व्यवहार की स्पष्ट छाप प्रकट होती है इस प्रकार लोकगीतों में लोक संस्कृति अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिबिम्बित होती है। "लोकगीतों की उपमा विशाल

नदी से दी जा सकती है, जिस प्रकार कोई नदी अपने उद्‌गम स्थल से अत्यन्त पतली धारा के रूप में निकलती है। कालान्तर में उसमें अनेक सहायक नदियाँ मिलकर उसके आकार को इतना विशाल और विस्तृत कर देती हैं कि उसके स्वरूप को पहचानना दुष्कर हो जाता है, इसी प्रकार लोकगीत के मूल रूप में लोकगीत गायक द्वारा इतना अधिक परिवर्तन होता रहता है कि उसके स्वरूप का पता नहीं चलता।"[20] लोकगीतों की परम्परा हजारों वर्षों से चली आ रही है और आज भी वह जन-जन के कण्ठ में विद्यमान है।

लोकगीत के सम्बन्ध में पाश्चात्य एवं भारतीय लोक-साहित्य के अनेक विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से विचार प्रकट किये हैं : -

● पाश्चात्य दृष्टिकोण :

पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों की निम्न परिभाषा दी है ह्व

1. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में लोकगीत के सम्बन्ध में लिखा है - कि "लोक-गीत वे हैं जिनके रचयिता अज्ञात हों, जो प्रकृति में मौलिक, कलात्मक रहित, परम्परा में प्रवाहित हों उन्हें लोक-गीत कहा जाता है।"[21]

2. राल्फ वी. विलियम्स के अनुसार ह्व "लोकगीत न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है, जिसकी जड़े तो दूर जमीन में धँसी हुई है; परन्तु जिनमें निरन्तर नई-नई डालियाँ पल्लव और फल लगते हैं।"[22]

3. ग्रिम के अनुसार ह्व "ये लोक में पारम्परिक रूप में प्रचलित गीत हैं।"[23]

4. पेरी के अनुसार ह्व "ये गीत लोक की परम्परागत विरासत हैं जो अनुभूति का उच्छवास और जीवन के स्वच्छ तथा निर्मल दर्पण होते हैं।"[24]

● भारतीय दृष्टिकोण :

भारतीय लोक-साहित्य के अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से लोकगीत को परिभाषित किया है ह्व

1. पं. रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों को ग्राम-गीतों के नाम से सम्बोधित किया है और कहा है ह्व "ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं केवल

लय !! लालित्य नहीं केवल माधुर्य है !!! ग्रामीण मनुष्यों के, स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम-गीत हैं।"[25]

2. डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगीत की परिभाषा अति संक्षेप में करते हुए कहा है ह्न "वह गीत जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक-मानस भी हो, लोकगीत के अन्तर्गत आयेगा।"[26]

3. चिन्तामणि उपाध्याय के अनुसार "सामान्य लोक-जीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास ही फूट पड़नेवाली मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।"[27]

4. शान्ति अवस्थी के अनुसार - "लोकगीत मानव हृदय की प्रकट भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गीत है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन प्रधान होते हैं।"[28]

5. श्री सूर्यकरण पारीक के अनुसार ह्न "आदिम मानव के गानों का नाम लोकगीत है। मानव-जीवन भी, उसके उल्लास की, उसकी करुणा की, उसके समस्त सुख-दुख की कहानी इसमें चित्रित है।"[29]

6. डॉ. कुन्दनलाल उत्प्रेती के अनुसार ह्न "लोक-संस्कृति, लोक-विश्वास एवं लोक परम्परा की रक्षा एवं निर्वाह करते हुए लोकजीवन अपनी रागात्मक प्रवृत्तियों की तत्सफूर्त लयात्मक अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है उसे लोकगीत कहते हैं।"[30]

7. श्री तेजनारायण लाल शास्त्री ने संगीत की बलवतीं धारा में प्रवाहित होने और उनमें प्रक्षिप्तांश की संभावना के बने रहने के आलोक में लोकगीत को इस प्रकार परिभाषित किया है ह्न "लोकगीत संगीत और काव्य का मिश्रण होता है। लोकगीतों के उपर्युक्त निर्माता लोक-भावना में अपने भाव को मिला देते हैं।"[31]

8. डॉ. सत्यार्थी जी ने लोकगीत को संस्कृति का वाहक कहा है ह्न "लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है।"[32]

9. मराठी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. फड़के के अनुसार ह्न "शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपनी आनन्द-तरंग में जो छंदों बद्ध वाणी सहज उद्‌भूत करता है, वही लोकगीत है।"[33]

10. श्री कुंजबिहारी दास का कहना है कि ह्न "लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मकता की अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों के बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"[34]

11. बाबू गुलाबराय के अनुसार ह्न "लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रखते हैं, वह लोक भावना में अपना भाव मिला लेते हैं। लोकगीतों में होता तो निजी जीवन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है।"

12. डॉ. सरोजनी रोहतगी ने लोकगीत को ज्यादा स्पष्ट करते हुए इस प्रकार परिभाषित किया है ह्न "लोकगीत वे हैं जो अपनी एक प्राचीन परम्परा को लिये, पीढ़ी दर पीढ़ी रचनाकार के व्यक्तिगत व्यक्तित्व से निर्लिप्त, पर समस्त लोक के व्यक्तित्व को समेटते हुए लोक-मानस से तादात्म्य स्थापित करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।"[35]

12. महात्मा गांधी जी लोकगीतों के सांस्कृतिक पक्ष को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने किसी अवसर पर कहा था ह्न "हाँ ! लोकगीतों की प्रशंसा अवश्य करूँगा क्योंकि मैं मानता हूँ कि लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार हैं।"

उपर्युक्त विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के आधार पर लोकगीतों के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि मानव के चेतन-अचेतन व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दुखात्मक मनोभावों, अनुभूतियों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने की स्वच्छंद, साधारण एवं अनायास लयात्मक स्वराभिव्यक्ति 'लोकगीत' है जिसमें लोक-जीवन की प्रत्येक अनुभूति का सरल ढंग से उच्छवास होता है। लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं संस्कृति के चित्र-इतिहास से भी अधिक सूक्ष्म रूप में अंकित रहते हैं। किसी जाति के विश्वास-धार्मिक विचार, साधारण प्रथाएँ एवं विचार-स्रोतों का संगम स्थल लोकगीत होते हैं। लय-स्वर से युक्त ये गीत वस्तुतः स्थिति एवं आवेगजन्य होते हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अपना अस्तित्व एवं प्रभाव बनाए रखते हैं। अतः लोकगीत आदिम मानव समाज के ऐतिहासिक महत्व एवं सांस्कृतिक गौरव के सजग प्रहरी हैं। इसमें विज्ञान की तराश नहीं मानव संस्कृति का सारल्य तथा भावों का रसपूर्ण उभार है। लोक-गीत हमारी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है।

2.2 भारत में लोकगीतों की परम्परा :

लोकगीत की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। लोकगीतों का लक्षण वैदिक कालीन साहित्य में स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। हमारे सबसे प्राचीन ग्रंथ 'ऋग्वेद' में लोकगीतों का उल्लेख पाया जाता है। "प्राच्य साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें लोकगीतों का पूर्ण प्रतिनिधि कहा जा सकता है। पद्य या गीत के अर्थ में 'गाथा' तथा उसे गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में मिलते हैं।"[36] यथा ह्व 'इन्द्रमिद गाथिने वृहत्।'[37] ऐतरेस ब्राह्मण में गाथा को मानव के द्वारा प्रयुक्त कहा गया है, अतः इसे मानवी कहा गया है और इस ग्रन्थ से यह भी आभासित होता है कि किसी राजा के सत्कर्मों की अभिव्यक्ति मंत्र के रूप में न होकर लोकगीतों में होता था ये लोकगीत जनता के द्वारा गाए जाते थे और 'गाथा' के नाम से ये प्रचलित थे।

प्राचीन काल में किसी राजा के उदात्त एवं महान चरित्र को लक्षित करके जो गीत समाज में प्रचलित हो जाते थे और जन–समुदाय द्वारा गाये जाते थे वे ही 'गाथा' संज्ञा से अभिहित किये जाते थे। महर्षि यास्क के द्वारा प्रणित 'निरूक्त' के टीकाकार दुर्गाचार्य ने गाथा के अर्थ को समझाते हुए यह स्पष्ट रूप से निरूपित किया है कि ह्व

"स पुनरितिहासः ऋग्वद्धो गाथा बद्धश्च।
ऋक् प्रकार एक करिचत्
'गाथा' इष्युच्यते। गाथा रांसति।
नाराशंसी रांसति इति उक्त
गाथानां कुर्वीतेति।"[38]

अर्थात् सूक्तों में कहीं–कहीं जो इतिहासिक उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध होता है। ऋचाओं के समान गाथाएँ भी छन्दोबद्ध होती हैं।

महाभारत में दुष्यन्त पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित गाथाएँ श्रीमद्भागवत गीता के सप्तम स्कंध में प्राप्त होती हैं। वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत राम जन्म के समय और श्रीमद्भागवत में कृष्ण जन्म के समय स्त्रियों द्वारा समूह गान गाए जाने का वर्णन है ह्व

"जड़ः कंसंच गन्धर्वः न नृतुश्चाप्सरो गणा।
देव दुन्दभयो ने दुः पुष्पवृष्ट्रिश्च खात्पतव्।।"[39]

संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, खेती निराना, धान रोपना, चरखा काटना आदि के समय गीत गाने का उल्लेख मिलता है। संस्कृत की कवयित्री विज्जका (बारहवीं शताब्दी) ने धान कूटने का बड़ा ही सरल वर्णन एक श्लोक में किया है ह्न

"विलासमसृणोल्लसन् मुसललोलदोः कन्दली
परस्पर परिस्खलद् वलयनिः स्वनोद्बन्धुराः।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसकम्पितोरः स्थल
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलभयण्डनी गीतयः।।"[40]

अर्थात् स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ ही गीत भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खन-खन कर रही हैं। श्रम-प्रयास के कारण उनका अंग-अंग गतिशील हो उठा है। गीतों के स्वर चूड़ियों की झंकार से मिलकर अनुपम आनन्द की सृष्टि कर रहे हैं।

महाकवि श्री हर्ष ने भी चक्की चलाती हुई स्त्रियों का चित्रण सरल तथा सुन्दर ढंग से किया है ह्न

"प्रतिहट्ट पये घरट्टजात्ः
पयिकाह्लादन सक्तु सौरभैः।
कलहान्न धनान् यदुत्यितात्,
अधुनाष्युज्झीभति घर्घरस्वनः।।"[41]

भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कथाएँ जो 'जातक' कहलाती हैं ह्न गाथाओं के माध्यम से ही अभिव्यक्ति हुई है। प्राकृत काल में लोकगीतों की अधिक उन्नति हुई। उस समय में इनका अत्यधिक प्रचलन था। राजा हाल अथवा शालिवाहन द्वारा संकलित 'गाथा सप्तशती' में संकलित सात सौ गाथाएँ उसका प्रमाण हैं। एक गाथा में विरहिणी नायिका की मनःस्थिति का अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया गया है ह्न

"अज्जं गओक्ति, अज्जंगओक्ति;
अज्जं गओक्ति गणिरीए।
पढम च्चिअ दिअहद्धे
कड्डो रेहाहि चित्तलिओ।"[42]

अर्थात् मेरा पति आज परदेश गया, आज गया है, आज गया है, इस प्रकार पति के जाने के दिनों को गिननेवाली उसकी विरह विदग्धा पत्नी ने दिन के अर्ध भाग में ही घर की दीवाल पर रेखाओं को खींच कर उसे चित्रित कर दिया।

महाकवि कालीदास के 'रघुवंश' में जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में राजा दिलीप के भवन में वेश्याओं द्वारा नृत्य करने तथा मंगल वाद्य बजाने का उल्लेख आया है ह्न

'सुखश्रवाः मंगलतूर्य निस्वनाः।
प्रमोद नृत्यैः सहवारियोषिताम्।।
न केवलं सदननि मागधीपतेः।
पथि व्यजम्भन्त दिवौक सामति।'[43]

विक्रम संवत की तीसरी शताब्दी के समय में प्रचलित प्राकृत भाषा में भी लोकगीतों का प्रचलन था। तत्कालीन अनेक लोकगाथाएँ लोकगीतों के रूप में थीं। डॉ. तेजनारायण के अनुसार "वर्तमान समय में सात सौ गीत इस भाषा में प्राप्त हैं।"[44] अपभ्रंश काल में भी लोकगीतों का विकास हुआ। तत्कालीन ग्रन्थों के अधिकांश रचयिता सिद्ध और संत थे। उन्होंने धर्म के प्रचार के लिए अपभ्रंश भाषा प्रयोग किया। विक्रम संवत् 690 के लगभग सरह नामक एक सिद्ध पुरुष हुए थे, जिन्हें सबसे पुराने संतों की श्रेणी में रखा जाता है। उनकी रचना के निम्न अंश को अंतस्साधना पर बल और पंडितों के पोंगेपन की निन्दा के रूप देखा जा सकता है ह्न

"पंडित सअस सत्त बक्खानइ।
देहहि रूद्र बसंत न जाणई।।
अभणा गमणणतेन विखंडिअ।
तोवि विलज्ज भणइ हउं पंडिठ।।
जेहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नहि पवेस
ताहि वट चित्तविसाम करू सरेहो कहिअ उदेस।"[45]

हिन्दी काव्यों में भी मंगल-अवसरों पर गीतों का वर्णन मिलता है। गोस्वामी तुलसीदास के प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' में अनेक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा मंगल गान करने का उल्लेख मिलता है। राम-जन्म, सीता का गौरी पूजन, सीता-स्वयंवर, सीता-राम विवाह इत्यादि समस्त अवसरों पर स्त्रियाँ सुमधुर गीतों का गायन करती हैं। श्रीराम-विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाया हुआ एक गीत द्रष्टव्य है ह्न

"गावहिं मंगल मंजुल बानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।"[46]

लोकगीतों की इस परम्परा को देखकर पं. रामनरेश त्रिपाठी ने टिप्पणी करते हुए कहा कि ह्व "वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास इनमें से किसी ने यह नहीं बताया कि वे गीत कौन से थे? अवश्य ही वे वहीं कंठस्थ गीत रहे होंगे जो आज भी हैं। समय के अनुसार मात्र इन्होंने भाषा का जामा बदल दिया है। इनके भाव पुराने हैं भाषा भले ही नई हो।"[47]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकगीतों की परम्परा भारत में वैदिक कालीन साहित्य से लेकर अब तक चली आ रही है। अतः लोकगीतों की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है।

2.3 लोकगीतों के स्त्री–स्वर :

भारतीय लोक साहित्य में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान अपेक्षाकृत अधिक रहा है। "युग–युग से चले आ रहे रीति–रिवाजों, संस्कारों, त्यौहारों, विवाहों, व्रत एवं पूजाओं में गाए जानेवाले गीतों और कथाओं को अपने कंठों में सुरक्षित रखने का श्रेय स्त्री समाज को ही है। बहुत सी ऐसी लोरियाँ, विरह एवं तन्हाई तथा हर्षोन्माद के लोकगीत हैं जो सम्भवतः मानसिक स्तर से परिष्कृत एवं संवेदनशील दैनंदिन कामों में व्यस्त महिलाओं द्वारा जोड़ी गयी लड़ियाँ प्रतीत होती है, जिनमें साहित्यिक अन्य गुणों की कमी होते हुए भी भावाभिव्यक्ति की मार्मिकता जरूर मिलती है।"[48] डॉ. श्याम परमार ने लोकगीतों के सृजन में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अत्यधिक योगदान माना है। उनका कहना है कि ह्व "लोकगीतों का सृजन अधिक नारी ने किया है, पुरुष ने नहीं। जीवन के अनेकानेक अवसरों पर स्त्रियों के कोमल कण्ठों ने अपने अभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति गीतों को गाकर ही की है। नारी के जीवन वेदना, हास्य, उमंग, शृंगार, अभिसरण, चांचल्य, राग–द्वेष, कुढ़न, घृणा आदि सभी गीतों की पंक्तियों में एक–एक कर प्रकट हुए हैं। जितना अधिक नारी का गीतों से सम्पर्क आया उतना ही अधिक उसके जीवन का यथार्थ चित्र गीतों ने प्रस्तुत किया है। भारतीय लोकगीतों ने तो जैसे नारी के जीवन का चित्र प्रस्तुत करके सब कुछ कह डाला है।"[49]

लोकगीत मानव-मन की सहज, सरल और अकृत्रिम अभिव्यक्ति है। लोकगीतों में मानव के सुख-दुख का इतिहास स्नेह और करुणा के विविध रंग तथा आँसू और मुस्कान के चित्र अपने प्रकृत रूप में प्रकट हुए हैं। कहीं पुत्र के जन्म पर हर्ष और उल्लास से भरे हुए स्वरों में ये लोकगीत उभर आये हैं तो कहीं कन्या-बिदाई के समय अथवा किसी प्रिय-प्रवास की बेला में आत्मदाही पीड़ा के सिसकते स्वरों में ये गीत ध्वनित हुए हैं। मन का प्रत्येक चित्र उसी रूप में व्यंजित हुआ है, जिस रूप में उसका हृदय में उत्स हुआ। स्त्री जाति बड़ी ही सरल, सीधी एवं भाव-प्रवल होती है। "वे खुशी में भी गाती है और दुख में भी। जब कभी कोई भाई बहन के यहां जाता है या वह मायके आती है तो भेंट करते समय अपनी सारी जीवन गाथा सुना जाती है। उस रोने में भी संगीतात्मकता होती है। एक लय होती है और एक उतार-चढ़ाव। यदि ध्यान से देखें तो नारी जीवन ज्योतिष के ग्रहों की भाँति बालिका, युवती, वधु वेदना सारी वेदना, सारी खुशी एवं राग-द्वेष आदि लोक-गीतों में अंकित है। वास्तव में नारी जीवन ही संगीतमय है।"[50]

अधिकांशतः लोकगीतों में स्त्रियों की भागीदारी रही। ये गीत स्थानीय स्त्रियों द्वारा निर्मित किये जाते हैं। क्योंकि काम करते हुए हृदय के मनोविकारों को वे अपने गीतों के माध्यम से गाती है। इन गीतों में कहीं तो दुखिनी विधवा का करूण क्रन्दन सुनने को मिलता है, कहीं वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना अभिव्यंजित होती है। कहीं विरहिणी स्त्री की व्याकुलता का वर्णन है, तो कहीं सास के द्वारा वधू की नारकीय यन्त्रणा का चित्रण। पुत्रहीन विधवा की मनोव्यथा का कारुणिक वर्णन अनेक भारतीय लोकगीतों में उपलब्ध होता है जो पाषाण हृदय को भी पिघला देता है। स्त्री को सन्तान नहीं होती, इससे बढ़कर उसे और दुःख नहीं। सारे सुख है, पर मातृत्व की गरिमा नहीं मिली तो जीवन ही निरर्थक है। सास ताने मारती है कि उसने वंश डुबो दिया। लोग बाँझ का मुख नहीं देखना चाहते। उपेक्षा की पीड़ा भोगती हुई स्त्री अपने पति से वृन्दावन चलने को कहती है ताकि प्रभु की कृपा से उसकी गोद भर सके। कोई ऐसा उपाय है, जिसे पाकर सन्तान मिल सकती है ह्न

"ए मोय सब सुख दियौ भगवान
एक दुख भारी कोख को
ए पिया, उठि बिंदावन जाउ
माँ बूटी बिकत्यै लाल की
ए गोरी खोजन-खोजत है गयी सांझ

पर बूटी न पाई लाल की।
ए मैं ठाड़ी नीबरियाँ तेरी ओट
हरीश मारौ सास ने
ए न्याँ तो हटि जा बाँझ बंझोट
तैंने नाम डुबायौ मेरे लाल की
ए पिया लोओ ढाल तरवार
मो बाँझ को मुख न देखियै
ए गोरी कौनें तौ बौले तोते बोल
कौनें तौ मोर ताहिने
ए गोरी कहों तो लाऊँ मील के लाल
बाँझ कौ नाम मेंटियै
राजा, मोल के ढोल न सुहाय
अंत ते ई नाम चालाइयै।"[51]

उपर्युक्त सन्दर्भ में डॉ. सत्या गुप्ता ने भी स्पष्ट किया है कि ह्व विवाह के बाद से ही स्त्रियों में मातृत्व भावना का उदय होता है और वह उसके लिए अनेक कामनाएँ करने लगती हैं। उसकी पूरी आराधना के मूल में यही अभिलाषा निहित रहती है। वह अपने मन में उसके सामाजिक महत्त्व को भली–भाँति समझती रहती है। पर अगर दुर्भाग्यवश उसे यहाँ बालक नहीं होता है तो उसका समाज तिरस्कार करता है और वंध्या घोषित कर देता है। वंध्या का दुःख बहुत ही व्यापक होता है। उसको कहीं पर स्नेह व सन्तोष नहीं मिलता और वह अपना जीवन निरर्थक मानने लगती है।

भारतीय समाज में विधवा स्त्री का जीवन भी किसी त्रासदी से कम नहीं है। पति की मृत्यु और विधवा जीवन के दर्द को व्यक्त करनेवाले लोकगीतों में विधवा के हृदय का कारुण्य शब्दों द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि पति की मृत्यु पर पत्नी अपने को जीवन भर के लिए असहाय समझकर धैर्य का बाँध तोड़ देती है और अंधकारमय भविष्य की सारी विभीषिकाएँ उसे हतप्रभ और हताश कर देती हैं। स्त्री का पति जब तक जीवित रहता है, तब तक वह सभी कष्टों को सह लेती है। कम से कम उसकी माँग का श्रृंगार तो है किन्तु वह विधवा हो जाती है, उसकी आत्मा पुकार उठती है ह्व "हे बाबा ! सिन्दूर बिन मेरी माँग रो रही है आज काजल बिन आँख। हे बाबा! मेरी गोदी बालक के बिना रो रही है और कन्हैया बिन सेज।'

"बाबा सिर मोरा रोवेला सेन्दुर बिनु;
अँखिया कजरवा बिनु रे राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु
सेजिया कन्हइया बिनु रे राम।"[52]

लोकगीतों में स्त्री के जीवन की, उसके प्रभावों की सूक्ष्म व मनौवैज्ञानिक अभिव्यंजना हुई है। स्त्री ने अपने कोमल कण्ठ द्वारा जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर दिया है। प्रस्तुत गीत द्रष्टव्य है ह्न

"कइसे बलम निनिया आई हो जब जइबा बिदेसवाँ
सासू ननदि मोरी पनियाँ क पठवैं,
पतरी कमर लचि जाई हो जब जइबा विदेसवाँ
सासू ननद मोरी रदी पिसावै
नरम कलाई लचि जाई हो जब जइबा विदेसवाँ
सासू ननद मोरी रोटिया पॉवावैं
गोरा बदन कुम्बिलाई हो जब जइबा विदेसवाँ।"[53]

अर्थात् हे प्रिय जब तुम विदेश चले जाओगे तो सास ननद के कहने पर पानी भरने से मेरी पतली कमर लचक जाएगी, हल्दी पीसने से मेरी नरम कलाई लचक जाएगी। रसोई बनाने से मेरा गोरा बदन कुम्हला जाएगा।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्रियों का मानसिक अनुकूलन हो जाता है। लोकगीतों में सास द्वारा बहू को सताए जाने के प्रसंग, बहू जिसका पति परदेश चला गया है उसकी विवशता सास, ननदों के द्वारा दी गयी यातना का वर्णन लोकगीतों की प्रमुख भाव-भूमि रहा है। यहाँ पर यह भी ध्यातव्य है कि लोकगीतों में स्त्रियों के द्वित्व विलोम आपस में टकराते हुए दीख पड़ते हैं। सुखिया और दुखिया दो तरह की स्त्रियाँ मानी गयी हैं जो लोककथाओं में दो बहने, दो पत्नियाँ, ननद-भाभी, सास-बहू, दो सहेलियाँ बनकर अक्सर प्रकट होती हैं। एक का पति उसे प्यार करता है, दूसरी का नहीं । पति परदेस चला गया है और सास बहू को सता रही है ह्न

"सासु मोरी कहै बझनिया ननद ब्रजबसिन,
जेकर वारी वियहिया वे धरा से निकारै।"[54]

विश्व में स्त्री सम्बन्धी इतने आन्दोलन हुए है भ्रूण हत्या, दहेज–प्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, पर्दा–प्रथा को जड़ से हटाने के लिए न जाने कितने स्वर बुलन्द हुए, परन्तु वे इस बात से अनभिज्ञ हैं। जब ये ग्रामीण स्त्रियाँ लोकगीत रचती एवं गाती हैं तो समाज जटिल समस्याओं को जड़ से उखाड़ फेंकने की तरकीब भी सुझा देती हैं जिन्हें सुनकर इनके समृद्ध बौद्धिक स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। इनके गीतों का प्रत्येक शब्द इनका अपना है, इनके हृदय से निकला, इनकी भाषा से जुड़ा, इनकी भाषाओं को व्यक्त करता बहुत ही स्वाभाविक और शुद्ध लगता है।

स्त्री चाहे किसी भी परिवेश, वर्ग और समुदाय की हो, वह सहजता के साथ स्वयं को परिवर्तित कर लेती है परन्तु जब कोई अन्य उसका गलत फायदा उठाने की कोशिश करता है तो वह प्रतिकार भी करती है, इसकी झलक लोकगीतों में साफ–साफ देखी जा सकती है। ससुराल में बहू की दशा कभी–कभी बड़ी दयनीय हो जाती है। सास–ननद की गालियों और मारने–पीटने का विरोध पति भी जब नहीं करता तो बहू अपने भाग्य को झींकती है। वह अपने पति की कायरता पर क्रोधित होकर उससे प्रति–शोध लेने का निश्चय करती है ह्न

"जमुना जल बरसो ऐ धीरे–धीरे
जमुना जल बरसे यमुना जब बरसे
पैर मेरा रपटे ऐ धीरे–धीरे
पैर मेरा रपटे पै मेरा रपटे
मगर सिर छलके ए धीरे–धीरे
मगर सिर छलके, मगर सिर छलके
चुनर मेरी भीजें ऐ धीरे–धीरे
चुनर मेरी भींजे चुनर मेरी भीजें
सास मेरी डाटे ऐ धीरे–धीरे
सास मेरी डाटे, सास मेरी डाटे
ननद पिटवावे, ऐ धीरे–धीरे
ननद पिटवावे, ननद पिटवावे
छज्जे पे खड़े देखे, ऐ धीरे–धीरे
तरस नहीं भावे ऐ धीरे–धीरे
मैं मायके चली जाऊंगी ऐ धीरे–धीरे
वही पै बुलवाऊँगी ऐ धीरे–धीरे

अम्मा से पिटवाऊँगी ऐ धीरे–धीरे
मैं माँफी मगवाऊँगी ऐ धीरे–धीरे
छज्जे पे खड़ी देखूँ ऐ धीरे–धीरे।"[55]

ग्रामीण समाज में स्त्रियों को शिक्षा और व्यक्तित्व के विकास के समुचित अवसर नहीं मिलते वहाँ यातना और पीड़ा कष्टप्रद गाथा की मौखिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनते हैं। लोकगीत के सृजन के लिए शिक्षा, शास्त्रीय, ज्ञान, पद, मर्यादा, अक्षर ज्ञान, आर्थिक सम्पन्नता किसी का होना अनिवार्य नहीं। जब मन की यह सर्जना अत्यंत सहज स्वाभाविक ढंग से नित्यप्रति की दिनचर्या के अनन्तर चलती रहती है। ये सिर्फ सुख–दुख की गाथाएँ नहीं बल्कि स्त्री प्रतिरोध के पुराख्यान भी हैं। इच्छा अथवा अनिच्छा से किसी ने एक स्त्री का शील भंग कर दिया। उस स्त्री को उस पुरुष पर क्रोध आता है। वह उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने की धमकी देती है ह्न

"अरजी साजन तै दिलवाय दऊँगी तने मोरा जुबना लूटा।
अ र र र ! तेने मोरा जुबना लूटा। अरजी,
दिल्ली जा के रपट लिखाऊँ, कलकता में केस चलाऊँ
बम्बई जेल कराय दऊँगी, तेने मोरा जुबना लूटा। अरजी..
चाहे बिकलै मौहन माला, चाहे घर की कढ़ै दिवाला
चकिया तोय पिसाय दऊँगी, तेने मोरा लूटा
अ र र र ! तेने मेरा जुबना लूटा। अरजी . ."[56]

'लोकगीत' ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ स्त्रियों ने स्वयं को सार्थक, स्वायत्त और ज्यादा पुरजोर ढंग से पहचानने, अपने स्वर की अभिव्यक्ति करने का साहस किया है। उनकी अभिव्यक्ति यहाँ सत्यतापूर्ण है क्योंकि उनमें भाव और अभिव्यक्ति के बीच बनाव और निखार की बौद्धिक कृत्रिमता नहीं है, लगभग निरक्षर स्त्री लोकगीतकारों ने अपने मनोभावों को उसमें ढाला और गाया है। स्त्री का एकाकीपन, स्त्री होने के कारण जिस दमन और उत्पीड़न का शिकार उसे बनना पड़ता है। उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में 'लोकगीत' एक बड़ी भूमिका निभाते हैं। ये लोकगीत स्त्री मन के उल्लास के गीत हैं – मन के दबे छिपे भावों व अतल में डूबी वेदनाओं के साथी हैं।

स्त्री लोकगीतों के माध्यम से अपने श्रम–जनित दुखों का परिहार भी करती है। रोपाई, बोआई, जाँत, कटनी आदि कार्य करते समय स्त्रियाँ कोई न कोई गीत गाती है। लोकगीत उसके

श्रम या वेदना के परिहार का माध्यम बनते हैं। कई बार जो बात किसी से नहीं कह पाती – वह लोकगीतों के माध्यम से कह डालने में सक्षम हो जाती है। स्त्रियों के द्वारा गाए जानेवाले इन लोकगीतों को देखकर डॉ. बद्रीनारायण लिखते हैं कि 'ये लोकगीत मात्र गीत नहीं हैं भारतीय समाज में दमित नारी के प्रतिरोध का शोकमय आख्यान हैं। अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में वह अपने ऊपर हुए दमन की हरेक कील को हिलाती हुई दिखती है। दुखद यह है कि उसकी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति को मात्र हम उसके गीत–कहानी एवं मुहावरे मानकर देखते हैं। फलतः प्रतिरोध के उसके मौखिक दस्तावेजों को न तो हम समझ पाते हैं न देख पाते हैं न सुन पाते हैं।' अतः लोकगीतों की रचयिता प्रायः स्त्रियाँ रही हैं। लोकगीतों में उनके हृदयगत भाव, तमाम वेदनाएँ असीम मन की कल्पनातीत उड़ानें, सभी कुछ कंठ के राग बनकर निकल पड़े। इसीलिए लोकगीत और स्त्री स्वरों का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. कुलदीप, पृ. 5
2. गंगाघाटी के गीत, डॉ. हीरालाल तिवारी, पृ.1
3. महाभारत (आदि पर्व)1/54
4. वही, 1/69
5. अवधी और भोजपुरी लोकगीतों में राम-कथा, डॉ. किरल मराली, पृ. 20
6. लोक-संस्कृति के प्रवर्तक सूर, डॉ. रामशरण गौड़, पृ.10
7. वही, पृ.10
8. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ.3
9. "The people that live in more or less primitive conditions outside the sphere of sophisticated influences" - A study of orisson Folklore, by Dr. Kunj Bhari Dass
10. 'जनपद' वर्ष- 1, अंक-1, सं. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 65
11. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व, डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, पृ.32
12. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृ.3
13. लोक साहित्य में प्रतिमान, डॉ. कुन्दनलाल उत्प्रेती, पृ.5-6
14. शोध : स्वरूप एवं मानव व्यवहार, बैजनाथ सिंहल, पृ.19
15. मैथिली लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. ताराकान्त मिश्र, पृ.6-7
16. 'सम्मेलन-पत्रिका' (लोक संस्कृति विशेषांक), सं. श्री रामनाथ 'सुमन', पृ. 65
17. लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ. विद्या चौहान, पृ.41
18. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ.111
19. धरती गाती है, डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ.178
20. लोक साहित्य के आयाम, सं. डॉ. जगदीश प्रसाद पीयूष, पृ. 59
21. Encyclopadia of Britanica, Vol-2, Page-1082
22. "A Folk Song is neither new non old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, New leaves, New fruits" - Ralph william, Encyclopaedia Britanica, Vol-2, Page-448
23. A Folk song Composes itself, Grimin, Encyclopaedia Britanica, vol-2, Page-447
24. "The primitive spontaneous music has been called folksong"-perry, Eneyclopeadia Britanica, Vol-2, Page-447
25. कविता कौमुदी (भाग-2), पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 2

26. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 326
27. भदावरी लोकगीतों में फाग, डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय पृ. 74
28. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति, अंक सं. 20, पृ. 37
29. राजस्थान के लोकगीत(पूवांद्ध), डॉ. सूर्यकरण पारीक, पृ.1-2 (प्रस्तावना)
30. लोक साहित्य के प्रतिमान - डॉ. कुन्दनलाल उत्प्रेती, पृ. 47
31. मैथिली लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ. तेजनारायण लाल शास्त्री, पृ.16
32. धरती गाती है, डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 20
33. सम्मेलन पत्रिका (लोक-संस्कृति विशेषांक में) डॉ. फड़के का आलेख (मराठी लोकगीत), पृ.250
34. A Folk song is a spontaneous out flow of the life of the people who live in a more less primitive conditions, K. B. Dass, 'A Study in orrison Folk lore.' Introduction page No. 1
35. अवधी का लोक-साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ.149
36. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ.4
37. ऋग्वेद 8/32/1 कण्व इन्द्रस्थ गाथया
38. निरूक्त 4/6 की व्याख्या से लिया गया है
39. श्रीमद्भागवत (दशम स्कन्ध), डॉ. तेजनारायण लाल के मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ.20 से उद्धत
40. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डॉ. तेजनारायण लाल शास्त्री, पृ.21
41. नैषधीय चरित्रम, 2/85
42. गाथा सप्तशती, 33/8 अमरूक
43. रघुवंश : कालिदास - 3/119
44. मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, डॉ. तेजनारायण ला. शास्त्री, पृ. 21
45. वही
46. रामचरितमानस (बालकाण्ड), दोहा 289 के बाद की चौपाई
47. कविता कौमुदी (भाग-3) रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 82
48. मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत, डॉ. मोहनानन्द झा, पृ. 82
49. भारतीय लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, पृ. 125
50. भोजपुरी लोक गीतों के विविध रूप, प्रो. श्रीधर मिश्र, पृ. 74
51. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ. 40
52. खड़ी बोली का लोक साहित्य, डॉ. सत्या गुप्ता, पृ. 43
53. वाचिक कविता : अवधी, सं. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 87
54. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 262
55. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. कुलदीप, पृ. 233
56. वही, पृ. 294

❖❖❖

3. तीसरा अध्याय : अवधी और मणिपुरी संस्कार गीतों के स्त्री–स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन।

3.1 भारतीय संस्कार गीत

3.1.1 जन्म संस्कार के गीत

3.1.2 विवाह संस्कार के गीत

3.1.3 मृत्यु संस्कार के गीत

3.2 निष्कर्ष

3.1 भारतीय संस्कार गीत :

भारतीय लोकजीवन सबसे अधिक धर्म से ही प्रभावित है। इसमें भी संस्कारों का अधिक प्रभाव है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों का विधान है। संस्कार के साथ हमारे बहुमूल्य विश्वास, विचार और भावनाओं का सम्बन्ध बना रहता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार समस्त द्विज मात्र के लिए संस्कार आवश्यक है। वैदिक मत एवं लोकमत के आधार पर मनुष्य जन्म से ही शुद्ध होता है तथा संस्कारों द्वारा ही उसकी शुद्धि होती है। "संस्कारों के अभाव में जीवन की घटनाएँ, शरीर की दैनिक आवश्यकताओं और आर्थिक व्यापारों के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से रहित हो जाती हैं। संस्कारों की एक विशेषता यह है कि उनके साथ मूल्य–गर्भित विश्वास और विचार लगे रहते हैं। इन्हीं के लिये मनुष्य जीना चाहता है। इन्हीं विश्वासों एवं विचारों में समाज की नींव है और यहीं से पोषण मिलता है। सामाजिक विनय, शक्ति और स्वतंत्रता सभी का स्रोत इन्हीं में है।"[1]

शांकरभाष्य, वेदान्तसूत्र में संस्कार की परिभाषा देते हुए कहा गया है ह्न **"संस्कारों हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा** अर्थात् दोषों के अपनयन एवं गुणों के आधान को संस्कार कहते हैं।"[2] जैमिनी के सूत्रों में संस्कार शब्द कई बार आया है और सभी स्थलों पर यह यज्ञ में पवित्र या निर्मल कार्य के अर्थ में कई बार आया है और सभी स्थलों पर यह यज्ञ में पवित्र या निर्मल कार्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शवर ने संस्कार शब्द का अर्थ बताया है ह्न ***"संस्कारों नाम स भवति यीस्मन्जायते पदार्थो भवति योग्यः कश्चिदर्धस्य*** अर्थात् संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है। तन्त्र वार्तिक में लिखा है 'संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती है।"[3]

संस्कार शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्य लगाकर (सम्+कृ+घञ्) बना है। यह शब्द अनेकार्थी है। "धार्मिक विधि–विधान के रूढ़ अर्थ में इसका अभिप्राय शुद्धिक्रिया से लिया गया है। व्यापक अर्थ में इसका सम्बन्ध व्यक्ति के दैहिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक परिष्कार से है। संस्कारों का उद्देश्य संस्कार्य व्यक्ति के सम्पूर्ण

व्यक्तित्व का परिष्कार करना है। इनसे व्यक्ति के नकारात्मक स्वभाव का शमन तथा सकारात्मक गुणों का बीजारोपण होता है। सुसंस्कारित व्यक्ति और समाज में विश्वकल्याण की भावना जाग्रत होती है।"[4]

संस्कारों का विशेष प्रयोजन मानव का संस्कार करना है, जैसा कि डॉ. सत्या गुप्त का कहना है कि "वास्तव में हमारी भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है, मनुष्य के विचारों का संस्कार करना तथा आदर्श बनाना। परिष्कार करने हेतु ही हिन्दू धर्म में विशेषतः संस्कारों का समावेश है।"[5] वस्तुतः संस्कृति और संस्कार का गहरा सम्बन्ध है। "संस्कृति, संस्कारों द्वारा मानव जीवन के विविध क्रिया-कलापों का परिष्कार करती है।"[6]

प्राचीन काल से ही 'संस्कार' भारतीय लोक जीवन के आवश्यक अंग बन गये हैं। भारतीय समाज व्यवस्था एवं सामाजिक संगठन संस्कारों पर ही निर्भर है। मनुष्य के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्युपर्यंत संस्कारों द्वारा परिष्कृत होता है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में मानव जीवन के षोडष संस्कारों को मान्यता प्रदान की गयी है। प्राचीन समय में मानव जीवन से सम्बन्धित सोलह संस्कारों का विधान था, जो सभी शास्त्रीय थे, सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह हैं, यद्यपि विभिन्न धर्मग्रन्थों में इन संस्कारों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी गयी है। लेकिन आधुनिकतम पद्धतियों ने यह संख्या स्वीकृत कर ली है। अब सोलह संस्कारों का उल्लेख करते हुए जनपदीय समाज में प्रचलित संस्कारों एवं संस्कारों को सम्पन्न करने की लोक-रीति का अध्ययन किया जाएगा।

1. गर्भाधान संस्कार : संस्कारों का प्रारम्भ गर्भाधान संस्कार से होता है। "इसे लोकजीवन में और शास्त्र में भी ऋतु शुद्धि संस्कार कहा गया है। लोकगीतों में इसकी सर्वाधिक व्याप्ति है। गर्भाधान विषयक गीतों में प्रायः 'दोहद' सम्बन्धी गीत प्राप्त होते हैं, साथ ही संतान लालसा विषयक लोकगीत भी। इससे सम्बन्धित तथा बन्ध्यापन-मुक्ति से सम्बन्धित गीत जनपदीय लोकगाथाओं में भरे पड़े हैं।"[7] गर्भाधान क्रिया द्वारा ही वंश परम्परा सम्भव है, ऐसा प्रकृति का नियम है। "गर्भाधान का कर्ता स्वभावतः पति होता है। वह 'विष्णुर्योनिम्' मंत्र का उच्चारण करता है। गर्भाधान सम्बन्धी एक अन्य मंत्र का भाव इस प्रकार है ह्न प्रिय, मैं सदा आदर किया करूँगा। एक दूसरे के मन को रखते हुए भगवान करे हम दोनों सौ वर्ष तक सब कुछ देखते और सुनते हुए पूर्ण स्वस्थ रहकर जीते रहें (यन्ते सुसीमे हृदयम्)।"[8] "धर्मशास्त्रों के अनुसार मानव इस क्रिया को शारीरिक आवश्यकता अर्थात् कामतृष्णा की तृप्ति के रूप में न करके, वंश परम्परा एवं

योग्य सन्तान की प्राप्ति के उद्देश्य से सम्पन्न करें। सुयोग्य एवं सुन्दर सन्तान के लिए गर्भाधान संस्कार आवश्यक है।"[9]

वर्तमान समय में यह संस्कार विवाह-संस्कार में ही समाहित हो गया है, इसलिए इस संस्कार का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया है। साथ ही पुरोहित का समस्त योगदान भी जो कि संस्कार सम्पन्न कराने में होता था, समाप्त हो गया। भारत की भिन्न-भिन्न जातियों में अपनी-अपनी कुलरीति के आधार पर यह संस्कार सम्पन्न होता है।

2. पुंसवन संस्कार : गर्भाधान संस्कार के दूसरे या तीसरे मास में गर्भ प्रकट होने पर पुंसवन संस्कार सम्पन्न होता है। वास्तव में यह संस्कार गर्भ का संस्कार है, स्त्री का संस्कार नहीं। इस संस्कार का उद्देश्य गर्भस्थ शिशु को पुत्र रूप देना है। "इस प्रकार जिस संस्कार से पुत्र का जन्म होवे, उसे पुंसवन कहते हैं।"[10]

"इस संस्कार को यह नाम इसलिए दिया जाता है कि इसके करने से पुत्रोत्पत्ति होना माना जाता है - ***'पुमान प्रसूयते येन तत् पुंसवन-मीरितम्।'*** पुंसवान शब्द अथर्ववेद (6.11.1) में आया है जिसका शाब्दिक अर्थ है लड़के को जन्म देना।"[11] "इस संस्कार को पुष्य नक्षत्र में सम्पन्न किया जाता है। वर्तमान समय में यह संस्कार लुप्तप्राय है। केवल उन्हीं परिवारों में इसके चिह्न दीख पड़ते हैं जहाँ स्त्री का गर्भपात होने की संभावना होती है या होता रहता है। वहाँ भी यह कृत्य धार्मिक न रहकर मात्र संतान प्राप्ति की इच्छा रह गया है।"[12] पुंसवन संस्कार से सम्बन्धित लोकगीतों में प्रायः पुत्र-प्राप्ति की कामना मुखरित होती है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार : सीमन्तोन्नयन भी प्राक् जन्म संस्कार है। यह संस्कार गर्भाधारण के चौथे, छठे या आठवें महीने में सम्पन्न होता है। इस अवसर पर गर्भरक्षा और निर्वाध प्रजनन की कामना की जाती है। "हरियाणा, दिल्ली के क्षेत्रों में इस संस्कार को 'सतमासा पूजना' कहते हैं। पंजाब में इसे 'रीताँ चढ़ाना' कहा जाता है। शिष्ट समाज इसे 'अंगरणी' कहता है।"[13] इस संस्कार के अवसर पर गाये जानेवाले गीत को 'साध-गीत' 'दोहद-गीत', 'सतमासा-गीत', 'अकौना-गीत' आदि कहलाते हैं।

4. **जातकर्म संस्कार** : जातकर्म संस्कार अति प्राचीन संस्कार है। इसे जन्मोत्सव संस्कार भी कहा जा सकता है। अथर्ववेद (1.11) में एक सूक्त सुरक्षित प्रसव के सन्दर्भ में है। आसन्न प्रसवा महिला के लिए कहा गया है - "हे पूषन् ! प्रसूति के इस अवसर पर विद्वान् और श्रेष्ठ (अर्यमा)

होता तेरा यजन करें . . . भूमि की चार दिशायें हैं और जिस प्रकार भूमि को चारों दिशायें घेरे हैं उसी प्रकार कर्म भी चारों ओर से घिरा हुआ है। . . . तू जरायु के साथ बाहर आ जा, जरायु भी बाहर आए।"[14] "प्राचीन काल में यह संस्कार गर्भिणी की प्रसव-पीड़ा के साथ ही प्रारम्भ हो जाता था तथा इसे सम्पन्न कराने में पति का विशेष योगदान रहता था। गर्भिणी का पति, पुरोहित द्वारा बताये गये मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ, समस्त कार्य विधि-विधान से करता था तथा स्वयं ही नवजात शिशु को स्वर्ण-शलाका से मधु चटाता था। विधि-विधान से जातकर्म संस्कार सम्पन्न करने से बालक में प्रशस्त तेज तथा ज्ञान की जागृति होती है तथा बालक के गर्भ सम्बन्धी सभी विकार नष्ट हो जाते हैं।"[15]

वर्तमान समय में यह संस्कार लौकिक रूप में ही जीवित है। इस अवसर पर मंगल गीतों का गायन आवश्यक समझा जाता है। "परिवार तथा पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्रित होकर पुत्र जन्म के पश्चात् छह दिनों अथवा बारह दिनों तक गीत गाती हैं, जिन्हें 'सोहर' कहा जाता है। 'सोहर' विशेष रूप से स्त्रियों के द्वारा ही गाये जाते हैं और इनके निर्माण में भी स्त्रियों के प्रयास निहित हैं।"[16] इस संस्कार के अवसर पर 'सोहर' गीत के अतिरिक्त 'सरिया' नाम के एकल तथा वृन्दगान (सामूहिक) लोकगीतों का गायन भी होता है।

5. नामकरण संस्कार : नामकरण संस्कार पुत्र-जन्म के दसवें दिन होने के कारण जनपद में 'दस्ठौन' या 'डट्ठउन' नाम से जाना जाता है। "इस दिन बालक और जच्चा को सुन्दर वस्त्र पहिनाये जाते हैं। जच्चा सुन्दर आभूषणों को पहनकर तथा पूर्ण श्रृंगार करके पाँव में महावर लगाती है। बालक को टोपी, कमीज, कच्छा, बनियाइन आदि पांच कोरे वस्त्र पहनाए जाते हैं। डोरे की बनी हुई कठुला या पहुँची भी बालक को पहनाई जाती है।"[17] इस संस्कार में पुरोहित की प्रमुख भूमिका रहती है। तत्पश्चात् वह नवजात का नामकरण करता है। स्त्रियाँ इस अवसर पर नृत्य-गान भी करती हैं।

6. निष्क्रमण संस्कार : निष्क्रमण संस्कार के अवसर पर नवजात को सर्वप्रथम सूर्य का अवलोकन कराया जाता है। जनपद में यह संस्कार 'बाहर-निकालनो' कहलाता है। निष्क्रमण का अर्थ है - बाहर जाना। "जन्म से छठे दिन आयोजित सूर्य पूजा को 'छठी' कहते हैं और बारहवें दिन के शुद्धीकरण को 'बरहौं' कहते हैं। लोकगीतों में छठी ही सर्वाधिक प्रचलित है। इन्हें कहीं 'कठुला' कहा जाता है, कहीं झुनझुना। इस अवसर पर स्वजन, परिजन, प्रजावर्ग, जो मान-मनुहार कराते हैं, को नेग-निछावर होती है, सौभाग्यवती स्त्रियों का जो 'नहछू' किया जाता है,

माँ एवं नवजात को स्नानोपरांत जो वस्त्राभूषण दिए जाते हैं।"[18] इस अवसर पर सोहर गीत भी गाये जाते हैं।

7. अन्नप्राशन संस्कार : अन्नप्राशन संस्कार को जनपद में 'पासनी' या 'तिलचौरी' के नाम से जाना जाता है। इस अवसर पर नवजात को खीर–चटाई जाती है और स्त्रियाँ गाती–बजाती हुई किसी देवस्थान पर बच्चे को कोरे कपड़े पहनाकर ले जाती हैं और पूजन करती हैं। घर वापस आकर पुनः ढोलक बजाती हुई 'सोहर गीत' गाये जाते हैं।

8. चूड़ाकरण संस्कार : चूड़ाकरण संस्कार अत्यन्त प्राचीन संस्कार है। "इसे कहीं किसी सूची में 'केशान्त' कहा गया है, कहीं 'चौथाकर्म' और कहीं चूड़ाकर्म।"[19] इस संस्कार में बालक के प्रथम बार केश काटे जाते हैं। इससे पूर्व बालक के केश काटना निषिद्ध है। इसे जन्म के पहले, तीसरे, पाचवें विषम वर्षों में ही सम्पादित किया जाता है। इससे अधिक विलम्ब करना अनुचित है। जनपद में सभी जातियों में चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार का विधान है।

"वैदिक काल में भी चूड़ाकर्म एक धार्मिक संस्कार था, जिसमें सिर का भिगोना, छुरे की स्तुति, नापित को निमन्त्रण, वैदिक मन्त्रों के साथ केशच्छेदन तथा दीर्घायु, समृद्धि, वीर्य तथा सन्तान के लिए भी कामना की जाती है।"[20] "महाकवि कालिदास के रघुवंश में मुण्डन संस्कार का उल्लेख किया गया है।"[21] स्वास्थ्य एवं धार्मिक दृष्टिकोण से भी यह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। इस शुभ अवसर पर मुण्डन–गीत, झलरी–गीत और सोहर का गायन किया जाता है।

9. कर्णवेधन संस्कार : "पूर्ण पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व की प्राप्ति के लिए यह संस्कार किया जाता है। सूर्य की किरणें कान के छिद्र से प्रविष्ट होकर बालक–बालिकाओं को पवित्र करती है और तेज सम्पन्न बनाती हैं। ब्राह्मण और वैश्य का रजतशलाका से, क्षत्रिय का स्वर्णशलाका से तथा शूद्र का लौहशलाका द्वारा कान छेदन का विधान है। बालक अथवा बालिका के कानों का निम्न मंत्र द्वारा अभिमंत्रण होता है ह्न

"भद्र कर्णभिः शृणुयाम देवा भद्रं परयेमाक्षभिर्यत्राः
स्थिरैरगडैस्तुष्टुवाः सस्तनूभिर्व्यरोमहि देवाहितं यदायुः ।"[22]

अतः कर्णवेधन संस्कार में सर्वप्रथम बालक के दाहिने कान, फिर बाएँ कान में सूर्य से छेद का प्रावधान है।

10. विद्यारंभ संस्कार : यह संस्कार बच्चे के द्वारा विद्यारंभ के अवसर पर सम्पन्न होता है। "जनपद में इसे 'पट्टी पुजनों' कहते हैं। इसमें पुरोहित आकर बच्चे से पट्टी की पूजा करवाता है और सर्वप्रथम पट्टी पर ऊँ लिखवाता है। इस अवसर पर बुलावा का भी आयोजन होता है। इस संस्कार के अवसर पर सोहर-गीत गाये जाते हैं।"[23] अब इस प्रथा के लुप्त हो जाने से ये गीत भी स्मृतिशेष हो गए हैं।

11. उपनयन संस्कार : इसे 'जनेऊ', 'वेदारम्भ', 'दीक्षा', 'द्विजत्व-प्राप्ति', 'बरूआ', 'शिखासूत्र-ग्रहण' आदि नाम से जाना जाता है। "सूत्र युग तक उपनयन संस्कार के साथ कर्मकाण्ड भी जुड़ गया। अंगवस्त्र का स्थान यज्ञोपवीत या जनेऊ ने ले लिया। उपवीत धारण करने की आयु 8 वर्ष से 16 वर्ष तक निश्चित की गई। उपनयन काल, आयोजन, सहभोज, स्नान, कौपीन, मेखला, दंड आदि के विधि-विधान भी बने।"[24] इस अवसर पर 'बरूआ' गीत और 'भोखी' के गीत गाए जाते हैं।

12. वेदारंभ संस्कार : यह संस्कार सर्वप्रथम उल्लेख व्यास स्मृति (1.14) में मिलता है। "आरंभ में उपनयन संस्कार के साथ ही वेदारंभ हो जाता था। चारों वेदों के पढ़ने में 48 वर्ष लग जाते थे। समय के अनुसार उपनयन दैहिक संस्कार रह गया। सामान्यतः ब्राह्मण पुरोहित ही वेद-वेदांगों को पढ़ते थे। शनैः शनैः लोकभाषा का विकास हुआ। व्यवसायों में परिवर्तन आने लगे। कालान्तर में विस्तार के कारण वेदों के संहिता भाग, ब्राह्मण आश्ण्यक उपनिषद् तथा सूत्र ग्रन्थ आदि समस्त साहित्य का अध्ययन संभव नहीं रहा। सामान्यतः वेद और उसकी भी अपनी शाखा (यथा- यजुर्वेद शाखा माध्यन्दिन)तक शिक्षा सीमित रहने लगा।"[25] विद्वानों ने वेदारंभ संस्कार को उपनयन तथा समावर्तन के बीच का संस्कार माना है।

13. समावर्तन संस्कार : यह संस्कार 'विद्यान्त' भी कहा जाता है। यह उत्सव गुरुकुल से वापसी के समय मनाया जाता था। वर्तमान में इस प्रथा के लुप्त हो जाने से ये गीत भी निःशेष हो गए हैं।

14. विवाह संस्कार : विभिन्न सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार सबसे महत्वपूर्ण संस्कार है। सभ्य तथा असभ्य सभी जातियों में विवाह-संस्कार अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ सम्पादित किया जा रहा है। धर्मग्रन्थों में विवाह का उद्देश्य काम-तृष्णा की पूर्ति करना नहीं, वरन् सुन्दर एवं योग्य सन्तति प्राप्त करना बताया गया है। अनेक धार्मिक कृत्य, यज्ञ आदि पत्नी के बिना पूर्ण नहीं

होते, इसलिए भी विवाह आवश्यक है। "विवाह हिन्दुओं में एक धार्मिक कृत्य है। पुरुष अपने पितृ ऋण से उऋण होने के लिए विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करता है।"[26] "विवाह द्वारा पति-पत्नी को कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं तथा उनका एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य भी निर्धारित हो जाता है, जिसके अनुसार उन दोनों की जीवन-गाड़ी चलती रहती है। वे दोनों सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देते हुए तथा बच्चों का पालन-पोषण करते हुए, गृहस्थ-आश्रम का पालन करते हैं।"[27] इस प्रकार सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से विवाह एक आवश्यक संस्कार है। विवाह के अवसर पर नए और पुराने कई समारोह होते हैं। प्रायः प्रत्येक समारोह के लिए अलग-अलग गीत हैं। जैसे - 'सोहर', 'बनरा', 'सेहरा', 'गारी' आदि इनमें विशेष लोकप्रिय हैं।

15. अन्त्येष्टि संस्कार : मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम संस्कार है। मृत्यु एक शाश्वत सत्य है। मृत्योपरान्त किया जानेवाला संस्कार ही 'अन्त्येष्टि संस्कार' है। इस प्रकार सोलह संस्कारों में 'अन्त्येष्टि संस्कार' अन्तिम संस्कार है। भारतीय समाज में हर संस्कार के अवसर पर गीत गाने की प्रथा है लेकिन 'अन्त्येष्टि संस्कार' के अवसर पर बहुत कम क्षेत्रों में गीत गाने का प्रचलन है। जैसे - राजस्थान में मृत्यु के अवसर पर गीत गाए जाने का प्रचलन है।

लोकगीत और संस्कारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि मानव जीवन संस्कारों द्वारा निर्मित है तो उस निर्माण का सत्य रूप लोकगीतों में देखा जा सकता है। प्रत्येक संस्कार से सम्बन्धित अनेक लोकगीत इन पवित्र अवसरों पर मुक्त रूप से बिखरे पड़े हैं। प्रत्येक की अपनी विशेषता है। मानव-जीवन की प्रत्येक अवस्था का वर्णन 'संस्कार-गीत' में है। डॉ. शान्ति जैन का कथन है - "हिन्दुओं का सामाजिक जीवन प्रारम्भ से संगीतमय रहा है। उनके प्रत्येक मंगलकार्य में संगीत का प्रमुख स्थान है। जन्म से मरण तथा सभी संस्कारों के साथ उनका अटूट सम्बन्ध है। अतः इन अवसरों पर तरह-तरह के गीत गाये जाते हैं।"[28] "प्रत्येक संस्कार के अवसर पर ग्रामीण कोकिल कंठ वाली स्त्रियाँ सहज एवं स्वाभाविक ढंग से इन मधुर गीतों को गाती हैं। मृत्युगीत के अतिरिक्त अन्य सभी संस्कारों के गीत पर्याप्त संख्या में प्राप्त हैं।"[29]

संस्कार गीतों की मुख्य विशेषता मानव-मन की भावनाओं का सही चित्रण करना है। इसलिए "मानव जीवन की प्रत्येक अवस्था का वर्णन संस्कार-गीतों में हैं। ये गीत मनुष्य जीवन और मानव हृदय के प्रतिबिम्ब कहे जा सकते हैं। जन-साधारण के हृदय में जिस तरह के भाव उठते हैं, संस्कारों के समय जो उल्लास और मादकता मनुष्य में आ जाती है, उनकी अभिव्यक्ति इन गीतों में पाई जाती है।"[30] अतः जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक के विभिन्न कृत्यों (संस्कारों) के

अवसर पर गाये जानेवाले गीतों को 'संस्कार–गीत' कहते हैं। स्त्रियों द्वारा सम्पूर्ण संस्कारों की विधि लोकगीतों द्वारा ही सम्पन्न की जाती है। मानव–मन की विभिन्न भावनाओं का समावेश एवं उद्वेलन इन संस्कार गीतों में प्राप्त होता है।

हिन्दू धर्म शास्त्रों में मानव जीवन के षोडष संस्कारों को मान्यता प्रदान की गई है। मनुष्य के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक कोई न कोई संस्कार होता ही रहता है। परन्तु लोक जीवन में प्रमुख रूप से निम्नलिखित तीन संस्कारों का पालन देखा जाता है –

1.जन्म संस्कार
2.विवाह संस्कार और
3.मृत्यु संस्कार

इन तीन संस्कारों के साथ स्थानीय विधि–विधान अथवा लोकाचार प्रचलित है। अवधी और मणिपुरी जन–जीवन में भी इन तीन संस्कारों को ही महत्वपूर्ण माना गया है। यहाँ इन संस्कारों से सम्बन्धित लोकगीतों में स्त्री स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा, जिससे अवधी और मणिपुरी समाज की स्त्रियों की मनोदशाओं को समझा जा सकता है।

3.1.1 जन्म संस्कार के गीत :

भारतीय समाज में पुत्र जन्म का संस्कार सर्वश्रेष्ठ और महत्वपूर्ण माना जाता है। पुराणों एवं शास्त्रों के अनुसार भी जन्म सर्वश्रेष्ठ संस्कार है। भारतीय संस्कृति में पुत्र–जन्म का इसीलिए महत्व है कि वह कुल का दीपक अर्थात् कुल को प्रकाशित करने व उसको चलाने वाला होता है। प्राचीन काल से भारतीय समाज में पुत्र–जन्म के अवसर पर कई गीत गाये जाने का प्रचलन है।

अवधी और मणिपुरी समाज में जन्म–संस्कार सबसे महान संस्कार है। पुत्र–जन्म के अवसर पर अवध में सोहर, सरिया, चरूवा, पियरी गीत, पालना गीत, मुण्डन गीत आदि गीत गाए जाते हैं । लेकिन मणिपुरी समाज में जन्म के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन प्रायः नहीं है। मणिपुर में वैष्णव धर्म के आगमन के कारण सम्पूर्ण मणिपुरी संस्कृति में व्यापक रूप से परिवर्तन हुआ। इसीलिए वैष्णव धर्म के प्रभाव से मणिपुरी समाज में हिन्दू पद्धति से ही जन्म संस्कार का विधान है किन्तु इसमें स्थानीय गृह देवता की पूजा भी की जाती है। पूजा ब्राह्मणों के

द्वारा सम्पन्न की जाती है। वर्तमान समय में कुछ परिवारों में जन्म-संस्कार हिन्दू पद्धति को छोड़कर स्थानीय विधि-विधान के द्वारा सम्पन्न करने लगे हैं।

सोहर :

पुत्र जन्म के उल्लास के अवसर पर गाये जानेवाले गीत 'सोहर' कहलाते हैं। जिसे कहीं-कहीं 'सोहिलो' भी कहते हैं। भारतीय समाज में 'सोहर' गाने की प्रथा प्राचीन है। किसी-किसी लोकगीत में भी 'सोहर' शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है ह्न

"बाजेला आनंद बधाव महल उठे सोहर हो।"

इसे 'मंगल गीत' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

"गावहि मँगल मंजुलबानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।"[31]

"तुलसीदास जी के 'सहेली सुनु सोहिलो रे' तथा सूरदास जी के 'गाऊं हरि जू को सोहिलो मन और न आवै मोंहि' में सोहिलो का तात्पर्य 'सोहर' से प्रतीत होता है।"[32] सोहर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सूतिकागृह' और प्राकृत के 'सुइहर' से हुई होगी। इसे 'सोलहो' या 'सोहला' भी कहते हैं - स. शोभावत - प्रा. सोहल + क. हि. सोलहा। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने सोर शब्द की व्युत्पत्ति 'शोभन' शब्द से मानी है। उनका मत है कि - "संभवतः यही शोभन शब्द शोमिली > सोहिलो > सोहद > सोहर रूप में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी में 'सोहल' का अर्थ अच्छ लगन है जो संस्कृत के शोभन से मिलता-जुलता है। सोहर की उत्पत्ति 'सुधर' शब्द से भी मानी जाती है जिसका अभिप्राय 'सुन्दर' होता है। पुत्र-जन्म के गीत 'सोहिला' के नाम से भी प्रसिद्ध है।"[33] इस सम्बन्ध में श्रीचन्द जी जैन का मत भी विचारणीय है ह्न 'सूतिकागृह से सम्बन्धित होने के कारण इन गीतों का नाम सोहर है। 'सोहर' के सम्बन्ध में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का मत है कि - इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सूतिकागृह' और प्राकृत के 'सुईहर' से हुई है। वस्तुतः सोहर की उत्पत्ति शुभ, शोभन तथा प्राकृत के 'सुईहर' से ही तर्कसंगत लगती है।

"सोहर के अन्तर्गत केवल जन्म से सम्बन्धित भाव ही नहीं, मानव जीवन से सम्बन्धित अन्य भाव भी आते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर गीत मानवीय अन्तर्द्वन्द्वों और उसके

फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले भावों का सुन्दर परिचय देते हैं।"[34] "सोहर गीतों का भाव बहुत व्यापक है। इसमें सरिया, दोहद (साथ), रोचना, पालना, कठुला, झुनझुना, खेलावन, बधाई, लाचारी और छठी – सभी प्रकार और सभी अवसरों के गीत गाए जाते हैं। रति–प्रसंग से लेकर गर्भाधान के समय गर्भिणी के शरीर व मुख आदि का पीला पड़ना, दोहद अर्थात् अनेक वस्तुओं के खाने की इच्छा, नाना वस्त्राभूषणों की साध, पति का दाई को बुलाने जाना, दाई का नखरे करना, बड़े आदर–सत्कार और मान–मनावन के साथ आना, नेग पूरा न मिलने पर झगड़ना और अन्त में नेग लेकर जच्चा–बच्चा (मां–पुत्र) दोनों को आशीष देना, नाई का रोचना लेकर जाना, बढ़ई को पालना बनवाने को बुलाना, चौक, सिंधौरा, बधावा, जन्म, छटी, मुंडन, कर्णछेदन, नामकरण, अन्नप्राशन, जनेऊ आदि सोहरों के विविध विषय हैं।"[35]

अवधी क्षेत्र में जिसके यहाँ पुत्र पैदा होता है, टोले–मोहल्ले की स्त्रियाँ उसके यहाँ एकत्र होकर 'सोहर' गाती हैं। पुत्र के जन्म दिन से लेकर कहीं–कहीं छः दिनों तक और कहीं–कहीं बारह दिनों तक सोहर गाया जाता है। पुत्री पैदा होने पर सोहर प्रायः नहीं गाया जाता। "हिन्दू समाज में कन्या का जन्म लेना आनन्द का प्रतीक नहीं माना जाता। वैसे तो कन्या को लक्ष्मी कहा जाता है। किन्तु हिन्दू समाज में कन्या के विवाह में दहेज की कुप्रथा है उससे माता–पिता कन्या का जन्म लेना अपने लिए अहितकर समझते हैं।"[36] अवधी समाज में पुत्री का जन्म प्रसन्नता नहीं देता । क्योंकि पुत्री एक तो पराया धन होती है दूसरे वर ढूँढ़ने और दहेज की प्रथाएँ माता–पिता के लिए विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देती हैं। घर में भी पुत्री के साथ असमान व्यवहार किया जाता है। अवधी समाज की तुलना में मणिपुरी समाज में कभी भी पुत्री का जन्म शोक का विषय नहीं माना गया। यह स्थिति मणिपुरी स्त्री को देश के अन्य भागों की स्त्री से नितांत भिन्न और विशिष्ट स्तर प्रदान करती है, उत्तर भारत के स्त्री से तो अत्यधिक विशिष्ट।

अवधी सोहर गीतों में स्त्रियाँ देव–देवी मंदिरों में अपने गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित वरों की माँग करती रहती है। एक गीत में एक स्त्री ने दूसरी स्त्री से पूछा कि तुमने मंदिर के भीतर भगवान से क्या वरदान माँगा था? इस पर वह बताती है –

"माँगेऊँ बरदान, देबी के मंदिरवा भीतर ।।टेक।।
माँगेऊँ मैं सात–पाँच भइया–मैं सात पाँच भइया,
बहिनी आकेलि, देबी के माँदिरवा भीतर।।१।।
माँगेऊँ मैं हरी–हरी चुरिया–मैं हरी–हरी–चुरिया,

मोतियन भरि माँग, देबी के मंदिरवा भीतर।।२।।
माँगेउँ मैं सात–पाँच देवरा–मैं सात–पाँच देवरा,
ननदी आकेलि, देबी के मंदिरवा भीतर।।३।।
माँगेऊँ मैं सात–पाँच पुतवा–मैं सात–पाँच पुतवा,
कन्या आकेलि, देबी के मंदिरवा भीतर।।४।।
माँगेउँ मैं सात–पाँच गउएँ – मैं सातपाँच गउएँ,
बछरन भरि सार, देबी के मंदिरवा भीतर।।५।।"[37]

स्त्रियाँ देव–देवी मंदिरों में अपने गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित वरों की माँग करती रहती हैं। वे एक मात्र बहिन तथा कई भाइयों, अपने सुहाग, विवाह होने पर कई देवों तथा एक मात्र ननद, कई पुत्रों तथा अकेली पुत्री, कई गायें और बहुत से बछड़ों की याचना करती है।

जब स्त्री गर्भिणी होती है तो एक ओर तो जी मिचलाया करता है दूसरी ओर उसे विभिन्न वस्तुएँ खाने की इच्छा होती है और ऐसा माना जाता है कि इच्छित वस्तुओं के न खिलाने से उसके भावों का बालक पर कुप्रभाव पड़ता है, अतः गर्भवती स्त्री की प्रत्येक इच्छा यथासंभव पूरी की जाती है।

एक अवधी लोकगीत में गर्भवती स्त्री अपने पति से आग्रह करती है कि उसका मन तुरई खाने का कर रहा है। अतः उसे यह बाजार से लाकर काट कर बना दे –

"हमें तुरइन की साध राजा
तुरई बिकन को आई राजा
सो तुमही जाईं खरीदो राजा
तुम्ही काटि बनाओ सो राजा
हमें तुरइन की साध राजा।"[38]

अवधी परिवार में ही नहीं बल्कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में भी गर्भवती स्त्री की इच्छाओं की पूर्ति प्रायः परिवार के सभी लोग करते हैं। भारतीय समाज में ऐसी मान्यता है कि स्त्री की गर्भिणी अवस्था में यदि कोई इच्छा अधूरी रह जाती है तो बच्चे की राल बहती है।

एक अवधी गीत में गर्भवती स्त्री की मनःस्थिति, शारीरिक-विकास, इच्छाओं तथा समाज में इस अवसर पर होने वाले संस्कारों का वर्णन किया गया है -

"हिर झिर हिर झिर नदिया बहन है
तहना कउन रामा सेज बिछायो
ओकत डोकत एक गोरिया जो निकली
अंग पतल मुख दुरहर गोरी
मूड़ टनाकन लागा है गोरो
दुसरा महिना जब लागा है गोरी
ओकन डोकन -- लाग है गोरी
तिसरा महिना जब लाग है गोरी
पेडुरिया थहरान है गोरी
चउथा महिना जब लाग है गोरी
खट्टा-मिट्ठा मन लाग है गोरी
पाँचवाँ महिना जब लाग है गोरी
खरी महीरा मन लाग है गोरी
छठवाँ महिना जब लाग है गोरी
मांस मछरिया मन लाग है गोरी
सतवाँ महिना जब लाग है गोरी
सतवाँसा होन जात है गोरी।"[39]

इस गीत में गर्भावस्था के प्रथम माह से लेकर सातवें माह तक के क्रिया कलापों की पूरी रूपरेखा मिलती है। प्रारम्भ में गर्भ स्थिर होने पर मिचली का आना, शरीर का अस्वस्थ होना तथा मुख की मलिनता आदि का वर्णन सूक्ष्म रूप से मिलता है। शारीरिक विकास जैसे 'पेडुरिया थहरान है गोरी' तथा विभिन्न प्रकार की खाने वाली वस्तुओं के प्रति इच्छाओं की जागृति का वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। यह वर्णन न तो काल्पनिक है और ना ही अतिशयोक्तिपूर्ण। यह गर्भवती स्त्री की आप-बीती व्यथा-कथा है।

अवध में पुत्र जन्म के अवसर पर जिठानी 'पिपरी पीसती' है। "पिपरी पीसने पर जिठानी को नेग मिलता है, यह नेग जच्चा देती है। यही पिसी हुई पिपरी जच्चा को कड़ू तेल या दूध के

साथ खिलाई जाती है। वृद्ध महिलाओं का कथन है कि पिपरी को कडू तेल या दूध के साथ खिलाने से जच्चा का दूध उतरता है जो कि शिशु के लिए लाभकारी होता है।"[40]

पिपरी बोने का उल्लेख सोहर गीत में मिलता है –

"लाल जिहकै पिराये सोई जानै,
दूसर कोऊ का जानै।।टेक।।
अँगना माँ नींबू बोयों, भीतर अनार बोयों।
खिरकी–माँ दाख–छुहार, दुआरे बोयों पीपरिया।।१।।
अँगना माँ नींबू सींच्यों, भीतर अनार सींच्यों।
खिरकी माँ दाख–छहार, दुआरे सींच्यो पीपरिया।।२।।
अँगने माँ नींबू फल्यो, भीतर अनारफूल्यो।
खिरकी माँ दाख–छुहार, दुआरे फूली–पीपरिया।।३।।
अँगने माँ पीरै आई, भीतर क गवनिउँ।
खिरकी माँ भये नँदलाल, दुआरे बाजी सहनाई।।४।।"[41]

इस गीत में स्त्री अपने नवजात शिशु को समझाना चाहती है कि तुम्हारे भरण–पोषण के लिए मैं उस समय से सचेत रही हूँ, जब से तुम हमारे गर्भ में आये हो। गर्भ के समय से मैं तुम्हारे विकास के लिए फल और मेवा खाती थी और भविष्य के लिए तुम्हारे जन्म से पूर्व ही पिपरी बो दी थी ताकि जन्म के उपरान्त मैं पिपरी खाऊँ जिससे तुम्हें मेरे द्वारा दूध प्राप्त हो सके।

सोहर गीतों में कहीं–कहीं बाँझ स्त्रियों की वेदना का भी वर्णन होता है। "जन्म संस्कार पर कुछ गीत ऐसे भी गाये जाते हैं जिनमें बाँझ स्त्रियों की करुण कथा और नियोग प्रथा का उल्लेख मिलता है। गीतों में बाँझ स्त्रियों की व्यथा की अभिव्यक्ति तो स्वाभाविक है क्योंकि संतान के अभाव में नारी का जीवन शून्यता और अन्धकार से घिरा रहता है। प्रत्येक नारी का हृदय एक सीमित समय के बाद सन्तान के लिए अधीर हो उठता है। बन्ध्या स्त्रियों की यह वेदना आज के युग की देन नहीं है बल्कि प्राचीन काल में भी इस वेदना का उल्लेख मिलता है।"[45]

अवधी सोहर गीत में बाँझ स्त्री की मानसिक वेदना का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। एक बन्ध्या स्त्री की भावनाओं का बहुत ही कारूणिक चित्र बड़ा ही वैज्ञानिक है। सन्तति की लालसा कितनी उदात्त है, एक सोहर गीत में यही भाव द्रष्टव्य है –

“लीपी पोती ओबरिया जगर–मगर करै,
सखिया बिन रे सन्तति घर सून मै केहि का जगावों
राजा के दुआरे एक चेरिया, त चेरिया बालक लिहै,
चेरिया अपना बालक हमें देतिउ मैं जिउ समुझावऊँ।
नोनवा त मिला ई उधरवा, तेल व्यवहरवा
रानी कोखिया क कवन उधार चहत नहिं पावै।
अरे–अरे नगर के बढ़ई बेगिहि चलि आवहु।
बढ़ई गढ़ि लावौं काठे कै पुतरिया, मैं पलना झुलावौं।।”[43]

पुत्र प्राप्ति के लिए कोई वन्ध्या स्त्री देवी की पूजा करती है –

“पाँचइ पान कइ विरवा, त दोहरी सुपरिआ लागइ हो।
निकली सहस रनिवास भगउती क पूजन हो।।१।।
गलेवा चढ़ाई गजरा, मुखे क पनवा हो;
अउ चुनरी चढ़ाई अनमोल, जटाधरि नरिअर हो।।२।।
अतना चढ़ावा देवी देखिन, हँसि मुसुकानी।
तेवई कवन संकठ तोहइं लागे त अतना चढ़ायउ हो।।३।।
सोनवाँ त हमरे बहुत बाटइ रूपवा के कमी नाहीं हो;
देवी ! एक संतति कुलहीन न जनम अकारथ हो।।४।।”[44]

इस गीत में वन्ध्या स्त्री के मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का बहुत ही सुन्दर और मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है। एक स्त्री देवी की पूजा के लिए अपने रनिवास से निकली। उसने पूजा के निमित्त पाँच बीड़ा पान तथा दस सुपारी ली थी। उसने देवी के गले में फूलों की माला पहनाई, उनको पान खाने को दिया, बहुमूल्य साड़ी भेंट की तथा नारियल चढ़ाकर उनकी पूजा की। देवी ने जब इतना चढ़ावा देखा तब वह अपने मन में मुसकराने लगी और उससे पूछा कि ए भक्त स्त्री! तुम्हारे ऊपर ऐसा कौन–सा संकट आ गया जिसके लिए तुम इतना चढ़ावा चढ़ा रही हो। स्त्री ने उत्तर दिया कि हमारे पास सोना बहुत है, रुपयों की कमी नहीं है, हे देवी ! एक संतान के बिना सारा जन्म बेकार है। देवी ने उसकी प्रार्थना सुनकर उससे कहा, अब तुम अपने घर जाओ, अब मत आना। आज से नवें महीने तुम्हारे पुत्र होगा। देवी का आशीर्वाद सुनकर उस स्त्री ने कहा, नवें महीने मेरे पुत्र होगा तब मैं सोने का छत्र गढ़वा कर आपको चढ़ाऊँगी।

एक अन्य अवधी गीत में वन्ध्या स्त्री सन्तान की लालसा करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करती है –

"सून लागै दिया बिनु मन्दिल, माँग सेन्दुर बिना हो।
ललना ओइसन सून तिरिया गोद, त एक बालक बिनु हो।
सून लागे महल अटरिया, अउरो खेत धरतियाँ हो,
ललना नाही नीक लागै सुखभोग, एक सन्तति बिनु हो।
बड़–बड़ भये जतनवाँ, उपइया उपचरवा हो,
ललना जब किरपा भई राम के, गोदिया बालक खेलै हो।
पुतवा देबौं भारत मइया के, मतवा के सेउवा मा हो,
ललना पूत करिहै देशवा क काम, तो जनम सुफल होइहै हो।
मनवा मा इहै अभिलाष, इहे एक साध, इहै एक सधिया नु हो,
ललना पूत मोर होवैं देस सेवक, राम से मैं बिनवौं हो।"[45]

उपर्युक्त गीत में स्त्री सन्तान की लालसा को बताते हुए ईश्वर से प्रार्थना करती है कि "जिस प्रकार बिना दीपक मन्दिर सूना लगता है और सिन्दूर बिना माँग, उसी प्रकार एक बालक के बिना स्त्री की गोद। सन्तति के बिना महल, अटारी, खेत, धरती और सारे सुख–भोग कुछ भी अच्छा नहीं लगता। बड़े–बड़े यत्न–उपचार हुए, जब राम की कृपा हुई तब गोद में बालक खेला। यह पुत्र मैं भारत माँ की सेवा में दे दूँगी। पुत्र देश का काम करेगा तो जन्म सफल हो जाएगा। मन में यही एक अभिलाषा, यही एक साध है कि मेरा पुत्र देश का सेवक हो, यही ईश्वर से प्रार्थना भी है।"[46]

संतान की लालसा स्त्रियों में इतनी प्रबल होती है कि जिस स्त्री के बालक नहीं होते, उसका मन किसी भी कार्य करने में नहीं लगता। हमेशा सन्तान की चाहत मन में रहती है –

"कुँअना खोदाये कौन फल हे मोरे साहेब,
झोंकवन मरै पनिहार तबै फल होइहैं।
बगिया लगाये कौन फल हे मोरे साहेब,
राही बाटे अमवा जा खइहै, तबै फल होइहैं।
पोखरा खोदाये कौन फल, हो मोरे साहेब,

गउवा पियैं जूड़ पानी, तबै फल होइहैं।
तिरिया के जन्मे कौन फल, हे मोरे साहेब,
पुतवा जनम जब लेंइ, तबै फल होइहैं।
पुतवा के जन्मे कौन फल, हे मोरे साहेब,
दुनिया अनन्द जब होइहैं, तबै फल होइहैं।"[47]

इस गीत में एक वन्ध्या स्त्री सन्तान की लालसा से कहती है कि– कुआँ खुदाने का फल तभी है जब पनिहार उससे जल भर–भरकर सबकी प्यास बुझाए, बाग लगाना तभी सार्थक है, जब पथिक उसके फल खाए और छाँह का सुख भोगे। पोखरा खुदवाने का फल तभी है जब पशु–पक्षी उसका शीतल जल पी सकें। स्त्री का जन्म तभी सार्थक है जब वह पुत्र को जन्म दे और उस पुत्र का जन्म लेना तब सार्थक है जब वह पूरे संसार को आनन्दित कर सके।

अवधी समाज में सन्तान न होने पर परिवार के लोगों के द्वारा उसे 'बाँझिन' जैसे अपशब्द सुनने पड़ते हैं तो उस अबला नारी का हृदय सन्तान प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है और जीवन से निराश स्त्री अपना अन्त करने का निश्चय करती है –

"गंगा किनारे एक गोरिया, तो गंगा मनावै तो गंगा मनावै रे
गंगा एक लहरि तुम लेउ, बुड़न हम आइन, बुड़न हम आइन रे
की तुम सास ससुर दुख कि नइर दुरि बसै, नइहर दुरि बसै रे
की तोरे हरि परदेस कउन दुख बूड़य, कउन दुख बूड़य रे
न मोरे हरि परदेस न नइहर दुर बसे न नइहर दुर बसे रे
गंगा, कोखियो को कारन, बूड़उ मैं गंगा बीच बुड़य रे।"[48]

उपर्युक्त गीत की पंक्ति में बाँझ स्त्री गंगा के किनारे खड़ी होकर गंगा से विनती करती है कि गंगा मइया तुम मुझे अपनी लहरों में समेट लो, अपनी गोद में समा लो, मैं तुम्हारे जल में विलीन होना चाहती हूँ। गंगा स्त्री से डूबने का कारण पूछती है, युवती डूबने का कारण निःसंतान होना बताती है। गीत की पंक्तियों में वन्ध्या स्त्री की मानसिक वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है।

वन्ध्या स्त्रियों की अवहेलना भारत की सभी प्रान्तों में की जाती है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण सभी प्रान्तों के लोकगीतों में कुछ शाब्दिक हेर फेर के साथ मिलते हैं। एक अवधी गीत द्रष्टव्य है –

"सासु मोरी कहेली बाझिनियाँ, ननद ब्रजवासिन हो।
रामा जिनकी मैं बोरी रे विआही, कई घर से निकारेन हो।।१।।
घर में से निकली बझिनियाँ, जंगल बीच ठाढ़ी हो।
रामा बन से निकली बघिनिया, त दुःख–सुख पूछद हो।।२।।
तिरिया ! कौनी बिपति की मारी जंगल मँह ठाढ़ी हो।।३।।
सासु मोरी कहेली बझिनियाँ ननद ब्रजवासिन हो।
बाघिनि! जिनकी माइ बारी बिआही, उइ घर से निकारेन हो।।४।।
बाघिनि ! हमका जो तुम खाइ लेतिउँ बिपतिमा से छूटिंत हो।
जहवाँ से आइउ उलटि जहाँ जाउ, तुमहि नहीं खाबइ हो।।५।।"[49]

इस गीत में अवधी समाज में बन्ध्या स्त्री की सामाजिक दुर्दशा का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया गया है। "वह सास, ननद और अपने पति के दुर्व्यवहार से इतना ऊब जाती है कि जंगल में भाग जाती है। वहाँ वह बाघिन, सांपिन, देवी माता और धरती से प्रार्थना करती है परन्तु न तो उसे खाने के लिए कोई तैयार है और न शरण देने के लिए क्योंकि उन्हें इस बात का भय है कि कहीं बन्ध्यापन की छूत उन्हें भी न लग जायँ और वे भी बाँझ न हो जायँ।"[50] भारतीय समाज में किसी स्त्री का बन्ध्या होना एक महान् अभिशाप है। वन्ध्या का सभी तिरस्कार करते हैं, वह समाज में हेय दृष्टि से देखी जाती है। प्रकृति भी उसे ग्रहण करने का संकोच करती है।

अवधी क्षेत्र में कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं जहाँ पुरुष द्वारा अपनी पत्नी की भी भर्त्सना की गई है –

"खिड़की पे बइठी रानी तो राजा पुकारइ हो
रानी एक सन्तति बिन कुलहीन हम हुइवै जोगी हो
रानी तोरी गोद है सुन देख नाही जाय हो
रानी सबहीं कुछ हम कीन तबहूँ पापिन कहायओं
रानी भोरहैं डोमिन मुख देख अपन मुख फेरई हो
रानी हमरा मुख पापी हम जोगी हुई जइबै हो
जप तप करिबौ रानी, गोद तुम्हारी मरिहिहै हो।"[51]

अवध में कुछ सोहर गीत ऐसे भी मिलते हैं जिनमें 'नियोग प्रथा' का ज़िक्र है। 'मनुस्मृति' में पति द्वारा संतान उत्पन्न न होने पर नियोग ऐसी व्यवस्था है जिसके अनुसार स्त्री

अपने देवर से गर्भाधान कर सकती है। वह व्यक्ति स्त्री के पति की इच्छा से केवल एक ही और विशेष परिस्थिति में दो संतान उत्पन्न कर सकता है। इसके विपरीत आचरण प्रायश्चित्त के भागी होते हैं। हिन्दू प्रथा के अनुसार नियुक्त पुरुष सम्मानित व्यक्ति होना चाहिए। कलियुग में यह विधि वर्जित है। "प्राचीन काल में नियोग-प्रथा प्रचलित थी, क्योंकि परिवार और मृत पूर्वजों के लौकिक तथा पारमार्थिक लाभ के लिए किसी भी प्रकार से सन्तति का होना आवश्यक था। वैदिक साहित्य में हमें ऐसे प्रसंग मिलते हैं जहाँ एक विधवा अपने देवर को सन्तति उत्पन्न करने के लिए आमन्त्रित करती है। मनु तथा स्मृतियाँ विधवा, नपुंसक की स्त्री या अयुक्त पति की पत्नी को देवर, सगोत्र ब्राह्मण से सन्तति प्राप्त करने की अनुमति प्रदान करती हैं।"[52] "किन्दम मुनि के अभिशाप से सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर पांडु ने कुन्ती से किसी उत्कृष्ट पुरुष द्वारा गर्भाधान करने के लिए अनुरोध किया। अधर्म की आशंका से पहले तो कुन्ती सहमत नहीं हुई, बाद में पांडु द्वारा उद्भूत बहुत से दृष्टान्त व शास्त्र वचनों से आश्वस्त होकर क्रमानुसार धर्म, वायु और इन्द्र से गर्भ धारण करके उन्होंने तीन पुत्र प्रसव किये।"[53]

सम्भवतः नियोग प्रथा का प्रचलन का मुख्य उद्देश्य बाँझ की व्यथा न होकर केवल लौकिक तथा पारमार्थिक लाभ ही था। अवध में जो भी नियोग प्रथा से सम्बन्धित गीत मिलते हैं उनमें अधिकतर पति के अधिक समय तक परदेश में रहने पर देवर द्वारा सन्तानोत्पत्ति का प्रसंग मिलता है। गीत द्रष्टव्य है –

"आँगन मा खेलें लालनवाँ, गोदी मा खेले लालनवाँ
बरहीं बरस पिया बनजा से लउटे, आँगन मा डाला पालँगवा,
पलंगा बइठ राजा पूछन लागे, केहिका ये जाया लालनवाँ
चाहे राजा मारो चाहे गरियाओ, देवर का जाया लालनवाँ
तुमरी कमाई राजा लुट फुक जइहै, नम चलावे लालनवाँ
तुमरी कमाई राजा बकसे म रहिये, बाबा पुकारे लालनवाँ
आँगन मा खेले लालनवाँ . . . ।"[54]

पत्नी कितनी स्पष्टवादी है, पति के पूछने पर कि यह बच्चा किसका है, का उत्तर निर्भय होकर देती है कि यह शिशु तो हमारा है। इसकी सन्तति देवर द्वारा हुई है। गीत की उक्त पंक्ति देवर का जाया ललनवां में प्राचीन संस्कृति के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। एक और ऐसा ही गीत प्राप्त हुआ है जिसमें देवर द्वारा पाँच माह के गर्भ की ओर संकेत मिलता है –

"बदरिया कहूँ बरसत है मोरे राजा

...   .

पिठिया दई सोई रहेऊमोरे राजा

सो मोरी रानी पाँच माह का गरभ कहा से लाइउ

सो मोरे राजा छोटा देवर बड़ा छलबलिया

बरजै नहीं माने सो मोरे राजा।"[55]

इस गीत में पत्नी को गर्भवती जानकर परदेश से आये पति का मन खिन्न हो उठता है। नाराज होकर वह पत्नी की ओर पीठ करके लेट जाता है। पत्नी के बार-बार पूछने पर अपने मन की बात कह देता है कि तुम्हें पाँच माह का गर्भ कैसे? पत्नी उत्तर देती है कि वह गर्भ देवर का है परन्तु इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है और यह भी कहती है कि तुम्हारा भाई बहुत चंचल है उसके आग्रह पर ही ऐसा हुआ है। अतः ऐसे गीतों में पत्नी की उस मनोदशा का चित्रण मिलता है, जिसमें उसे अपने पति को उसकी अनुपस्थिति में गर्भवती होने का स्पष्टीकरण देना होता है। अवधी क्षेत्र में इन गीतों की संख्या भले कम है लेकिन इन्हें अत्यन्त रुचि के साथ गाया जाता है।

मणिपुरी समाज में वन्ध्या स्त्री को 'अखुङबी' कहकर निन्दा की गई है, उसका सर्वत्र अनादर होता है। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में उसकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती है लेकिन अवध की तुलना में मणिपुरी समाज में वन्ध्या स्त्री के प्रति कम अनुदार है। मणिपुरी समाज में नियोग प्रथा नहीं है।

अवधी में कुछ सोहर गीत ऐसे भी मिलते हैं जिसमें स्त्रियों के आदर्श सतीत्व का वर्णन मिलता है –

"ऊँचे डगरिया का कइयाँ, सुधरि एक पानी भरे।

सुन्नरि कौन निरमोहिया क धनियां त पनियाँ भरावै।

ऐसन रनियाँ ज पवतेऊँ नयन बीच रखतेऊँ

सारी राति वेनियाँ डोलवतेऊँ, त बिरवा कुँचववतेऊँ।

ऐसन पुरूष ज पवत्यौं चाकर कैके रखत्यौं

हरि जी के पाँय की पनहियाँ त सिर पे ढोववत्यों।"[56]

एक सुन्दरी कुएँ पर पानी भर रही है, एक पुरूष (जो वास्तव में उसका पति ही है और उसकी परीक्षा लेता है) उसका रूप देखकर मुग्ध भाव से निहार कर कहता है – किस निर्मम की पत्नी हो तुम, जो तुम जैसी सुकुमारी से पानी भरवाता है। ऐसी पत्नी मुझे मिल जाती तो नयनों में रखता, सारी रात विजन डुलाता, पान के बीड़े खिलाता। पर वह उसे डाँटती है कि मैं तो तुम जैसे पुरूष को नौकर बनाकर अपने पति के पैर की पनही ढोवाती (उठवाती)। सुनकर वह प्रसन्न होकर उसे अपना परिचय देता है।

अन्य गीत में आदर्श सतीत्व के वर्णन के लिए पशु का दृष्टान्त दिया गया है –

"छोटइ पेड़ छिउलि करि पतवन झापक,
तेहि तार ठाढ़ि हरिनिया हरिन बाट जोहत हो।।१।।
चरत चरत हरिन आयेन, छिउलिया तरा ठाढ़ भयेन।
हरिन काहे के तोरा मुखवा मलीन काहे मन धूमिल हो।।२।।
कि तोर चरवा झुराय गयेन कि पनिया उड़ाय गयेन।
हरिन काहे क मुखवा मलीन, काहे मन धूमिल हो।।३।।
नाहिं मोरा चरवा झुराय, नाहिं पनिया उड़ाय गयेन।
राजा के भयेन नन्दलाल, तोहइ मुखइहइ हों।।४।।
के कइ बगिया लगाई के ढुढ़वइ हइ हों।
के कइ बहुआ गरभ से जे हमहिं मरवइहइ हो।।५।।
राजा दसरथ बगिया लगावइँ, कउसिल्या ढुंढ़वइहइ हो।
राम के भये नन्दलाल तुइँ मरवइहइ हो।।६।।
रानी माँसू के सिझेया रसोइया, खलरि हमइ देतिउ हो।।७।।
रानी खलरि के टाँगब छेउलिया, तउ फिरि फिरि अउबइ हो।
खलरिया देखि जाबइ जानुक हरिन जीइतइ हो।।८।।
जाहु हरिन घर आपन खलरि नाहिं देबइ हो।
हरिन खलरी के खँजड़ी मढ़उबइ, ललन हमरे खेलिअइ हो।।९।।"[57]

सतीत्व की भावना पशु-जगत में भी दृष्टिगोचर होती है। हिरन के प्रति हरिणी का प्रेम अद्वितीय तथा असामान्य है। दूसरे इसमें सामन्तशाही युग की झलक भी दिखलाई पड़ती जब गरीबों को सत्ता कर राजा-महाराजा आनन्द किया करते थे। अवधी में एक अन्य लोक गीत भी

प्रचलित है जिसमें इस गीत की अपेक्षा दो पंक्तियाँ अधिक हैं। इन पंक्तियों का भाव यह है कि जब-जब वह खंजड़ी बजती है तब हरिणी उस आवाज को सुनकर विसूरती है। हृदय की द्रावकता और उत्कट दाम्पत्य प्रेम की दृष्टि से यह गीत अपना सानी नहीं रखता।

सरिया :

पुत्र-जन्म के अवसर पर 'सरिया' गीत गाए जाते हैं। यह गीत छन्द तथा गाने की लय से 'सोहर' से कुछ भिन्न है। विषय दोनों के एक है। "पुत्र की प्रत्येक वर्षगांठ में, छठी, पसनी, मुण्डन तथा छेदन के अवसरों पर 'सरिया' अवश्य गाई जाती हैं। साथ में 'सोहर' भी गाए जाते हैं। सरिया गीत बहुत लम्बे होते हैं। सरिया गीत का विषय बहुत रोचक और विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें एक नाटक का सा आनन्द आ जाता है।"[58] भारत में 'सरिया' गाने का प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। फिर भी अवधी क्षेत्र में कहीं-कहीं पर सरिया गीत अभी भी उपलब्ध हो जाते हैं। "इन गीतों में पुत्र जन्म के पूर्व जच्चा की पीड़ा, पति का दाई को लिवाने जाना, दाई के नखरे करना और अनुनय विनय के पश्चात् पालकी से आना, नेग न मिलने पर झगड़ना, जच्चा को दाई का धमकियाँ देना तथा अंत में भली-भाँति पुरस्कृत होने पर आशीष देते हुए जाना आदि वर्णित रहता है।"[59]

अवधी लोकगीतों में जन्म के अवसर के गीत मिलते हैं। जन्म के अवसर पर दो प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जिनके नाम क्रमशः 'सरिया' और 'सोहर' हैं। सरिया और सोहर में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सरिया में दाई आदि की व्यवस्था का वर्णन होता है और सोहर में जच्चा की शारीरिक और मानसिक व्यथा और प्रसन्नता का वर्णन होता है।

एक सरिया गीत द्रष्टव्य है -

"सरिया खेलते कवन रामा, रानी के कवन रामा।
केहाँ सारीं खेलिए मेरे लाल?
सरिया तो धरहु उठाय तो झडुले बिरिछ तरे।
तमोली की हटिया मेरे लाल।
तुम्हें रानी बोलती मेरे लाल।
एक पाँव धरेनि डेहरिया तो दूसर पलंग पर लइ धना कंठ लगाइ-
लाज सरम केरी बात,
सकुच केरी बात मरद आगे का कहौं मेरे लाल।"[60]

इस गीत के प्रारम्भ में आसन्न प्रसवा माँ प्रसव–पीड़ा के व्याकुल है। उसे कुशल दाई की आवश्यकता है। अतः दाई को लाने के लिए वह अपने पति को बुलवाती है। पति, पत्नी से सहानुभूति भरे शब्दों में पूछता है कि तुम्हें क्या कष्ट है, अपने कष्टों को स्पष्ट रूप से बताओ किन्तु भारतीय नारी पुरूष के समक्ष पीड़ा की बात कैसे कहे। पति पुनः पत्नी को समझाता है कि हम तुम दोनों एक हैं, पति से लज्जा कैसी। अतः तुम अपने कष्टों को बताओ, तुम्हें क्या कष्ट है। पत्नी, पति से अपने प्रसव–पीड़ा को व्यक्त करती हुई कहती है कि इस समय उसे कुशल दाई की आवश्यकता है –

"दाई का गाँव न जान्यो अरे गोव न जान्यो
सुघर दाई काँ बसे मेरे लाल।"[61]

पति दाई लाने चले जाता है लेकिन दाई सावन भादों की अंधेरी रात में तथा जेठ असाढ़ की भयंकर गर्मी और लू तथा माघ–पूस के जाड़े में जाने से मना कर देती है। इस समय दाई को घर ले जाना नितान्त आवश्यक है। अतः वह दाई से कहता है कि तुम हमारे घोड़े पर चलो मैं साईस (चालक) बन कर चलूँगा।

प्रस्तुत सरिया गीत के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि अवधी क्षेत्र में कुशल दाइयों का अभाव नहीं था उपयुक्त चिकित्सा केन्द्रों के अभाव में उनका अपना महत्वपूर्ण स्थान था। समय पड़ने पर बड़े व्यक्ति को भी दाई को बुलाने जाना पड़ता था किन्तु आज कुछ जगहों पर इन दाइयों का स्थान प्रसव केन्द्रों ने ले लिया है।

3.1.2 विवाह संस्कार के गीत :

मनुष्य जीवन में 'विवाह संस्कार' का अत्यधिक महत्व है। इस संस्कार के द्वारा दो आत्माएँ सामाजिक परम्परा एवं प्रथा द्वारा एक हो जाती हैं। यह मनुष्य के जीवन का सर्वाधिक पवित्र एवं मांगलिक अवसर है। "हिन्दू संस्कृति में विवाह धर्म का एक अंग है। एक ओर यह सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन का अंग मात्र है, तो दूसरी ओर सृष्टि विस्तार के लिए स्त्रीत्व और पुरूषत्व का सम्मेलन है।"[62] (विवाह = वि+वाह, अतः इसका शाब्दिक अर्थ है, विशेष रूप से (उत्तरदायित्व का) वहन करना)। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मानव जीवन के चार आश्रमों

(ब्रह्मचर्य आश्रम, ग्रहस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम) में विभक्त किया गया है और गृहस्थ आश्रम के लिए पाणिग्रहण संस्कार अर्थात् विवाह नितांत आवश्यक है।

विवाह संस्कार के गीत स्त्रियों द्वारा ही गाए जाते हैं। "स्त्रियों की कोमल और सूक्ष्म भावनाओं व उनकी दूरदर्शिता के कारण इन गीतों में कोमलता, सरलता व सरसता आ गई है। जीवन के नैसर्गिक भावों की संस्कार-जन्य वातावरण तथा परम्परा प्राप्त रूढ़ियों की सूक्ष्म अभिव्यंजना इन गीतों में हुई है। इन गीतों में विशेष रूप से शृंगार और हास्य रसों का अधिक विकास हुआ है।"[63]

अवधी और मणिपुरी समाज में विवाह संस्कार बड़े ही धूम-धाम से मनाया जाता है। दोनों क्षेत्रों में विवाह के अवसर पर कई प्रकार के शास्त्रोक्त एवं लौकिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता है। परन्तु वैवाहिक प्रणालियों में अन्तर देखने को मिलता है। अवधी समाज में विवाह संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विवाह के अवसर पर वर पक्ष तथा कन्या पक्ष में बहुत से कृत्य सम्पादित कराए जाते हैं; जिसमें पुरोहित शास्त्रीय विधि-विधान के अनुसार चलता है। "मनुस्मृति में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख हुआ है। किन्तु अवधी क्षेत्र में जितने भी इस अवसर के गीत संगृहीत किए गए हैं, उनमें केवल ब्राह्म और दैव विवाहों की ही चर्चा उपलब्ध होती है। वैसे तो समाज में गांधर्व विवाह भी हुआ करते हैं, किन्तु अवधी क्षेत्र के गीतों में इसका उल्लेख नहीं प्राप्त होता।"[64] अवधी क्षेत्र में प्रायः विवाह के प्रत्येक अवसर पर गीत गाए जाते हैं। इन गीतों के वर्ण्य-विषय अत्यन्त विस्तृत हैं। "इसमें कहीं पुत्री के विवाह के लिए पिता चिंताग्रस्त है तो कहीं पर अपने पिता से सुन्दर और योग्य वर खोजने की प्रार्थना करती हुई चिंतित पुत्री की अभिव्यक्ति है। कहीं पर माता, कहीं अपने पति की चिंता से व्याकुल स्त्री और कहीं चिंतित पिता दिखाई देता है। कहीं माता पुत्री-जन्म के कारण अपने भाग्य को कोसती है, तो कहीं पर बाजा-बजने का उल्लेख है। किसी-किसी गीत में माता अपने जामाता से पुत्री को सुखपूर्वक रखने की प्रार्थना करती हुई वर्णित की गई है।"[65]

अतः अवधी लोक-जीवन में वैवाहिक कार्यक्रमों के अवसरों पर कई प्रकार के शास्त्रोक्त एवं लौकिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता है और प्रत्येक अवसरों पर विविध प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं। गीत गाने की परम्परा कन्या व वर दोनों पक्षों में उमंग के साथ मिलती है। यहाँ विवाह से सम्बन्धित प्रमुख लोकाचार एवं उनसे सम्बन्धित गीतों में स्त्री-स्वरों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है -

(क) कन्या पक्ष के गीत :

कन्या पक्ष के गीतों में अधिक सरलता व माधुर्य रहता है। वधूवाले गीत अत्यंत सरस, मधुर और प्रायः करुण-रस-पूर्ण होते हैं। विदाई के अवसर पर गाए जानेवाले विदा गीत तो इतने हृदयद्रावक होते हैं कि उन्हें सुनकर हृदय विदीर्ण होने लगता है। कन्या पराया धन है - उसे दूसरे घर जाना है अतः गीतों में करुणा और वेदना का भाव अधिक दृष्टिगत होता है। ये गीत बहुत ही हृदय विदारक होते हैं, साथ ही गीतों की ध्वनि के साथ ही नाना प्रकार के आयोजन भी सम्पन्न होते हैं। एक विवाह गीत में कोई पुत्री अपना विवाह कर देने के लिए पिता से प्रार्थना करती है -

"नीर चुअर बाबा नीर चुअतु है,
नीर चुअर आधी राति।।१।।
ओहि रे पिता कइ नींद कइसे लागइ,
जेहि घर कन्या कुँआरि।।२।।
कुँइआँ का पानी सुखाइ गये बेटी,
पुरइनि गइ कुम्हिलाइ।।३।।
गंगा जमुना बिच बालू परत हइ,
अब नाहिं रचब बिआह।।४।।
जरेइ बपइआ तोर अन धन सोनवा,
मरइ लुकेसरि गाइ।।५।।
मरइ बपइआ तोर राज दुलरूआ,
जेहि घर कन्या कुँआरि।।६।।
कुँइआँ क पानी भभकि आये बेटी,
पुरइनि हालरि देह।।७।।
गंगा जमुन बिच नइया, चलउबइ,
अब तोर रचबइ बिआह।।८।।
बाढ़इ बपइआ तौरा उन, धन, सोनवा,
जिअइ लकेसरि गाइ।।९।।
जिअइ बपइआ तोर राज दुलरूआ,
अब मोर होइ बिआह।।१०।।"[66]

पुत्री अपने पिता से कहती है कि – ए पिताजी ! आपकी आँखों से आधी रात से अश्रुपात हो रहा है। जिसके घर में कुँआरी कन्या पड़ी हुई है उस पिता को भला नींद कैसे आ सकती है? वह कैसे सो सकता है। पिता उत्तर देता है कि ए बेटी ! कुँए का पानी सूख गया है, पुरइन का पत्ता कुम्हला गया। पानी सूख जाने के कारण से गंगा और जमुना के बीच रेत पड़ गयी है। सर्वत्र सूखा पड़ने के कारण इस समय में तुम्हारा विवाह नहीं होगा। इस बात पर नाराज होकर पुत्री कहती है कि – ए पिताजी ! आपका अन्न, धन और सोना सब जलकर खाक हो जाय और दूध देनेवाली गाय मर जाय। पुत्री फिर कहती है कि – ए मेरे बाप ! तेरा प्यारा पुत्र भी मर जाय जिसके घर कन्या कुँवारी पड़ी है। पिता उत्तर देता है कि ए बेटी ! अब कुएँ में पानी भर आया है, पुरइन का पत्ता हरा होकर लहराने लगा है। अब मैं तुम्हारे विवाह की तैयारी करूँगा। अब गंगा, जमुना के बीच में पानी अधिक होने से नाव चलने लगी है। इसलिए मैं तुम्हारा विवाह कर दूँगा। इस बात पर खुश होकर पुत्री कहती है कि – ए पिताजी ! आपके अन्न, धन और सोने की वृद्धि हो और दूध देनेवाली गाय जीती रहे, आपका पुत्र भी जीवित रहे, अब मेरा विवाह होगा।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुमारी स्त्री की मानसिक वेदना और संताप को अभिव्यक्त करनेवाला यह लोकगीत पितृसत्ताक व्यवस्था में स्त्री की दोयम एवं कारुणिक स्थिति को दर्शाता है। सामाजिक आचार संहिताएँ इतनी उत्पीड़क हैं कि स्त्री अपनी अविवाहित स्थिति से उबरना चाहती है, इतनी शिद्दत के साथ कि चाहे उसे अपने पिता को शाप ही क्यों न देना पड़े। पिता द्वारा विवाह की व्यवस्था करने के बाद वह अपने शाप और दुर्वचन वापस ले लेती है।

अन्य विवाह गीत में पुत्री अपने विवाह के लिए पिता से निवेदन करती है –

"ऊँच ऊँच बखरी उठाओ मोरे बाबा;
ऊँच ऊँच रखो मोहार।
चाँद सुरूज दुनो किरनी बसत है;
निहुरै न कन्त हमार।।१।।
अम्मर से धुरा मँगाओ मोरे बाबा;
पिया से भराओ मोरी माँग।
सूधर बभना से गँठिया जोरावहु;
जनम जनम अहिवात।।२।।

अम्मर ड़ड़िया फनाओ मौरे बाबा;
विदवा कराओ हमार।
सात परग संग चलि के हो बाबा;
अब मैं भइऊँ पराई।।३।।"[67]

इस गीत में पुत्री कहती हैं कि ए पिताजी ! खलिहान में अन्न के ऊँचे-ऊँचे ढेर लगाइये और घर का दरवाजा ऊँचा बनवाइये जिससे चन्द्रमा तथा सूर्य के समान प्रकाशमान मेरे पति को विवाह करने के लिए घर के भीतर आते समय दरवाजा छोटा होने के कारण झुकना न पड़े। पुत्री फिर कहती है कि - ए पिताजी ! अम्मर से मेरे लिए धुरा मँगवाइये और पति से मेरी माँग भरवाइये। विद्वान ब्राह्मण से मेरा ग्रन्थि बन्धन करवाइये जिससे अनेक जन्मों में मेरा अहिवात (सुहाग) बना रहे। अतः पुत्री कहती है कि - ए पिताजी ! मुझे सुन्दर पालकी में बैठाकर ससुराल में भेज दीजिये। मैं पति के साथ पग चलकर याने सप्तपदी के पश्चात् उनकी हो गई।

हिन्दू समाज में विवाह के अवसर पर कन्या के माता-पिता को वर पक्ष को दहेज के रूप में काफी धन और सम्मान देना पड़ता है। लोकगीत में विवाह गीत इस बात की पुष्टि भी करते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने दहेज के सम्बन्ध में लिखा है ह्न "हिन्दू-समाज में सबसे बड़ा दोष विवाह में तिलक और दहेज की प्रथा नितान्त दूषित प्रथा है। इस प्रथा के अनुसार वर का पिता कन्या के पिता से अपने लड़के का विवाह करने के लिए एक निश्चित धन राशि की माँग करता है जो लड़की वाले के लिए देना प्रायः असम्भव हो जाता है। इस दक्षिणा के बिना लड़की का विवाह होना नितान्त कठिन है। यह प्रथा किसी न किसी रूप में इस देश के प्रत्येक राज्य में प्रचलित है।"[68]

अवध में दहेज प्रथा का प्रचलन है परन्तु मणिपुरी समाज में नहीं है। कन्या द्वारा घरेलू सामान, वस्त्र तथा अलंकार ले जाने का प्रचलन है और माता-पिता कन्या को अपनी इच्छा से उसका नया घर बसाने के लिए कुछ सामग्री देते हैं। अवधी क्षेत्र में दहेज प्रथा का प्रचलन होने के कारण कन्या के परिवार को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसीलिए अवध में जाने कितने ऐसे लोकगीत भरे पड़े हैं जो परम्परा से चली आ रही 'दहेज प्रथा' पर प्रकाश डालते हैं। एक विवाह गीत में कन्या अपनी सखी से बताती है कि - आज हमारे पिता हमारे लिए वर खोजने जा रहे हैं। हमने अपने पिता से कह दिया है कि हमारे लिए सम्पन्न परिवार और सुन्दर वर खोजना -

"बाबा चले मोरे वर खोजना गुइयाँ,
पाट पिताम्बर रे डारि रे।
छोटे घर बाबा वर नहिं हरेओ,
बड़ घर हरेओ जाइ रे।
अरे–अरे बाबा सुधर वर हेरेओ,
हम बेटी तुम्हरी दुलारी रे।"[69]

दहेज के कारण पिता को जो कष्ट उठाना पड़ता है उसकी झलक लोकगीतों में पाई जाती है। ऐसे लोकगीत हमारे सामाजिक जीवन का आदर्श प्रतिबिम्ब हैं। एक विवाह गीत में वर की खोज में निकले हुए कन्या के पिता की मर्मान्तक वेदना दिखाई पड़ती है –

"हेरेंउ कासी हेरेंउ बनारस, हेरेउ देस सरूवार;
तौहइं जोगे बेटी सुधर बर नहीं,
अब बेटी रहउँ कुआँरि।।१।।
चारि परग बाबा नगर अजोधिया,
दुई वर राजकुँआर।।२।।
ओनही तिलक चढ़ाया मोरे बाबा,
तब मोर रचेआ बिआह।।३।।
ओ बर माँगइ बेटी नउ लख दायज,
हथिनी दुअरि कइ चार।।४।।
सोने क कलसा मँड़ाये गड़बावइं,
तब करइं धरम बिआह।।५।।
जेकरे बपइआ के अतना दयज नाहीं,
बर हेरइं अहिर गँवार।।६।।
गउआ चरावइं मुख मुरली बजावइं,
उगहि बिआरी खाँइ।।७।।"[70]

इस गीत में पिता अपनी पुत्री से कहता है कि – ए बेटी ! तुम्हारे लिए योग्य वर मैंने काशी, बनारस, सरूआर–सरयूपार प्रदेश में बहुत खोजा। लेकिन बेटी तुम्हारे लायक योग्य और सुन्दर वर मुझे कहीं नहीं मिला। इसीलिए ए बेटी अब तुम्हें कुँवारी ही रहना पड़ेगा। इस पर बेटी

उत्तर देती है कि ए पिताजी ! अयोध्या नगर यहाँ से चार पग है अर्थात् बहुत ही नजदीक है। वहाँ राम और लक्ष्मण नामक दो राजकुमार हैं। उन्हीं में से किसी एक का तिलक चढ़ाओ और मेरे विवाह की तैयारी करो। फिर पिता कहता है कि वह वर नौ लाख रूपया दहेज में माँग रहा है और चार हाथी माँग रहा है। विवाह के मण्डप में सोने का कलश स्थापित करना पड़ेगा। तब उस वर से धार्मिक विवाह सम्पन्न हो सकता है।

इस पर पुत्री दुखी होकर कहती है कि – जिसके पिता के पास इतना रूपया दहेज न होगा, वह अहीर (नीच जाति का) और मूर्ख वर को ही अपनी लड़की के लिए खोजेगा ऐसा व्यक्ति मुँह से मुरली बजाता हुआ (अहीर होने के कारण) गाय चरायेगा और भिक्षा माँग कर जीविका उपार्जन करेगा।

अतः हिन्दू समाज में कन्या के लिए वर ढूँढ़ने में सबसे बड़ी परेशानी है – दहेज प्रथा की जड़ें हमारे समाज में काफी भीतर तक फैली हुई हैं। दहेज प्रथा के कारण कन्या और परिवार को जो कष्ट उठाना पड़ता है जिसकी कुछ झलक अवधी विवाह गीतों में पायी जाती है।

अवध में बाल-विवाह का प्रचलन था। यह प्रथा आज भी अवध के कुछ क्षेत्रों में पायी जाती है। परन्तु आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा, बाल विवाह विरोधी बने कानूनों तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण बाल-विवाह का अब ह्रास हो रहा है। मणिपुरी समाज में बाल-विवाह का प्रचलन नहीं है।

कम आयु में बालक-बालिकाओं का विवाह करके उनके लिए जीवन भर के बंधन का आयोजन है बाल-विवाह। तमाम कोशिशों के बावजूद भारत में आज भी बाल-विवाह की कुप्रथा जारी है। बाल-विवाह की वजह से जहाँ बच्चों का बचपन छिन जाता है, वहीं वे विकास के मामलों में भी पिछड़ जाते हैं। "छोटी आयु में विवाह एवं कामसम्बन्ध करने से वर-वधू जवानी में बूढ़े हो जाते हैं, उनका स्वास्थ्य चौपट हो जाता है, उनकी सन्तान निर्बल होती है अल्पायु में प्रसव होने पर स्त्रियों का शरीर निर्बल होने के कारण अनेक बीमारियों का घर बन जाता है, फूलमणि जैसी अभागी स्त्रियाँ अकाल में ही काल का ग्रास बनती हैं, स्त्रियों की तथा बच्चों की मृत्यु संख्या में वृद्धि होती है, बचपन में ही विवाह का उत्तरदायित्व आ पड़ने से पति-पत्नी के व्यक्तित्व का समुचित विकास अवरुद्ध हो जाता है, लड़के-लड़कियों की शिक्षा में बाधा खड़ी हो जाती है, वे शिक्षा पाने के अवसरों से वंचित हो जाते हैं।"[71] अवधी लोकगीतों

में बाल-विवाह के कुप्रथा की झलक दिखाई पड़ती है। एक बालिका अपने पिता से बाल-विवाह न करने का निवेदन करती है –

"बाल वियाह जनि करउ मोरे बाबा हो,
बाल बियाह दुख कइ खानि।
गइया से बछरू न जोरउ मोरे बाबा हो,
मानहु बिनती हमारि।।१।।
बच्ची कइ करहु बियहवा न बाबा हो,
मानहु बिनती हमारि।
एहि रे बियहवा पइ देखि लेहु बाबा हो,
दुनिया कइ सबघर भार।।२।।
जब बेटी होइहैं सयानि मोरे बाबा हो,
खोजेउ सयान बर जाइ।
धरम-करम अउ सेवा सतकरवा हो,
देसवा कइ जानैं बेउहार।।३।।
पढ़ि-लिखि गुन-ढंग सिखि लेहि बाबा हो,
तब किहेउ बेटी कइ बियाह।
बाल बियहवा से देश नास भइले,
डगमग डोलति है नाव।।४।।"[72]

किसी पुत्री ने अपने पिता को समझाया है कि ए पिताजी ! बाल-विवाह मत कीजिए वह दुख की खान होता है। गाय से बछड़ा मत जोड़िये, मेरी विनय मानिए। ए पिताजी ! अल्पवयस्क पुत्री का विवाह न कीजिए, मेरी विनती मानिए। इस विवाह पर दुनिया का सम्पूर्ण भार निर्भर रहता है। जब पुत्री सयानी हो जाए तो सयाना वर खोजिएगा जिससे वह धर्म-कर्म, सेवा-सत्कार और देश का व्यवहार जाने। बेटी जब पढ़-लिखकर गुन-ढंग सीख ले तब उसका विवाह कीजिएगा। बाल-विवाह से देश बरबाद हो गया है और उसकी नाव डगमग डोल रही है।

एक विवाह गीत में कन्या को अपने विवाह के समय विवाह के बारे में कोई जानकारी भी नहीं है –

"खेलत रहिइउं मैं मइया की गदिया, खेलत चउँक परीउरे।
केहिके दुवारे बइया बाजन बाजे, केहि के दुआरे क चार रे।
तुम्हरे दुवारे बेटी बाजन बाजे, तुम्हरे दुवारे क चार रे।
गुन नाही सीखिऔ में ढंग नाही सीखिओं, नाही का राम रसाई रे।
सास ननद मोरी भइया गरियावें, मोसे सहा नहीं जाय रे।
गुन सिख जइहो बेटी ढंग सिख जइहों, सिख लीन्हौं राम रसोई रे।
सासु ननद तेरी मइया गरियावैं, अचरा प्रसार सुन लीन्हेओ रे।"[73]

कन्या की उम्र इतनी कम है कि उसे इस बात का आभास नहीं है कि आज उसका विवाह है। जब दरवाजे पर बाजे बजने लगे तब कन्या अपनी माँ से पूछती है कि आज बाजे क्यों बज रहे हैं, किसका ब्याह है। इस पर माँ उत्तर देती है कि तुम्हारे दरवाजे पर बाजा बज रहा है, तुम्हारा आज ब्याह है। जब उसे यह ज्ञान होता है कि आज उसका ब्याह है तो वह चौंक पड़ती हैं और चिन्तित होती है कि मुझे कोई भी काम करना नहीं आता है मैं ससुराल में जाकर क्या करूँगी। माँ ! मुझे यहाँ तक कि खाना बनाना भी नहीं आता है और तुमने ब्याह रच दिया है, ससुराल में ननद तुम्हें गालियाँ देगी। हमसे यह सब सह नहीं जाएगा लेकिन माँ अपनी बेटी को यह कहकर समझा देती है कि समय आने पर तुमको सब काम करना आ जाएगा। तुम इसकी चिन्ता मत करो। यदि तुम्हारी सास ननद हमको गालियाँ दें तो तुम आँचल पसार कर चुपचाप सुन लेना, कुछ कहना नहीं।

अवध में विवाह बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। "वैवाहिक क्रिया-कलाप का प्रारम्भ तिलक से समझना चाहिए और इसकी समाप्ति गवना अथवा द्विरागमन संस्कार से मानी जाती है।"[74] विवाह गीतों का क्रम उस दिन से प्रारम्भ हो जाता है जिस दिन से वर कन्या का तिलक चढ़ता है। तिलक को यहाँ 'वरछेदन' तथा 'लगन' भी कहते हैं। तिलक में पीतल, चाँदी अथवा फूल का थाल हल्दी में रंगे हुए चावल, नारियल, सुपारी, हल्दी की गाँठ, पान, मलमल का थान, लहँगे का कपड़ा, साड़ियाँ, वर के वस्त्र, पगड़ी, रूपया, मिठाई, मेवा और फल आदि सामान लेकर कन्या का भाई, नाऊ पुरोहित और घर के अन्य सदस्य वर के घर जाते हैं। यह सब सामान कन्या के हाथ में रखकर संकल्प कराया जाता है इसे ही लोक भाषा में 'तिलक चढ़ाना' कहा जाता है। इस अवसर पर सर्वप्रथम देवी के गीत फिर विवाह गीत गाये जाते हैं। एक विवाह गीत द्रष्टव्य है -

"हटियई सेन्दुरा महंग भई बाबुल चुनरी भई अनमोल रे
यहिं सेन्दुरा के कारन बाबुल छोड़यों में देस तुम्हारे रे
माया का छोड़यों में गोदी का खेलना, तो भाभी की राम रसोई रे
बाबुल को छोड़यों में नग्र अयोध्या, तो भइया का प्यार दुलार रे।"[75]

इस गीत में कन्या अपने पिता से कहती है कि – "अब हमारे लिए बाजार का सेन्दुर बहुमूल्य हो गया है और चुनरी अनमोल हो गई है। आज इसी सेन्दुर के कारण मुझे अपने पिता का घर छोड़ना पड़ रहा है, माँ की वात्सल्यमयी छत्र-छाया से दूर जाना पड़ रहा है, भाभी के हाथ के बने भोजन से तथा भइया के प्यार दुलार से वंचित होना पड़ रहा है। सेन्दुर से कन्या का आश्रय विवाह से है। आगे पंक्तियों में कन्या कहती है कि इसी सेन्दुर के कारण मेरी माँ ने हमें अनाज, धान और सोना दिया है, पिता ने लहंगा-दुपट्टा, भइया ने सुन्दर सा घोड़ा दिया है और भाभी ने अपनी माँग का बहुमूल्य एवं अनमोल सिन्दूर सुहाग के रूप में हमारी माँग में भरा है। माँ का दिया हुआ अनाज, धन और सोना तो हम कुछ ही दिन खाएँगे, पिता के दिए वस्त्र फट जाएँगे, किन्तु मेरे भाई का दिया हुआ घोड़ा हमारे नगर में घूमेगा (घोड़े पर हमारा पति घूमेगा) और भाभी के दिए हुए सिन्दूर द्वारा मैं सदैव सुहाग के अमर रहने की कामना करती रहूँगी। इस अवसर पर माता-पिता-भाई सभी रो रहे हैं किन्तु निष्ठुर भाभी खड़ी-खड़ी मुस्करा रही है। उससे वात्सल्यमयी माँ रोज पिता छः मासे, भाई काम पड़ने पर अथवा विशेष अवसर पर मैके आने को कहते हैं किन्तु भाभी कहती कि ननद को मैके आने का कोई काम नहीं है। जहाँ विदाई के समय एक ओर माँ बिलख कर अपनी देवरानी, जेठानियों से बेटी के बिना रहने का उपाय पूछती है वहाँ दूसरी ओर भाभी चैन से सोने की खुशी में हँस रही है।"[76]

ये गीत तिलक चढ़ाते समय गाए जाते हैं। यह गीत सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता है। विवाह के उपरान्त कन्या का नितान्त पराया होना, दहेज रूप में धन धान्य देना, परम्परा रूप में भाभी की माँग का सिन्दूर ननद की माँग में भरना आदि सामाजिक विधि-विधानों को स्पष्ट करते हैं। विदा के समय माँ, बाप तथा भाई का बिलख-बिलख कर रोना इन सबकी मनःस्थिति को सूचित करता है। इसी अवसर पर भाभी का हँसना भी स्वाभाविक है क्योंकि कुछ समय पूर्व यह भी अपने परिवार को इसी प्रकार छोड़ कर आयी थी आज उसकी ननद जा रही है तो उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है फिर उसका ननद से साहचर्य कुछ ही समय का है। इसीलिए उसे उसका जाना नहीं खल रहा है।

विवाह के अनेक विधि–विधानों के बीच पहले कन्या की छोटी बहन 'कन्या' को सिन्दूर चढ़ाती है। उसके उपरान्त कन्या की भाभी अपनी माँग का सिन्दूर कन्या की माँग में भरकर सुहाग देने की प्रक्रिया को पूरा करती है। अवधी क्षेत्र के कई लोकगीतों में सिन्दूर भराई का वर्णन मिलता है। एक गीत में ननद अपनी भाभी से कहती है कि भाभी अभी तक तो तुमने प्यार–दुलार तथा स्नेह दिया है किन्तु आज मैं तुमसे एक महत्वपूर्ण चीज माँग रही हूँ। वह है तुम्हारी माँग का सिन्दूर। गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है –

"भउजी दई देओ सुहाग मोरी भउजी,
अब तक दीन्हेउ प्यार दुलार।
अब दई देओ सुहाग–सुहाग मोरी भउजी
मंगिया मा दई देओ सुहाग।।"[77]

इस गीत में पारिवारिक प्रेम की एक सूत्रता दिखाई देती है। ये गीत हमें आज क्या युग युगान्तर तक एक दूसरे का परिवार में क्या महत्व है तथा परस्पर कितना अटूट प्रेम–भाव है, का परिचय देते हैं। इस प्रकार के गीतों में भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं। दूसरे परिवार की कन्या इस परिवार की वधू फिर वही वधू दूसरे परिवार की कन्या अर्थात् ननद को सुहाग देकर एकता का परिचय देती है। समय कितना क्यों न बदल जाए किन्तु पारिवारिक सम्बन्ध नहीं बदल सकते। ये सम्बन्धों की शृंखला एक परिवार में वैसे ही जुड़ती चली जाती है जैसे परिवार में समाज, समाज में ग्राम, ग्राम से नगर, नगर से प्रदेश और प्रदेश से देश।

वर कन्या की माँग में सिन्दूर लगाता है। सिन्दूर दान के समय मण्डप में कन्या पक्ष पण्डित तथा नाइन के अतिरिक्त कोई भी नहीं रहता। जैसा कि सिन्दूरदान के निम्नलिखित गीत से भी प्रकट है –

"बाबा–बाबा गोहरावौ, बाबा नहीं जागइ रे
देत सुधर एक सेन्दूर मइऊं पराई रे
जानि छुवौ ऐ दुल्हा जनि छुवौ अबहिं कुंवारि
जब मोरे बाबा संकल्पै सब होबे तुम्हारी।"[78]

वर कन्या की माँग में सिन्दूर भरने के बाद वधू को छूना चाहता है। उसकी आतुरता देखकर वधू समझाती हुई कहती है कि मुझे अभी मत छुओ। अभी तो मैं कुँवारी ही हूँ। जब बाबा कन्यादान कर देंगे तब मैं पूरी तरह से तुम्हारी हो जाऊँगी।

"कन्यादान के अवसर पर वधू के माता-पिता गांठ जोड़कर मंडप में विधि निर्दिष्ट सामग्री हाथ में लेकर बैठते हैं तथा कन्या का हाथ वर को पकड़ा देते हैं। उस समय पण्डित संकल्प पढ़ता है। इस शुभ अवसर पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं, जिन्हें कन्यादान-गीत कहते हैं।"[79] कन्यादान का शाब्दिक अर्थ है कन्या रूपी धन का दान करना, कन्यादान के उपरान्त कन्या अर्धांगिनी का रूप धारण कर लेती है और श्रीवर पति का रूप। अब कन्या श्रीवर के बायीं और स्थान ग्रहण करती है, इस समय के कन्या अपने माता-पिता के लिये पराई हो जाती है, इस समय का वातावरण अत्यधिक करुणापूर्ण हो उठता है। कन्यादान के अवसर पर अवधी क्षेत्र में कई गीत गाए जाते हैं। एक गीत द्रष्टव्य है -

"आधे कियरिया म जौ बोये बाबा, आधे मा बोये धान
आधे मड़ौना म तुम बइठौ बाबा, देउ आय कन्यादान
जो कुछ बारे से बिढ़यो हो बाबा, सो कुछ खरचो आय
अब कस थर थर कांपो रे बाबा, यहै धरम केरी बेर
चन्द्र गिरहन बाबा नित उठ होइहैं, कन्या दान नहीं होय
गउवैं दान बाबा नित उठ होइहैं, कन्या दान नहीं होय।"[80]

उपर्युक्त गीत में कन्या अपने पिता से कहती है कि आधे मण्डप में श्रीवर हम और पुरोहित बैठे हैं, आधे में आप आकर बैठिए और कन्यादान को आज तक हमारे लिए जो कुछ संचित किया है, उसे आज यहाँ खर्च कीजिए। खर्च करने का समय आ गया है। आज मेरी बेटी परायी हो जायेगी, यह सोचकर पिता का हृदय काँप उठता है। कन्या अपने पिता की हालत देखकर कहती है कि बाबा यह सोच मत कीजिए कि हमारी प्यारी बेटी परायी हो जाएगी। यह धर्म का समय है अतः आप आकर मेरा कन्यादान कीजिए। कन्या का दान रोज-रोज नहीं होता है। बाबा ! जैसे चन्द्र ग्रहण तो प्रायः पड़ता है किन्तु सूर्यग्रहण कभी-कभी पड़ता है, उसी प्रकार गउओं का दान करना कठिन नहीं है, उसे नित्य ही कर सकते हैं परन्तु कन्यादान करना अत्यन्त कठिन होता है और यह अवसर बड़ी मुश्किल से आता है अतः आप बिना सोच-विचार किये इस शुभ अवसर का लाभ उठाकर मेरा कन्यादान कर दीजिए।

विवाह के अवसर पर गालियाँ गाने की प्रथा है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने गाली गीत के सम्बन्ध में लिखा है - "विवाह के समय सप्तपदी (भांवर पड़ना) की विधि समाप्त हो जाने पर समस्त बारातियों को भोजन कराया जाता है जिसे 'जेंवनार' कहते हैं। इसी जेंवनार के समय

कन्या पक्ष की स्त्रियाँ अपने कोकिलकंठ से गीत गाकर समधी अर्थात् वर के पिता का मनोरंजन करती हैं। इस मंगलमय अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'गाली' कहते हैं।"[81] "ये गालियाँ हास-परिहास के लिए गाई जाती हैं। इनके गाने का मनोवैज्ञानिक मूल्य भी है। मानव की काम-प्रवृत्ति जो समाज में बहुत नियंत्रित और संयमित रहती है, उसके दमन से अस्वस्थ मानसिक विकारों के पैदा होने की संभावना है। यह गालियाँ उस काम-प्रवृत्ति के प्रगटन के लिए समाज-स्वीकृत मार्ग प्रस्तुत करती हैं।"[82] गाली नामक गीत हास-परिहास का सृजन करने के साथ ही अपने नाम को भी सार्थक करते हैं। ये गालियाँ रागद्वेष से मुक्त प्रेम का प्रतीक मानी जाती हैं। जब समधी तथा अन्य बाराती भोजन करने लगते हैं तब कन्यापक्ष की स्त्रियाँ समधी, ससुर, भसुर, देवर, सास, ननद, देवरानी तथा जेठानी सभी का पृथक-पृथक नामोल्लेख करके गाली गाती हैं। जिस व्यक्ति का नाम लेकर गाली दी जाती है वह उसे सुनकर बहुत ही प्रसन्न होता है। इसके ठीक विपरीत जिसका नाम लेकर गाली नहीं गायी जाती वह व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता हैं। अतः हिन्दू समाज में विवाह के अवसर पर गाली गाना वैवाहिक विधि-विधान का आवश्यक अंग माना जाता है।

अवधी समाज में विवाह के अवसर पर गाली गीत गाने का प्रचलन है, लेकिन मणिपुरी समाज में नहीं। अवधी लोकगीतों में गाली का अवसर विवाह के समय का 'जेंवनार' है। जब समधी तथा अन्य बाराती भोजन करने लगते हैं तब कन्यापक्ष की स्त्रियाँ 'गाली गीत' गाती हैं। विवाह के क्रियाकलापों से सम्बन्धित नाई, नाइन, बारी, बारिन, ब्राह्मण तथा कुम्हार आदि सभी गाली गीत के पात्र हैं। विवाह में बारातियों के साथ आये सभी लोगों को गाली दी जाती है उन्हें कोई बुरा नहीं मानता।

"का वहि कासी कै कोटे बखानी का वहि बांसी का राजा, कि हांजी।
कासी कै कोट म चित्र लिखत है बांसी के राजा हजारो, कि हांजी।
तंबुआ कनात लिए फिरई कवन राजा कहां डारों में डेरा कि हांजी।
डेरा परिगा समधी के दुआरे गड़िगे झन्डा निसान कि हांजी।
तहां कवन राजा सेज बिछावैं कोई छिनरिया न आवै कि हांजी
निहुरे निहुरे आई हैं समधिन ठाढ़ी भई गोढ़तारी कि हांजी।
सोई रहे कि जागे रसिया टीका के आयें बिकाय कि हांजी।
रंहसि के रसिया उतर दीन्हा, एक कौड़िया न सांठी की हांजी।
तब तक समधिनि बांह लफाइन, काढ़ि लीन्हा रूपइया साठी कि हांजी।

ओही रूपइया क टीका बेसाही नव लख लागी है पाती कि हांजी।
भोर भये सखि पूछन लागीं कहु सखि रात कि बाती कि हांजी।
काउ कहौ सखी रात की बाती मोरे बूते कहियो न जाय कि हांजी।
तन सुख मन सुख औरू परम सुख नैनन परि गइ जुड़ाई कि हांजी।"[83]

कुछ गालियाँ कृष्ण जैसे महान चरित्रों को सम्बोधित होती हैं। उनके चरित्र में छिद्रान्वेषण कर उनके माध्यम से वे वर पक्ष के लोगों पर प्रहार करती हैं। एक गारी गीत द्रष्टव्य है –

"घर से निसरी गुवालिनि–
घर से निसरी गुवालिनि, बेंचन दान दही रे दही !
आंतर मिलिगै कन्हैया–
आँतर मिलिगै कन्हैया, रोकत राह गली रे गली !
तारौ कदम कै पत्ता–
तोरौ कदम कै पत्ता, चीखहु दान दही रे दही!
पत्ता लागे हैं झाँझा–
पत्ता लागे हैं झाँझा, अँचरै म चिखबै दही रे दही!
आँचर है मोरा जूठा–
आँचर है मोरा जूठा, लरिकन लारि बही रे बही!
कहिया गयू गवनवाँ–
कहिया गयू गवनवाँ, कब तुहरे लरिका भये रे भये!
मुख से निरी न बोली–
मुख से निसनी न बोली, कान्हाँ चीखत दान दही रे दही!"[84]

अर्थात् घर से सुन्दरी गोपी निकली, दही का दान देने और बेचने के लिए थोड़ी ही दूर पर कन्हैया मिल गये। वह हर गोपी में जाकर मार्ग रोकने लगे, दही का दान माँगने लगे। गोपी कहती है – कदम्ब का पत्ता तोड़ लाओ, उसी पर दही दे दूँगी, तुम चख लेना। कृष्ण कहते हैं कि पत्ते में तो झांझा (कीड़ा) लगा है। उसमें छेद हो गया है। उसमें कैसे चखूँगा? कृष्ण पूछते हैं कि कब तुम्हारा गौना हुआ कब तुम्हें बच्चे हो गये, जिनकी लार तुम्हारे आँचल में गिरी है? गोपी निरूत्तर हो जाती हैं और कृष्ण दही का दान पा जाते हैं।[85]

अतः अवधी लोकगीतों में जेंवनार के अवसर पर गाली गाने की प्रथा का प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। लेकिन ये गालियाँ कहीं भी शालीनता की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करती। गीतों के द्वारा व्यंजित भावों में अश्लीलता भले ही कहीं मिल जाय लेकिन गीतों के शब्दों में नहीं है। निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि लोकगीतों में काम-वासना की अभिव्यक्ति अत्यन्त संयमित, सृष्ट तथा सुन्दर है।

विवाह सम्पन्न होने के बाद कन्या जब घर छोड़कर ससुराल जाने की तैयारी में होती है तब कन्यापक्ष की स्त्रियाँ गीतों के माध्यम से कन्या को समझाती हैं कि उसे कैसे ससुराल में रहना चाहिए। कन्या की विदाई के समय वर पक्षवालों के साथ सुंदर व्यवहार करने का उपदेश देना एक पुरानी परम्परा है। हृदय को छू लेने वाले ये गीत सभी क्षेत्रों में विदाई के अवसर पर गाये जाते हैं। कन्या की विदाई का दृश्य अत्यन्त कारूणिक हो जाता है। माता-पिता, भाई, परिवार के सगे-सम्बन्धी सभी की आँखों में आँसू की धारा बहने लगती है। इसीलिए विदाई के अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में करूणा का सागर लहरें लेता है। इन गीतों में पुत्री को चिड़िया या कोयल कहा गया है। "प्रसिद्ध है कि कोयल अपने अण्डों को स्वयं नहीं सेती। वह जहाँ कौए (मादा) के अण्डे रखे होते हैं, वहीं अपने अण्डे भी रख जाती है। कौवी यह निश्चय नहीं कर पाती कि इनमें से कौन से अण्डे उसके हैं और कौन से पराये हैं, अतः वह सभी अण्डों को सेती है और उनके फूटने पर सभी बच्चों का समान रूप से पालन-पोषण भी करती है। जब सभी बच्चे बड़े हो जाते हैं, तब कोयल के बच्चे कौवों के बच्चों से अलग उड़ जाते हैं। इसीलिए लोक गायक पुत्री को कोयल कहता है। कौए की भाँति ही पुत्री का पालन पोषण माता-पिता करते हैं और जैसे ही बड़ी हो जाती है, ससुराल चली जाती है। इस प्रतीक की योजना के पीछे लोकगायक के मन में कौए द्वारा पोषित कोयल वाला भाव ही काम कर रहा है।"[86]

विदाई गीत की एक-एक पंक्ति करूण भावना से ओतप्रोत है। सामाजिक जीवन में एक घर छोड़कर दूसरे घर जाने की कल्पना ही करूणा और वेदना की जनक है -

"सुरूज जोति से निकरी है बेटी धाम देखत कुम्हिलांय।
कहो जोति मोरी बेटी तंबुआ तनावों, कहो तो छत्र के छांह।
काहे क मोरे बाबा तंबुआ तनइयो काहे छत्र कै छांह।
होत बिहान चिरइया एक बोले लगिहौं सुनर वर के साथ।
एक वन गई दुसर वन गई, तिसर वन केउ न हमार।

बाट के चलत बटोही भइया हितवा हमर सनेस लिहे जाउ।
हमरा सनेस जाइ बाबा से कहियो, अम्मा से कहेउ समुझाय।
कहा सुना बाबा सब माफ किहेउ बटिया वहोरेया हमार।"[87]

एक विदाई गीत में कन्या की विदाई के समय उसके माता-पिता तथा भाई की मनोदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है-

मइया के रोईबे से छतिया फटत है, बादुल रौवें छाती फाड़ रे
भइया के रोइवे से पेटुका भिजन है, भउजी खड़ी मुस्कान रे।

अन्य विदाई गीत में कन्या अपने घर वालों से कहती है-

"बाबा निमिया का पेड़ जिन काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर बलइया लेउ बीरन
बाबा धिरिया जिन केउ दुख देउ,
धिरिया चिरैया की नाई बलइया लैउ बीरन
सब रे चिरैया उड़ि जइहै,
रहि जइहै निबिया अकेलि बलइया लेउ बीरन
सब रे धिरिया जइहैं ससुरे,
रहि जइहै माई अकेली बलइया लेउ बीरन।"[88]

इस गीत में कन्या के ससुराल जाने का वर्णन है। घर के सामने नीम का पेड़ है जिसे संभवतः उसी ने लगाया है। पुत्री का यह कहना है कि पुत्रियों को कोई कष्ट न देना क्योंकि पुत्री और पक्षी की गति एक सी है, चिड़िया उड़ जाएगी, नीम का पेड़ अकेला रह जाएगा। इसी प्रकार सब बेटियों का विवाह हो जाएगा और वे अपने-अपने ससुराल चली जाएँगी और माँ अकेली रह जाएगी।

(ख) वर-पक्ष के गीत :

जिस प्रकार कन्या-पक्ष को लेकर अवधी क्षेत्र में विवाह गीतों की प्रचुरता है उसी प्रकार वर पक्ष विषयक विवाह गीत भी प्राप्त होते हैं। वर पक्ष के गीतों में उल्लास, उछाह, प्रसन्नता तथा आनन्द दृष्टिगोचर होता है।

प्राचीन लोक प्रथा के अनुसार जब कोई परदेश जाता है तो उसे पहुँचाने के लिए सगे-सम्बन्धी उसके साथ जलाशय तक जाते हैं। इसी प्रकार जब बरात जाती है तो स्त्रियाँ वर के साथ कुएँ तक उसे विदा करने जाती हैं। कुआँ पूजकर माँ अपने पुत्र को दूध पिलाकर बारात विदा करती है। स्त्रियाँ गीत गाती हैं। उसी का वर्णन गीतों में है। दूध के मोल के पीछे कुल की मर्यादा का भाव निहित है, इसके अतिरिक्त माँ ने पुत्र के लालन-पालन में जो कष्ट उठाए हैं उसकी स्मृति भी इस प्रथा के कारण सजीव हो जाती है। गीत द्रष्टव्य है -

"तुम तो चलेउ पूत गोरी बिहावन
दुधवा का मोल कइ लेओ रे।।
सरग तरइया मइया कब लै गिनइहौ।
दुधवा के मोल कइसे होय रे।।
गइया का दूध माई हटिया बिकाई।
मइया का दूध अनमोल रे।।
मोरी बिहाई जब लउटव मोरी मइया।
इतना बचन सुन लेउ रे।
हमहूँ तो करब बाप की सेवकाई।
मोरी धना दासी तोहारि रे।।"[89]

प्रस्तुत गीत में माँ अपने बेटे से कहती है कि तुम तो विवाह करने जा रहे हो लेकिन तुम मेरे दूध का मूल्य तो चुका दो, जिसको पीकर तुम आज इस योग्य हुए हो। बेटा उत्तर देता है कि जिस प्रकार आकाश के तारे गिनना असम्भव है ठीक उसी प्रकार तुम्हारे दूध का मूल्य चुकाना असम्भव है। गाय का दूध तो कहीं पर भी मिल जाता है परन्तु माँ का दूध तो मात्र जननी से ही प्राप्त होता है। इसीलिए मैं तुम्हारे दूध का मूल्य जीवनभर नहीं चुका सकूँगा। जब मैं विवाह करके लौटूँगा पत्नी लाऊँगा तो वह तुम्हारी सेवा करेंगी।

अतः 'दूध पिलाने' के इस विधि-विधान के माध्यम से माँ ने पुत्र के लालन पालन में जो कष्ट उठाए हैं उसकी स्मृति सजीव हो जाती है । इस गीत में माँ और बेटे के कर्त्तव्य और अधिकारों की सुन्दर व्याख्या की गई है।

विवाह के पश्चात् जब बहू ससुराल में आती है तब सास पहले उसका परछन

करती है। पानी ढारकर बहू को घर में प्रवेश दिया जाता है। इस अवसर पर आशीष गीत भी गाये जाते हैं। स्त्रियाँ एक स्वर में दूलहा–दुलहिन के अमर रहने की कामना करती हैं। गीत में दुल्हे की उपमा सूर्य और वधू की उपमा चन्द्रमा से देती है। गीत इस प्रकार है –

"हमरा सबका लम्बा असीस
तुम्हार जोड़ी अमर हे।
हमरा बनरा जइसे सूरज कै जोती,
बनरी पुनम करे चाँद तुम्हार जोड़ी. . . ।"[90]

एक अन्य आशीष गीत में युवतियाँ दुलहा–दुलहिन के अमर रहने की कामना के साथ उनकी दादी, चाची, माँ, बुआ, बहन, भाभी, नानी, मामी और मौसी आदि के सुहाग के अमर रहने की भी कामना करती है –

"जुग–जुग जीवे जोड़ी तुम्हार,
यहु आशीष हमारा।
बन्ने के बाबा लाख बरस के,
दादी रानी का अमर सुहागा।
यहु आशीष हमारा . . . ।"[91]

3.1.3 मृत्यु–संस्कार के गीत :

मनुष्य जीवन का अंतिम संस्कार 'मृत्यु संस्कार' है। इस संस्कार के अवसर पर गाये जानेवाले गीत 'मृत्यु गीत' है। "संसार के प्रत्येक देश में चाहे वह सभ्य हो या असभ्य। इस संस्कार की विधि प्रचलित है। भारत में मृत्यु संस्कार के अवसर पर गीत गाने की परम्परा है, किन्तु इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में प्रसन्नता अथवा उछाह नहीं मिलता अपितु विषाद की गहरी रेखा और कहीं–कहीं लोकोत्तर आश्वासन के संकेत प्राप्त होते हैं। हिन्दू–जीवन में लोक ही नहीं परलोक की भावना का महत्व भी बहुत अधिक है।"[92] डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है कि – "मृत्यु के अवसर पर स्त्रियों के रूदन में भी एक लय मिलती है और अभिप्राय भी होता है। इसमें प्रायः मृत पुरूष का नाम ले–लेकर शोक प्रकट किया जाता है।"[93] डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल ने भी लिखा है – "वास्तव में गा–गाकर रोने के अन्तर्गत काव्य

का सौन्दर्य और भावना का समुद्र है। स्त्रियों का हृदय इतना कोमल और अनुभूति इतनी तीव्र होती है कि सुख में दुख में, आशा में, निराशा में, प्रत्येक स्थिति में उनके हृदय से कविता की उत्पत्ति और गीत की स्फुरणा अनायास ही होने लगती है।"[94]

ऋग्वेद में मृत व्यक्ति के प्रति शोक प्रकट करने के अनेक सूक्त मिलते हैं। प्रेत की आत्मा किस मार्ग से स्वर्ग में जायगी, उसकी रक्षा को कौन से रक्षक रहेंगे, आदि का वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं में बड़े रोचक ढंग से किया गया है। मृतात्मा के लिए कहा गया है–

"प्रेहि प्रेमि पथिमि पूव्येभिः
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उमा राजाना स्वधया मदन्ता।
यम पशेपासि वरूणं च देवम्।"[95]

"रामायण और महाभारत में भी विशेष व्यक्तियों की मृत्यु पर विलाप के अनेक प्रसंग आये हैं। ऐसे प्रसंगों को मृत्यु गीतों की श्रेणी में रखा जा सकता है। कालिदास ने 'कुमारसंभव' में रति का बड़ा हृदयस्पर्शी विलाप कराया है। 'रघुवंश' में भी महाकवि ने इंदुमति की अकाल मृत्यु पर राजा अज का जो शोक व्यक्त किया है वह विश्व साहित्य में अद्वितीय है। उर्दू साहित्य में 'मर्सिया' के रूप में शोक–गीत मिलते हैं। 'मर्सिया' काव्य का एक विशिष्ट प्रकार है।"[95]

अवध में मृत्यु गीत अधिक संख्या में नहीं मिलते हैं। "प्रायः किसी वृद्ध की मृत्यु के समय गीतों का विधान पाया जाता है पर असमय पर मृत्यु की गोद में जानेवाले प्राणी के लिए हृदय में शोक रहता है और साधारणतः ऐसे अवसरों पर गीत नहीं गाए जाते हैं। अवध में कुछ गीत उपलब्ध होते हैं जो निर्गुण से भिन्न नहीं कहे जा सकते। 'बिछुरत प्रान काया अब काहे रोई हो' कबीर का यह आध्यात्मिक उपदेश सुलतानपुर (अवध) के कबीर पंथी समाज ने ज्यों का त्यों मृत्यु गीत के रूप में ले लिया।"[97] अवधी क्षेत्र में मृत्युगीतों का एक प्रकार और मिलता है, जिसे 'देह' कहते हैं। ये गीत (देह) मोहर्रम के दिनों में गाए जाते हैं। इन गीतों में 'हसत–हुसैन' के भौतिक शरीर पर किए गए अमानुषी अत्याचारों का मर्मस्पर्शी वर्णन रहता है।

एक मृत्यु गीत द्रष्टव्य है –

"कन्ता मोर नदिया बीच बहियै, मैया रोवैं अँचर निचोरैं,
पूत गोदिया मोरी सूनी कै गै।

दूर देस बहिनी वनकै रोवैं, भैया मोरी गलिया सूनी करिगै!
भौजी रोवैं भोजन बनावैं, देवरा बोलिया मोरी सूनी कै गै!
तिरिया रोवैं सेज बिछावैं, काँच की चुरिया दुलभ मोरी करिगै!"[98]

अर्थात् माँ की गोद सूनी हो गयी, बहन की गलियों में भाई के बिना कौन जाएगा। भाभी देवर के बिना किससे मधुर परिहास करेगी। पत्नी की सेज सूनी हो गयी, शृंगार छिन गया।

प्राचीन काल में मणिपुर में मृत्यु-संस्कार के अवसर पर 'मृत्यु गीत' गाने का प्रचलन था। मणिपुरी भाषा में मृत्यु-संस्कार के समय पर गाये जानेवाला गीत को 'शिक्पलोन' कहते हैं। वर्तमान समय में गीत की यह प्रवृत्ति लुप्त हो चुकी है, परन्तु किसी की मृत्यु होती है तो उसकी शव-यात्रा के साथ शास्त्रीय गीतों के गाने का प्रचलन है, मृतक के पास उसके सम्बन्धी मृतक के पूर्व क्रिया-कलापों, उसकी प्रशंसा आदि को स्त्रियों को रो-रो कर लयात्मक स्वरों में व्यक्त करती हैं। इन लयात्मक स्वरों को गीतों में बाँधना लोकगीतों की दृष्टि से न्यायोचित नहीं होगा। अतः मणिपुर में मृत्यु-संस्कार के अवसर पर शास्त्रीय गान की परम्परा है परन्तु मृत्यु गीत नही गाये जाते हैं। एक शिक्पलोन गीत द्रष्टव्य है –

"शाबल यांबि मनमथक
पलेम इमा इबेम्मा
थवाय चेकला पाइख्रबना
हकचाङ पोलाङ अतिंङा
मालेम लैरोल चह्लगे
पलेम नुंशिबा कायनरे
पलेमसु मपारि ममोम
लेहौरि निंशिंद्रे
ताइबङ इदोम पोक्लकपा
इदोम हनबनि।
ङसि शिनि पाओताक्ते
हयेङ शिनि पाओमेलदे
ताइबङ अमम्बनि।"[99]

इस गीत का भावार्थ यह है कि मनुष्य संसार में खाली हाथ आया है और खाली हाथ ही जाता है। इस संसार में आकर वह काफी सुख का अनुभव करता है किन्तु संसार को एक दिन छोड़ना है यह सोचकर वह दुखी हो जाता है। जीवन की शाम कब हो जाए किसी को नहीं पता. . .।

3.2 निष्कर्ष :

हिन्दू जीवन सबसे अधिक धर्म से ही प्रभावित है। इसमें भी संस्कारों का अधिक प्रभाव रहा है। मनुष्य के जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कारों का विधान है। प्राचीन समय में मानव जीवन से सम्बन्धित सोलह संस्कारों का विधान था, जो सभी शास्त्रीय थे, सम्प्रति सर्वाधिक लोकप्रिय संस्कार सोलह हैं, यद्यपि विभिन्न धर्मग्रन्थों में इन संस्कारों की संख्या भिन्न–भिन्न बतायी गयी है। लेकिन आधुनिकतम पद्धतियों ने यह संख्या स्वीकृत कर ली है। लोकगीत और संस्कारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य के जन्म से पूर्व से मृत्यु तक विभिन्न कृत्यों (संस्कारों) के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों कों 'संस्कार–गीत' कहते हैं। मानव जीवन की प्रत्येक अवस्था का वर्णन 'संस्कार–गीतों' में है। लोक–जीवन में प्रमुख रूप से तीन संस्कारों का पालन देखा जाता है। 1. जन्म–संस्कार 2. विवाह संस्कार और 3. मृत्यु संस्कार। इन तीन संस्कारों के साथ स्थानीय विधि–विधान अथवा लोकाचार प्रचलित हैं। अवधी और मणिपुरी जन–जीवन में भी इन तीन संस्कारों को ही महत्वपूर्ण माना गया है।

अवधी और मणिपुरी समाज में जन्म–संस्कार सबसे महान संस्कार है। इस अवसर पर अवध में सोहर, सरिया, चरूबा, पियारी गीत, पालना गीत, मुण्डन गीत आदि गाए जाते हैं। लेकिन मणिपुरी समाज में जन्म के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन प्रायः नहीं है। अवध में जब किसी घर में पुत्र पैदा होता है तो सब अड़ोस–पड़ोस की स्त्रियाँ विशेषकर वृद्धाएँ उस घर में जाकर 'सोहर' गाती हैं। लेकिन कन्या पैदा होने पर ये गीत नहीं गाये जाते। क्योंकि अवधी समाज में कन्या के विवाह में जो दहेज की प्रथा है उसके कारण माता–पिता कन्या का जन्म लेना अपने लिए अहितकर समझते हैं। लेकिन मणिपुरी समाज में कभी भी कन्या का जन्म शोक का विषय नहीं माना गया। यह स्थिति मणिपुरी स्त्री को देश के अन्य भागों की स्त्री से नितांत भिन्न और विशिष्ट स्तर प्रदान करती है, उत्तर भारत की स्त्री से तो अत्यधिक विशिष्ट। अवध के लोकगीतों में बाँझ स्त्रियों की करूण कथा और नियोग प्रथा का उल्लेख मिलता है। अवधी समाज में सन्तान न होने पर परिवार के लोगों के द्वारा उसे बांझिन जैसे अपशब्द सुनने पड़ते हैं तो उस अबला स्त्री का हृदय सन्तान प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है और जीवन से निराश स्त्री अन्त में अपना अन्त करने का निश्चय करती है। मणिपुरी समाज में भी बाँझ स्त्री को 'अखुङबी' कहकर निन्दा की गई है। उसका सर्वत्र अनादर होता है। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में

उसकी उपस्थिति अशुभ मानी जाती है। लेकिन अवध की तुलना में मणिपुरी समाज में वन्ध्या स्त्री की इतनी उपेक्षा नहीं है। मणिपुरी समाज में नियोग प्रथा का प्रचलन परंपरा से नहीं मिलता।

अवधी और मणिपुरी समाज में विवाह बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। दोनों क्षेत्रों में विवाह के अवसर पर कई प्रकार के शास्त्रोक्त एवं लौकिक कृत्यों का सम्पादन किया जाता है। परन्तु वैवाहिक प्रणालियों में अन्तर देखने को मिलते हैं। अवधी समाज में विवाह के प्रत्येक अवसर पर गीत गाए जाते हैं लेकिन मणिपुर में गीत गाए जाने का प्रचलन प्रायः नहीं है। हिन्दू समाज में कन्या के लिए उपयुक्त वर ढूँढना बड़ी समस्या है । दहेज प्रथा की जड़ें हमारे समाज में भीतर तक फैली हुई हैं। दहेज के कारण कन्या और परिवारवालों को जो कष्ट उठाना पड़ता है उसकी झलक अवधी विवाह गीतों में साफ–साफ दिखाई पड़ती है। मणिपुरी समाज में दहेज प्रथा प्रचलन में नहीं है।

अवधी लोकगीतों में बाल–विवाह की कुप्रथा की झलक दिखाई पड़ती है। लेकिन मणिपुरी समाज में बाल–विवाह का प्रचलन नहीं है। अवध में जेंवनार के अवसर पर गाली गाई जाती है। विवाह में बारातियों के साथ आये हुए सभी लोगों को गाली दी जाती है जिससे कोई अपने को उपेक्षित न समझे। इन गालियों में अश्लीलता का नितान्त अभाव पाया जाता है। इनमें अभिधा शक्ति का प्रयोग न कर प्रायः लक्षणा तथा व्यंजना से काम लिया जाता है। संकेतों तथा प्रतीकों के द्वारा हृदय के हल्के भावों को प्रकट करने की चेष्टा की जाती है। अवध में विदाई के अवसर पर गाए जानेवाले गीत वास्तव में हृदय विदारक होते हैं। विदाई गीतों में पुत्री को चिड़िया या कोयल कहा गया है। विदाई गीतों में कन्या की वेदना ही नहीं समस्त स्त्री वर्ग की वेदना छिपी रहती है।

'मृत्यु' मानव–जीवन का अन्तिम संस्कार है। अवधी क्षेत्र में मृत्यु के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन है। लेकिन मृत्यु–गीत अधिक संख्या में नहीं मिलते हैं। इन गीतों में प्रसन्नता अथवा उछाह नहीं मिलता अपितु विषाद की गहरी रेखा और कहीं–कहीं लोकोत्तर आश्वासन के संकेत प्राप्त होते हैं। मणिपुरी क्षेत्र में मृत्यु के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन प्रायः नहीं है।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मगही भाषा और लोक-साहित्य, डॉ. सम्पत्ति आर्याणी, पृ. सं. 165
2. लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ.12
3. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 22
4. लोक-साहित्य और संस्कार संस्कृति, डॉ. जयनारायण कौशिक एवं विमला कौशिक, (भूमिका)
5. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड के सन्दर्भ में), डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, पृ. 134
6. वही
7. अवधी लोक वाङ्मय, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 46
8. लोक साहित्य और संस्कार संस्कृति, डॉ. जय नारायण कौशिक एवं विमला कौशिक, पृ.12
9. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ.120-121
10. वही, पृ. 121
11. लोक साहित्य और संस्कार संस्कृति, डॉ. जय नारायण कौशिक एवं विमला कौशिक, पृ. 13
12. वही
13. वही, पृ. 14
14. वही, पृ. 16
15. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ. 122
16. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 28
17. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ. 125
18. अवधी लोक वाङ्मय, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ.47
19. वही
20. हिन्दू संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन, डॉ. राजबली पाण्डेय, पृ. 121
21. अथास्य गोदान वियेरनन्तर
    विवाह दीक्षा निरवर्तयद गुरुः/रघुवंश, 3/33
22. शोध-दिशा (शोध अंक-8) सं. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, जुलाई-दिसम्बर, 2009, पृ. 215
23. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ. 127

24. वही
25. वही, पृ. 45
26. अवधी लोकगीतों की परम्परा, प्रो. इन्दु प्रकाश पाण्डेय, पृ. 174
27. लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्त, पृ. 128
28. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ. 13
29. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के सन्दर्भ में), डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, पृ. 136
30. वही
31. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 5
32. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के सन्दर्भ में), डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, पृ. 139
33. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 42
34. प्रवासी संसार (अवधी विशेषांक), सं. राकेश पाण्डेय, पृ. 29
35. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 151
36. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. कुलदीप, पृ. 57
37. हिन्दी के लोकगीत भाग–1, सं. डॉ. महेश अवस्थी, पृ. 148
38. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 25
39. वही, पृ. 25-26
40. वही, पृ. 33
41. अवधी लोकगीत (भाग–2), सं. डॉ. महेश प्रताप नारायण अवस्थी, पृ. 150
42. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 45
43. प्रवासी संसार (अवधी विशेषांक), सं. राकेश पाण्डेय, पृ. 29
44. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 23
45. वाचिक कविता : अवधी, सं. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 38
46. वही, पृ. 38-39
47. वही, पृ. 39
48. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 46
49. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 25
50. वही, पृ. 27
51. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 49

52. हिन्दू संस्कार तथा धार्मिक अध्ययन, डॉ. राजबली पाण्डेय, पृ. 67
53. सदशाच्छेयसौ वा त्वं द्विवयपत्यं यशस्विनि, आदि 120/37
महाभारतेकालीन समाज भूत लेखक सुखमय भट्टाचार्य, अनुवादिका पुष्पा जैन, पृ. 41
54. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 49-50
55. वही, पृ. 50
56. वाचिक कविता : अवधी, सं. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 40
57. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 28
58. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 155
59. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (लोकसाहित्य खण्ड-2 : अवधी : अध्याय -2), पृ. 211
60. वही
61. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 30
62. भारतीय संस्कृति का आधारभूत तत्व, सं. ब्रह्मवर्चरव, पृ. 110
63. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 174
64. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (लोकसाहित्य खण्ड-2 : अवधी : अध्याय -2), पृ. 216-217
65. वही, पृ. 217
66. अवधी के लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 37
67. वही, पृ. 38
68. हिन्दू-विवाह की उत्पत्ति और विकास, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 355
69. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 227
70. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 41
71. हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास, प्रो. हरिदत्त वेदालंकार, पृ. 329
72. हिन्दी के लोकगीत (भाग-१), सं. डॉ. महेशप्रताप नारायण अवस्थी, पृ. 158
73. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 65
74. अवधी साहित्य : सर्वेक्षण और समीक्षा, सं. जगदीश पाण्डेय, पृ. 8
75. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 66
76. वही, पृ. 66-67
77. वही, पृ. 85
78. वही
79. लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, पृ. 63

80. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 86
81. लोक-साहित्य : सरल प्रसंग, सं. जगदीश पीयूष, पृ. 9
82. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 185
83. वही
84. वाचिक कविता : अवधी, सं. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 90
85. वही
86. परिषद्-पत्रिका, वर्ष -7, अंक-2, पृ. 124
87. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 186-187
88. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 91
89. वही, पृ. 80
90. वही, पृ. 93
91. वही, पृ. 94
92. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 237
93. ब्रज लोक-साहित्य, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 232
94. राजस्थानी लोकगीत, डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल, पृ. 90
95. ऋग्वेद, 10/14/7/
96. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ. कुलदीप, पृ. 131
97. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 237
98. वाचिक कविता : अवधी, सं. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 91
99. खुरूखुलगी फोकलोर नैनबा, लोरियाम शान्तनि देवी, पृ. 228

❖❖❖

4. चौथा अध्याय : अवधी और मणिपुरी श्रम–गीतों के स्त्री–स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन

4.1 श्रम–गीत

4.1.1 जँतसार–गीत

4.1.2 रोपनी–गीत

4.1.3 निरवाही–गीत

4.1.4 कटनी–गीत

4.1.5 चरखा–गीत

4.2 निष्कर्ष

4.1 श्रम–गीत :

श्रम परिहार करने के लिए गाए जानेवाले गीतों को श्रमगीत कहते हैं। श्रम करना मानव का साध्य भी है और साधन भी। श्रम के अभाव में मनुष्य जीवन की कल्पना असह्य है। श्रम के अनेक स्तर और प्रकार हैं। जीवन गति को सुचारू ढंग से चलाने के लिए श्रम को महिमामंडित किया गया है। समाज को श्रम के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – पहला वर्ग वह जो निरंतर श्रमशील है दूसरा वह जो दूसरों के श्रम का आस्वादन करता है। पहला वर्ग उत्पादक है तो दूसरा अनुत्पादक। पहला वर्ग श्रम करते हुए जीवन के रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्वाद को परखता–निरखता है, दूसरा वर्ग जो उपभोक्ता होता है, बगैर श्रम किए जीवन–निर्वाह करता है। श्रमशील वर्ग में किसान, मजदूर, कारीगर, शिल्पी आदि न जाने कितनी तरह के लोग आते हैं, जो निरंतर दैहिक–शारीरिक–मानसिक श्रम करते हैं कि दो वक्त की रोटी जुट सके। निरंतर शारीरिक श्रम से उत्पन्न स्वेद गंध से जो गीत फूटते हैं उन्हें 'श्रमगीत' कहा जाता है, जिनके गायन से न सिर्फ थकान दूर होती है बल्कि मानसिक विरेचन भी होता है। श्रम गीत प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग ढंग से गाए जाते हैं। मानव जीवन अनेक प्रकार के संघर्षों में व्यस्त रहता है। जिसमें विविध कार्यकलाप एक अनिवार्य चक्र की भाँति आते–जाते रहते हैं। जीवन–यापन हेतु अर्थार्जन भी अटूट परिश्रम के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस कारण भारतीय लोक–जीवन कर्म का साकार रूप है। "प्राचीन काल से ही कृषि यहाँ का प्रमुख कार्य रहा है। इस कार्य में स्त्री पुरुष सभी का जीवन व्यस्त रहता है। लोक जीवन के कर्मक्षेत्र में व्यस्त कमष्य स्त्री–पुरुष श्रम–परिहार हेतु अनायस ही श्रम–गीतों का सृजन कर देते हैं।"[1] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने श्रम–गीतों के सम्बन्ध में लिखा है – "श्रम–गीत उन गीतों को कहते हैं जो किसी कार्य को सम्पादित करते समय गाये जाते हैं। ऐसा देखा जाता है कि मजदूरी का पेशा करने वाले लोग अपनी शारीरिक थकावट को दूर करने के लिए किसी काम को करते समय गाना भी गाते जाते हैं। इससे उस कार्य को करने में मन लगा रहता है और परिश्रम का पता भी नहीं चलता।"[2] डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित जी ने भी श्रम–गीत के सम्बन्ध में लिखा है – "लोकमानस परिश्रम के क्षणों में जिन गीतों का अवलम्ब लेकर अपने श्रम का परिहार करता है, श्रमगीत कहलाते हैं। भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ का किसान खेतों को बोते, फसल निराते–

काटते यानी हर समय प्रायः कुछ रुचिकर गीत गाता रहता है। पहले स्त्रियाँ घरों में जाँत चलाते, अनाज पीसते-कूटते गीतों का सहारा लेकर अपने परिश्रम पूर्ण कार्य को सरस और सुखद बना लेती थीं। ऐसे गीत श्रमगीत कहलाते थे।"[3] श्रम गीतों का मुख्य ध्येय श्रम के द्वारा उत्पन्न होने वाली थकान एवं नीरसता को दूर करना होता है। श्रम करते समय स्त्री पुरुष इन गीतों की लय एवं भावभूमि में लीन हो जाते हैं, जिससे श्रम के कारण जो मानसिक, शारीरिक तनाव उत्पन्न होता है, वह अनुभव नहीं होता।

अवधी और मणिपुरी समाज में प्रधान प्रचलित कार्य कृषि ही है। कृषिकार्य सम्बन्धी विभिन्न गीत दोनों क्षेत्र में प्राप्त होते हैं।

अवधी श्रमगीतों की परम्परा के सम्बन्ध में डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित कहते हैं कि "अवधी भाषा में श्रमगीतों की एक अत्यंत समृद्ध और लम्बी परम्परा है। इनके उद्‌भव का प्रामाणिक इतिहास तो प्रस्तुत कर पाना सहज नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ये श्रम-गीत मुगल शासनकाल से आज तक बराबर लोकप्रिय यानी गतिशील हैं। चूँकि कुछ गीतों में मिर्जा तुर्क और 'मुगल के छोकरे' का उल्लेख एक साथ हुआ है, साथ ही 'मोरंग देश पाटन' जैसे स्थानों का सन्दर्भ आया है, इसीलिए इन गीतों को मध्ययुगीन भारतीय इतिहास से जोड़ा जा सकता है।"[4]

अवधी क्षेत्र में श्रमगीतों के कई प्रकार देखने को मिलते हैं, किन्तु उनमें प्रमुख है - (1) जंतसार (चक्की चलाकर अनाज पीसती हुई स्त्रियों के गीत) (2) रोपनी, (धान की पौध रोपती हुई स्त्रियों के गीत) (3) निरवाही (खेत में घास-फूस बीनती हुई स्त्रियों के गीत) (4) कटनी (फसल काटती स्त्रियों-पुरुषों के गीत) (5) चरखा गीत आदि। इनमें चरखा के गीत आधुनिक गीत है। जँतसार और चरखा गीत एकल हैं, शेष सब सामुदायिक हैं। मणिपुर के जन-जीवन में भी अवधी क्षेत्र की भाँति ही श्रम के गीत मिलते हैं और मणिपुरी भाषा में श्रमगीत को 'शिनशु शिम्बाङ इशै' कहते हैं। इस अध्याय के अंतर्गत अवधी मणिपुरी श्रम सम्बन्धी गीतों के स्त्री स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

4.1.1 जँतसार :

आटा पीसने की चक्की को अवधी क्षेत्र में जाँत अथवा जाँता कहते हैं। चक्की पीसते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'जँतसार' कहा जाता है। ये गीत अनाज पीसने की थकावट दूर करने के लिए गाए जाते हैं। जँतसार के गीतों में स्त्रियों की मानसिक वेदना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण रहता है। "जाँत के गीतों में करुण रस का अपार पारावार तरंगित दृष्टिगोचर होता है। इन गीतों में कहीं तो दुःखिनी विधवा स्त्री का करुण क्रन्दन सुनने को मिलता है तो कहीं किसी वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना अभिव्यंजित होती है। कहीं किसी विरहिणी स्त्री की वियोग व्यथा का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा वधू को दी गई नारकीय यंत्रणा का चित्रण। करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग हो सकते हैं, प्रायः उन सभी की अवतारणा इन गीतों में हुई है। पुत्रहीन विधवा स्त्री की मनोव्यथा का कारुणिक वर्णन जँतसार के अनेक गीतों में उपलब्ध होता है जो पाषाण हृदय को भी पिघला देने की शक्ति रखता है। इस प्रकार जाँत के गीत बड़े ही कारुणिक, मनमोहक तथा हृदय-द्रावक हैं।"[5]

भारतीय ग्रामीण जीवन में चक्की का विशेष महत्व है। चक्की चलाना ग्रामीण स्त्रियों का दैनिक कार्य है। ग्रामीण स्त्रियाँ चक्की पीसते समय जिन गीतों को गाती हैं, उनमें जीवन का सम्पूर्ण सुख-दुःख, मन की समस्त आशा रहती है। "मशीनों के प्रसार के फलस्वरूप अब चक्की चलाने तथा पीसने की कला लुप्त होती जा रही है। निःसंदेह इस व्याघात का परोक्ष प्रभाव लोक-गीतों पर भी पड़ता है। धीरे-धीरे तत्सम्बन्धी लोकगीतों का भी लोप होता जा रहा है।"[6] हाथ की चक्की का काम अब धीरे-धीरे ग्रामीण में भी मशीन की चक्की ले रही है। इसके सम्बन्ध में डॉ. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि "मशीन हमारे जाँतों को तो फोड़ ही रही है, वे जाँत के गीतों को भी पीस रही है। इसे तो व्यक्तिगत हानि नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हानि कहना चाहिए, क्योंकि गीत हमारे घरों में सच्चरित्रता की रक्षक, स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्रोत थे। उनका नाश होना वैसा ही शोकजनक है, जैसा घोर वन में पगडंडी का छूट जाना या घोर अंधकार में हाथ से दीपक का छिन जाना। वह दिन निकट ही हैं, जब चरखे के लिए आज जैसा देशव्यापी आन्दोलन चल रहा है, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक प्रबल, आन्दोलन चक्की की रक्षा के लिए करना पड़ेगा।"[7]

"अवध में प्रायः आटा पीसने का काम स्त्रियों के जिम्मे होता है, यह काम बहुत ही श्रमसाध्य होता है। जो स्त्री जाँत से आटा पीसने का काम करती है वह पसीने से तर-बतर हो

जाती है, तथा समय भी बहुत लगता है। अवध के गाँवों में प्रायः रात्रि चार बजे से ही चक्की चलाने की घुरूर-घुरूर आवाज आज भी सुनी जा सकती है। आज इस वैज्ञानिक युग में भी लगभग दस प्रतिशत घरों में स्त्रियाँ जाँत चलाकर आटा तैयार करती हैं। कालक्षेपनार्थ तथा श्रमपरिहारार्थ स्त्रियाँ गीत अवश्य गाती हैं। ये गीत करुण रस से ओत-प्रोत होते हैं।"[8] जँतसार गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें कोई स्त्री चकिया पर गेहूँ पीस रही है। गर्मी का मौसम है या फिर अधिक श्रम के कारण उसे अधिक पसीना आ रहा है। पत्नी की परेशानी पति से नहीं देखी गई और वह आड़ में खड़ा होकर अपनी पत्नी को पंखा झलता है। पंखा झलते हुए माँ अपने बेटे को देख लेती है और उसके उपरान्त उसके मन में जो प्रतिक्रिया होती है, जैसे -

"चकिया पिसत मोहे गर्मी लगत है, टप टप चुहत पसीना हो रामा
खिड़की के ओटे स्वामी बेनिया डोलावै, पड़िगै है सासु की नजरिया हो राम
मूड़ मूड़ कइके सासु जो पहुड़ी, मोरे पूता सिर मा दरदिया हो रामा
ले ओ न मइया मोरी दुबिया इलायची, लै आओ धना का करे जवा हो रामा।"[9]

एक अन्य गीत में कोई नवेली दुल्हन जाँत चला रही है। उसका भाई उससे मिलने आया है। सास के डर से वह जाँत पीसना बन्द नहीं कर सकती है, उधर भाई से मिलने की उत्कण्ठा उसे विह्वल कर रही है, अन्ततः वह चलनी के गेहूँ से ही जल्दी समाप्त हो जाने की याचना करती है जिससे अपने भाई से मिल सके। वह भाई से मिलती है। अपने अन्तस की वेदना भाई से कहती है -

"अरे हाली-हाली चुकउ चलनी के गेहुँआ रे ना।
मोरा भइया मिलनवा का ठाड़ा रेना।
कै मन कूटौं भइया, कइ मन पीसौं रे ना।
भइया कइ मन रीधौं रसइयाँ रे ना।
सासू पनियाँ पताल से भरावैं रे ना।
सासू खाँची भर बसनाँ मँजावैं रे ना।"[10]

अवध के जँतसार गीत में सास के अत्याचारों का मार्मिक वर्णन है। बहू के हृदय की पीड़ा जैसे मूर्तिमन्त हो उठती है -

"पुरवै देसवा से आवैं दुइ छलिकवा हो ना,
अरे, एक साँवर एक गोर हो ना।
सँवरकू तो अहैं हमारी मोइ जी के पुतवा होना,
अउर गोरकू तौ ननद जी के भइया हो ना।।१।।
मचियहि बइठी सासू बढ़इतिनि हो ना,
सासू, काउ हमरे भइया जेउनरवा हो ना?
कुड़वहि बाटिन बहुअरि, सरली कोदइया हो ना,
बहुअरि, खेतावै चकवड़ी कै सगवा हो ना।।२।।
अगिया लगावै सासू सरली कोदइया हो ना,
सासू, बजर परै चकवड़ि सगवा हो ना।
कोठवहि बाटे सासू, मोतीसिर चउरा हो ना,
कुड़वा रहरिया का दलिया हो ना।
सासू उहै मोरे भइया जेउनरवा हो ना।।३।।
जेवन बइठे सार बहनोइया हो ना,
अरे, भइया नैना दुरत बाय अँसुइया हो ना।
किआ तोहे भइया अनधन थोरवा हो ना,
भइया, किअ हो बहुआ कुछ काहिनि हो ना?।।४।।
नाहीं हमैं बहिनी अनघन थोरवा हो ना,
बाहिनी, नाहिं हो बहुआ कुछ काहिनि हो ना।
हमका त लिखा बहिनी बाबा चौपरिया हो ना,
बहिनी, तोहका क त बीरान देसवा हो ना ।।५।।
ई दुख जिनि कह्या भइया बाबा अगवा हो ना,
भइया, सोभवइ बइठि पछितइहैं हो ना।
ई दुख जिनि कह्या भइया माई के अगवा हो ना,
भइया, मचियहि बइठि रोइ मरिहैं हो ना।।६।।"[11]

"पूर्व प्रान्त से दो नवयुवक आये, जिनमें से एक साँवला और दूसरा गौरवर्ण का है। एक बहू कहती है कि साँवला तो मेरी माँ का पुत्र है और गोरा मेरी ननद जी का भाई है। बहू ने पूछा – सास जी ! हमारे भाई के लिए क्या भोजन बनना है? सास ने बताया – कूड़े में सड़ी कोदई

है और खेत में चकवड़ का साग है, वही भोजन बना दो। बहू ने क्रोधित होकर कहा – हे सास जी ! सड़ी कोदई में आग लगे और चकवड़ के साग पर वज्र पड़े। सासू, कोठे में मोतीसिर का चावल भरा रखा है और कूँड़े में अरहर की दाल रखी हुई है। वही मेरे भाई का भोजन है। साले–बहनोई भोजन करने बैठे तो बहू के भाई के नेत्रों से आँसू बहने लगे। यह देखकर बहिन ने पूछा– है भैया ! क्या तुम्हारे पास अन्न–धन की कमी है या कि बहू (भाभी) ने कुछ कहा है? भाई ने उत्तर दिया – हे बहिन जी ! न तो हमारे पास अन्न धन की कमी है और न ही बहू ने कुछ कहा है। मुझे तो इस बात का दुख है कि मुझे तो पिताजी की चौपाल लिखी है। (अर्थात् मेरे भाग्य में तो अपने ही घर में रहना लिखा है) किन्तु आपको तो बिराना देश (दूसरे का स्थान) यही दुख है। बहिन ने भाई को समझाया – यह दुख पिताजी के आगे मत कहना, नहीं तो वे सभा में बैठकर पछताएँगे। इस दुख को माताजी के सामने भी मत कहना, नहीं तो वे मचिया पर बैठी हुई रो–रोकर मर जाएँगी।"[12]

निम्नलिखित जँतसार में एक स्त्री की व्यथा चित्रित है, जिसका पति कमाने के लिए उसे छोड़कर परदेश जा रहा है –

"सबरे बिदेसिया बिदेसे जाये, कौड़ी के लोभन हो राम
राजा हम धना बारी बयसवा, जीयब हम कइसे हो राम
धना नैहर पठ्यू सनेसवा, बीरन के बोलाइ लिहू हो राम
धना गोदिया में लिहू भतिजवा, नगर घूमि आइउ हो राम
राजा जनहि जन्मी भौजिया, भतीज छोरी लेइहैं हो राम
राजा फटि जैहें बजर की छतिया करेज मोरा बिहरै हो राम।"[13]

एक अन्य गीत में बहन अपने भाई से अनुरोध करती है कि तुम मेरे कष्टों को मेरे माता–पिता से न कहना, भाई और भाभी से भी मत कहना क्योंकि इन्हें सुनकर बहुत दुख होगा। भैया, तुम इन दुखों को गठरी बाँधकर नदी के बीच में बहा देना–

"भइया इ दुख दिन कहयो,
माई के अगवा रे ना।
माई छतिया बिहरि मरि, जइहे रे ना।।
भइया इ दुख जिनि कहयो,

बाबा के अगवा रे ना।

बाबा सभवा बैठि, बाबा सेइहें रे ना।

इ दुख जिनि कहयो भइया

भौजी के अगवा रे ना।

भौजी दुइ चारि घर कहि अइहीं रे ना।।

इ दुख तुम भैया मन ही में रखेउ रे ना।

भैया करम लिख तस भोगब रे ना।।

सब दुख बांधेउ भइया अपनी मोटरिया रे ना।

भैया नदिया दिहा पौढ़ाई रे ना।।"[14]

प्रस्तुत गीत में स्त्री द्वारा ससुराल में सहे जाने वाले दुखों का हृदय-विदारक चित्रण किया गया है। पीड़ित बहन के हृदय से निकली व्यथा अथाह है। लेकिन स्वयं कष्ट भोगने वाली स्त्री यह नहीं चाहती कि भाई उसके कष्टों को उसके परिवारों से कहे क्योंकि वे लोग सहन नहीं कर पाएँगे, उनका प्राणांत हो जाएगा। परन्तु वह यह अवश्य चाहती है कि इन दुखों की गठरी गंगा में बहा दी जाए ताकि वे सदा के लिए खत्म हो जाएँ।

अवधी क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुरी समाज में जँतसार गीतों की संख्या नहीं के बराबर है, इसका कारण यह भी है कि मणिपुरी समाज के लोग चावल खाना अधिक पसन्द करते हैं इसीलिए इसकी जगह वहाँ धान कूटने की गीतों का प्रचलन है। मणिपुरी भाषा में इसे 'फौशु इशै' कहते हैं। मणिपुर में धान को कूटकर चावल तैयार किया जाता था। स्त्रियाँ प्रायः शाम के समय धान कूटने का काम करती थीं। धान कूटते समय गीत गाती थीं। इन गीतों में जीवन का सम्पूर्ण सुख-दुख, मन की समस्त आशा रहती है। संध्या एवं प्रायःकाल घर से उठती स्वर लहरी वातावरण को अनुपम स्वरूप प्रदान करती थी। एक धान कूटने का गीत द्रष्टव्य है -

"ह्युम या-नबा थौदाङ्कोक

शीङ चह्लकउ चतख्रगा

फौबु पुरकपा या-नबा

नङ्ना चाकपु हायरगा

फौगाक चजीक नमथिबा

चाकपु शाना पीजगे।

नङ्ना येनशाङ हायरगा
लफु येन्दम थुमन्मदबीना
येनशाङ्बु शाना पीजगे।
नङ्ना ङाबु हायरगा
खोङ्बान्दगी ङाचन्का
ङाबु शाना पीजगे।
फाकलाङ लैबाक ओइनम्बा
थुमबु शाना पीजगे।"[15]

यह गीत युवतियाँ धान कूटते समय गाती हैं। इस गीत का भावार्थ यह है कि अगर धान नहीं हो तो धान कूटना नहीं पड़ेगा और फिर थकान भी नहीं होगी। किसान ने धान लाये हैं अतः उन्हें ही धान कूटना चाहिए। यह किसानों द्वारा युवतियों को कष्ट देने की साजिश है। युवतियाँ यह गीत किसानों को शत्रु के रूप में देखने की मुद्रा बनाकर गाती है।

निम्नांकित गीत धान-कूटते समय गाया जाता है -

"हा ईमा-ईमाओ।
ऐसु लाके ईमाओ।
नोङ चुई लाक्नु
छातिन तूपतुना मराक्के,
लंबेल नाल्लि लाकनु,
चैशु शुदना मराक्के,
ऐना हयें चाओरगा,
चाओर यांगोल फारगा
शनजेंथोंगी थोङ्याइदा शामुथक्ता तोंबदा।"[16]

अर्थात् हे माँ, ओ माँ ! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। माँ घर से बाहर जा रही है बहुत बारिश हो रही है। बारिश के कारण मार्ग फिसलनभरा है। अतः माँ बच्चे से उसके साथ न जाने को कहती है किन्तु बच्चा कहता है कि माँ मैं बारिश से बचने के लिए छतरी और फिसलन से बचने के लिए छड़ी हाथ में ले लूँगा। मैं जब बड़ा हो जाऊँगा तो शनजेंथोंग (पुल) के बीच हाथी पर बैठकर निकलूँगा।

यह गीत संवाद शैली में गाया जाता है। यह गीत माँ बच्चे की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। माँ बच्चे को भावी कष्ट से दूर रखना चाहती है और बच्चा माँ के साथ जाने का हठ करता है। बच्चे की मन की कल्पना भी कितनी भव्य है कि वह बड़ा होने पर हाथी पर सवार होकर जाएगा। कल्पना का अतिरेक लोकगीतों की विशिष्टता है।

4.1.2 रोपनी गीत :

धान को खेत में रोपते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'रोपनी गीत' कहते हैं। "आषाढ़ में धान के बीज बोये जाते हैं। बड़े होने पर शुभ-मुहूर्त्त पर उस पौधे को उखाड़कर दूसरे खेतों में थोड़ी थोड़ी दूरी पर गाड़ते या रोपते हैं। इस समय गाये जानेवाले गीत 'रोपनी गीत' कहलाते हैं।"[17] धान की खेती के लिए 'रोपनी' विधि सबसे अच्छी मानी जाती है। धान रोपने का कार्य प्रायः स्त्रियाँ करती हैं। "रोपनी गीत कथानक युक्त होते हैं। ये कथाएँ प्रायः श्रृंगार-प्रधान होते हैं। कहीं उच्च वर्ण की स्त्री से किसी राजा का प्रेम सम्बन्ध, कहीं भावज-देवर का अनुचित सम्बन्ध, कहीं आदर्श पतिव्रता नारी का आत्म-बलिदान और कहीं ससुराल में मिले कष्ट का उल्लेख इन गीतों के माध्यम से वर्णित हुआ है। वे खेतों में झुके झुके पौधे बिठाती जाती हैं साथ ही स्वच्छन्द रूप से हरियाली एवं खेतों में भरे पानी को सहचरी मानकर अपनी व्यथा को गीतों के माध्यम से अन्तःकरण के बोझ को हल्का करती हैं। घर की चहारदीवारियों में इनको अपने मन की बात को व्यक्त करने का अवसर नहीं मिलता हैं। अतः ये खेतों पर ही अपने अन्तःकरण के द्वन्द्वों को मधुर स्वरों में गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं।"[18]

रोपनी कार्य अवध क्षेत्र के गाँवों में कम होता है। जब कि मणिपुर में ज्यादा, इसीलिए अवध क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुर में रोपनी के गीत अधिक गाये जाते हैं। "रोपनी का कार्य अवध के गीतों में कम होता है। रोपनी के समय भी गीत गाये जाते हैं। इस गीत में उस सामाजिक प्रथा का रूप परिलक्षित है जिसके अनुसार स्त्रियाँ एक सम्पत्ति मानी जाती थीं और जिनका द्रव्य के साथ विनिमय हो सकता था। कथा प्रसंग से यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्री का प्रेमी नटवा बनकर उसे ले जाने के लिए ही आता है और स्त्री बिना किसी विरोध के साथ चली जाती है।"[19] एक रोपनी गीत में बहू ससुराल में अपने प्रति हुए दुर्व्यवहारों को खेत रोपते समय गीत के माध्यम से गाकर अपने मन का बोझ हल्का करती है-

"गोबरा का खड़चा लैके निकरी जो बहिनी
भइया दुआरे है ठाढ़ रे
गोबरा का बोझ डारि लउटी जो बहिनी,
रोय–रोय भइया से भेटे हो राम
नइहर भइया मोरे छेम कुशल है,
नइहर का हाल सुनाओ हो राम
नइहर बहिनी बही कुशल है,
बहिनी कुशल लेन हम आये हो राम
बहिनी कुसल लेन हम आयन हो राम
चाँद सूरज अइसी बहिनी मैं बेहयों
जरि जरि भइ है कोयलिया हो राम।"[20]

प्रस्तुत गीत में ससुराल वालों की बहू के प्रति निर्दयता प्रकट होती है। इस गीत की प्रत्येक पंक्ति स्त्री की व्यथा को प्रकट करती है।

एक अन्य गीत में समाज की उस विवाह प्रथा की कुछ कठिनाइयों के प्रति भी संकेत है, जिनके अनुसार स्त्री का जीवन–साथी एकांगी रूप से माता–पिता के द्वारा ही चुना जाता है। कन्या की रुचि का तनिक भी स्थान उसमें नहीं होता–

"गलिया बेगलिया घूमें नटौवा, कौइ सखी गोदना गोदावे हरी।
भितरा से निकसी हैं लहुरी ननदिया, मोरी भौजी गोदना–गोदावें रे सखी।
का तू लेहहो नटवा गोदना कै गोदौनी मोरे भौजी गोदना गोदावें रे सखी।
कि तो लेओ नटवा अन धन सोनवा, कि तो तेओ सेर भर साना–कोदौं ।।
नाहीं लेवे ननदी तोरे सामा–कोदावां, नाहीं लेवे तोर सोनवा।
हम तो लैवे भौजी तुमरी रे ननदिया।
हर जोति आये कुदरिया गोड़ि आये, बैठे हैं मथवा नचाये वीरन भैया।
उठो भईया पनिया तो पील्यो आय,
किहि कारण तुम भयो नाराज भयो वीरन भइया।
भैया जो देखी, बहिनिया जो देखी, धनिया नजरिया नाहीं आवे मोहे बहिनी।
धनिया तो तोरे मोरे गोदना गोदाइन, चली गई नटुवा के साथ वीरन भइया।
देउ न वहिनी हमका डलभर सोनवा, धनिया हेरन हम जाव मोरी बहिनी।

एक कोस गये भइया, दुई कोस गये, तिसरे में मिलगा नटुआ क डेरा।
लेउ न नटवा आपन डलभर सोना, फेरी देउ धनिया हमार रे नटुआ।
अगिया लगाऊँ तोरे डलभर सोनवा म,
अब तो नाहीं फिरिहैं बहू तोहार वीरन भईया।
अब तो भइं धनिया हमार वीरन भईया।"[21]

समाज में बहुत से पुरुष ऐसे भी होते हैं जो अपनी पत्नी से तो प्रेम नहीं करते, किन्तु किसी वेश्या या अन्य स्त्री से प्रेम करते हैं। इससे पत्नी में असंतोष होना स्वाभाविक बात है। कभी-कभी वह इसकी अभिव्यक्ति बड़े उग्र रूप में करती है। प्रस्तुत गीत में दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया गया है -

"जलिमा दुवारे रामा पाँच पेड़ निमिया हो ना।
रामा, निमिया कै सितली बयरिया हो ना।।१।।
एकइ बल सूते जलिमा सिपहिया हो ना।
रामा, एक ओरी चतुरी पतुरिया हो ना।।२।।
वाहे चल वाहे चल जलिमा सिपहिया हो ना।
एतनी वचन सुनि जलिमा सिपहिया हो ना।
घोड़े भये असरवा हो ना।।३।।
माया धरे अटुकी, बहिन सिर चादरि हो ना।
रामा, धना धरे घोड़े कै लगमिया हो ना।।४।।
. . . ."[22]

निम्नलिखित गीत में घरेलू समस्याओं का चित्रण हुआ है -

"मचिया बैठी सासु जी काहे अढ़वतिउ
हौ तो सासू पनिया लेन जाइत।
कइसे तू जइहौं बउहर पनिया कै खातिर
सासू की कहनी बहुवर मनबो न करै
चली गयी पानी भरै कँड़या के घाट।"[23]

रोपनी गीतों में कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं जिनमें पति-पत्नी हर्षपूर्वक खेतों में काम करते चित्रित हुए है। एक गीत द्रष्टव्य है -

"मुड़ै साफा बाधे किसनवाँ
धना हाथै हसियाँ लीन्हैं राम
आगे आगे धना पाछे किसनवाँ
कमवाँ का जायै खेतवा राम
हो कमवाँ का जाये खेतवा राम।"[24]

प्रस्तुत गीत में किसान खेत में काम करने जा रहे हैं। इस काम में हर्ष और उल्लास अपनी चरम सीमा पर प्रकट हो रहा है।

धान रोपते समय अवध की श्रमिक स्त्रियों द्वारा गाए जानेवाले एक गीत में अभावग्रस्त, कष्टमय जीवन का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

"जहिया से आयों पिया तोहरी महलिया,
रतिया दिनवा करौ टहलिया रे पियवा।
देहियां झरानी मोरी करति टहलिया,
सपना में सुख कै सपनवां रे पियवा।
बखरी कै हरा तुहै जोत्या राति दिनवा,
तबहूं न भरपेट भोजनिया हे पियवा।
चिपरी पाथत मोरी अंगुरी खियानी,
तबहूं न तन पै कपड़वा रे पियवा।"[25]

प्रस्तुत गीत में खेत में धान रोपते समय स्त्री अपने पति से कहती है कि जिस दिन से मैं तुम्हारे घर आई हूँ, उसी दिन से दूसरों की सेवा कर रही हूँ। मेरा शरीर दूसरों का काम करते–करते सूख गया है। मैं तो स्वप्न में ही सुख देखती हूँ। आप तो बखरी अर्थात् जमींदार के खेत में दिन रात हल जोतते रहते हैं, फिर भी हमारा पेट नहीं भरता। गोबर की चिपरी पाथते–पाथते मेरी अंगुलियाँ घिस गई हैं फिर भी मेरे शरीर पर साबुत वस्त्र नहीं है। इस गीत में गाँवों के गरीब व शोषित किसानों के कष्टमय जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है।

मणिपुर में रोपनी के समय श्रम परिहार के लिए गीत गाये जाते हैं। इन गीतों का मुख्य ध्येय मनोरंजन के द्वारा श्रम–कार्य के प्रति उत्साह पैदा करना होता है क्योंकि इन गीतों के कारण उनका अवधान श्रम में केन्द्रित नहीं हो पाता और वे अपने कार्य को यन्त्रवत करते चले जाते हैं।

मणिपुरी रोपनी गीतों में भिन्न-भिन्न प्रसंग होते हैं। किसी गीत में भाई-बहिन का प्रगाढ़ प्रेम, किसी में स्त्री-पुरुष के प्रेम प्रसंग तो किसी में स्त्री के पवित्र तथा आदर्श सतीत्व का चित्रण मिलता है।

मणिपुर का एक प्रसिद्ध रोपनी गीत द्रष्टव्य है -

"ङसिना नोङ्लेन हा नेङ्जादा हा
हायनरिबा लमदमने हा
शोन्नरिबा हा लाईगैने हा
माना कैदा हा हेनबनो हा
ऐनगा कैदा हा हेनबनो हा
शकमान्नबा हा ङाकतने हा
लेङ्मानबा हा ङाक्तने हा
हान्नखेला हा मखोइसू हा
कोइरो अङान्वा हा वाङ्लकले हा
चीङ्गी चीङ्गा हा तम्लक्ले हा
नुरागी थम्बाल हा मानबीखाइ हा
लैराङ्बीगुम हा लेङ्लकउ हा
लैराङ्बीगुम हा खल्लकउ हा
खकमान्नबा हा ङाक्तने होई
है-हा-हे-है-है-हा।"[26]

इस गीत में एक मुख्य गायिका होती है, जो खेतों के चारों तरफ घूम-घूमकर गीत गाती है। खेत में काम कर रहे अन्य लोग गाने में उसका साथ देते हैं। मुख्य गायिका को गाने के पैसे दिये जाते हैं। कभी-कभी वह खेतों में लोगों के साथ श्रम में सहयोग भी देती है।

खेतों में काम करते समय एक विरहिणी स्त्री अपने प्रियतम को याद कर कहती है -

"साबी इबुङो नुङशिबा
थंलेन मानजा पामुबा
नुङसि नसुङ लाङगिनी,

कल्लक मायोक याबदा
नुजा थौदाङ ओड़जगे
वाड़ कौबगा हाड़जरोड़
ङमदे कौबगा सोनजरोड़
पामु नहाक थक्कीनि।"[27]

इस गीत में एक विरहिणी स्त्री कहती है कि मेरे स्वामी ! मेरे प्रियतम ! मैं तुम्हारे लिए सब दुख सहन कर सकती हूँ। मैं तुमसे कभी यह नहीं कहूँगी कि – मैं दुखी हूँ, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी। वियोगिनी की व्यथा देखिए कि वह प्रवासी प्रियतम को आर्थिक विषमताओं के चलते लौट आने का अनुरोध भी नहीं कर सकती। मात्र इतना कहकर संतोष कर लेती है कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी।

4.1.3 निरवाही गीत :

आषाढ़ में बोयी गई फसल जब ठीक से जड़ें जमा लेती है, तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे पौधों को उखाड़कर फेंक दिया जाता है। इस काम को 'निरवाही' या 'सोहनी' कहते हैं। इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं, उन्हें निरवाही या सोहनी गीत कहते हैं। कृष्णदेव उपाध्याय ने निरवाही के सम्बन्ध में लिखा है – "खेतों में व्यर्थ की घास और पौधे जो पैदा हो जाते हैं उन्हें काटकर अलग कर देने को 'सोहनी' अथवा 'निरौनी' कहा जाता है। इन्हें अवधी प्रदेश में 'निरवाही' के गीत कहते हैं।"[28] सूर्यप्रसाद दीक्षित के अनुसार "खेतों में धान के हरितांकुरों के साथ उच्छिष्ट घासफूस भी उग जाती है। उन्हें निकालना 'निरवाही' या 'निरौनी' कहलाता है। यह कार्य प्रायः कृषक बालायें ही करती है।"[29] सरोजनी रोहतगी ने भी निरवाही के सम्बन्ध में लिखा है – "आषाढ़ के बोये हुए खेत जब भलीभाँति जम जाते हैं तब किसान सावन में खेत की घास और निरर्थक पौधों को निकालकर फेंक देते हैं। इस कार्य को 'निराना' कहते हैं तथा इस समय गाए गए गीतों को 'निरवाही' गीत कहते हैं। यह कार्य प्रायः कृषक मजदूरों की स्त्रियों द्वारा किया जाता है।"[30] अतः खेतों की निराई–गुड़ाई को निरवाही कहा जाता है। स्त्रियाँ निराई का काम करती हुई थकावट दूर करने के लिए निरवाही गीत गाती जाती है। इन गीतों में प्रायः कोई संक्षिप्त कथानक होता है। यही कारण है कि ये गीत अन्य गीतों की अपेक्षा बड़े होते

हैं। इन गीतों में स्त्री जीवन की करुण–गाथा होती है। इनका कथानक मुगलों का अत्याचार, अबला का उद्धार, घरेलू लड़ाई–झगड़े, अत्याचार, पति–पत्नी के आचरण और अविश्वास, अग्नि–परीक्षा, सतीत्व और सौतियाडाह आदि हृदय विदारक प्रसंग होते हैं।

अवधी प्रदेश में सोहनी को 'निरवाही' गीत कहा जाता है। ये गीत बड़े लम्बे होते हैं जिनका वर्ण्य विषय प्रधानतया शृंगार होता है। लोक–गाथाओं की भाँति इनके भीतर कोई न कोई कथानक अनुस्यूत रहता है। स्त्रियाँ खेतों में से अनावश्यक और फसल के लिए हानिकारक खर–पतवार को निकालते समय इन गीतों के द्वारा अपने हृदय की कसक को भी निकालने का प्रयास करती है। अवधी क्षेत्र में गाये जानेवाला एक निरवाही गीत उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है जिसमें ससुराल में दुख झेलती हुई बहन की भावना चित्रित है–

"उड़त मैं देख्यो प्रेम चिरैया रे ना
रामा उड़ि के बइठै सरसों डारिया रे ना
आवत देखेउँ दुइ रे सिपाहिया रे ना
रामा एक रे गोर एक साँवर रे ना
गोरहर हये मोरी मैया के दुलरुआ रे ना
रामा, सँवरे ननदजी के बिरना रे ना।"[31]

प्राचीन काल में राज्यसत्ता, सामंतशाही द्वारा स्त्रियों पर कितना अत्याचार करते थे इसका उल्लेख लोकगीतों में पाया जाता है। राजाओं के लिए दूसरों की बहू तथा बेटियों की कोई इज्जत नहीं थी। एक निरवाही गीत में किसी राजा के लड़के का लाची नामक स्त्री पर मोहित हो जाना और कुटनी के द्वारा उसे तालाब पर नहाने के लिए बुलाना वर्णित है –

"छबइ महीनया कर लाची कइ उमिरिया हो ना।
लाची झझरिउ लेयथी बयरिआ हो ना।।१।।
घोड़वा चढ़ी एक आया राज पुतवर हो ना।
रामा लचिअउ पर परिगइ नजरिआ हो ना।।२।।
अँजुरी भत रूपिया तुहैं देबइ दूंती ही ना।
दूती लचिअउ का सगरे लिअउतिउ हो ना।।३।।
सभवा बइठ मोरा बपइ बढ़ाइले हो ना।
बपइ कहतेउँ नहउने का आवइ हो ना।।४।।

वोही सगरवा बेटी राजा हरमजदवा हो ना।
बेटी गड़लिउ तिरिअवा नाहीं आवे हो ना।।५।।"[32]

एक अन्य गीत में बहू के द्वारा अपनी सास से किसी हाथी वाले की निन्दा वर्णित है–

"भोर भयेल भिनसरवा मैं पानी भरइ निसरेयों ना।
सासु हथिनी चढ़ल हाथीवलवा, हमइ देखे बिहसइ ना।।
इससे अहइ उनकइ हथिनी, कइसे हउद लागे ना।
बउहरि कवने बरन हाथीवलवा, तुहइ देखे बिहसइ ना।।
काली अहइ उनकइ हथिनी, तउ लाली हउद लागी ना।
सासु सँवरे बरन हाथीवलवा, हमइ देखे विहसइ ना।।
हथिनी तउ अहइ ससुर जी कइ, हउद जेठ जी कइ ना।।
बउहरि सँवरे बरन कन्ता (न्था) तोरा, तुहइ देखे बिहसइ ना।।"[33]

इस गीत में बहू अपनी सास से कहती है कि जब प्रातःकाल होने पर जब मैं पानी भरने के लिए घर से बाहर निकलती हूँ महावत हमको देखकर विहँसने लगता है। सास ने पूछा कि उसकी हथिनी कैसी है और उस पर हौदा कैसा लगा हुआ है? वह हाथी वाला किस रंग का था जो तुम्हें देखकर विहँसता है। बहू ने उत्तर दिया – उसकी हथिनी काली है और उस पर लाल हौदा लगा हुआ है। वह हाथी वाला साँवले रंग का है। सास ने कहा – हथिनी तुम्हारे ससुर की है और हौदा तुम्हारे जेठ का है और साँवले रंग वाला तुम्हारा पति है जो तुम्हें देखकर विहँसता है।

लोकगीतों में ऐसे अनेक गीत मिलते हैं जिसमें सौतों के कारण गृह कलह का बड़ा ही बीभत्स दृश्य चित्रित किया गया है। निम्नलिखित गीत में दो सौतों के आपस में लड़ने–झगड़ने के कारण पति का दुखी होकर पश्चाताप करना वर्णित है। गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"बिहुई अउ उढ़री करइ झोंटा–झोंटी हो ना।
रामा राजा ड़ेहरी बइठ के झँखइँ हो ना।
रामा कउनीक मारउ केका गरिआवउँ हो ना,
अउ केका करउँ घर टिकइतिनि हो ना,

रामा उढ़री क करउँ घर टिकइतिनि हो ना।
सिंकिअइ चिरि चिरि नइआ बनावइ हो ना,
अब उढ़री बुढ़इ मझधारवा हो ना।
वोही कइ धरम मनउतेआ रजऊ हो ना,
अब हमहूँ उतरि जाइति परवा हो ना।"[34]

इस गीत में बहु-विवाह का उल्लेख पाया जाता है। दोनों सौतों का झोंटा पकड़ कर आपस में लड़ने का भयंकर दृश्य प्रस्तुत किया गया है। सौतें आपस में एक दूसरे को फूटी नजर से भी नहीं देखना चाहती। यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'चून (आटे) की सौत भी अच्छी नहीं लगती।' फिर यदि सौत कोई साकार स्त्री हो तो फिर क्या कहना है? सौतिया डाह बहुत बुरी चीज होती है। यह गीत समाज में व्याप्त बहुपत्नी विवाह और उससे उत्पन्न पारिवारिक परिस्थितियों पर टिप्पणी करता है।

एक अन्य गीत में पत्नी की एक तुच्छ बात पर पति रुष्ट हो जाता है और वेश्या से दूसरा विवाह करने की धमकी कर देता है लेकिन पत्नी उसका मुँहतोड़ जबाब देती है-

"पाँच पेड़ निमियाँ कइ जालिमा लगाइ रे ना
रामा जुड़ि जुड़ि आवाथा बयरिया रे ना।
निमिया कटाइ जालिमा सलावे पलगिया रे ना
रामा रेसमइ लगावे ओरदाओना रे ना।
सँकरीन पलंगिया रामा टुइ सूतवइया रे ना,
रामा चोली बन्दा भीजेया पसीनवारे ना।
अतनी बचन सुनि जालिमा सिपहिया रे ना,
रामा छोड़े पीठि भए असवरवा रे ना।
. . . . ."[35]

इस गीत के अन्त में पति ने अपनी पत्नी से कहा - ए रानी ! मैं नौकरी करूँगा और वेश्या से विवाह करूँगा। तुम्हारी जैसी नौकरानी रखूँगा। इस पर उस गर्वीली तथा मनस्विनी स्त्री ने उत्तर दिया - ए राजा ! मैं चरखा कातूँगी और तुम्हारे जैसे मर्द को अपना हरवाहा बनाकर नौकर के रूप में रखूँगी। यहाँ पर अपनी सुरक्षित सामाजिक स्थिति के कारण निर्भीक और निःसंशया स्त्री का आत्मविश्वास प्रकट होता है। विवाह जैसी सामाजिक संस्था जिससे उसे

विवाहित पत्नी का स्तर प्रदान किया है उसकी ठोस भूमि पर खड़ी होकर वह इतनी निर्भीकता से कह पा रही है कि वह पति को नौकर रख लेगी। वस्तुतः इस तरह के गीतों में पितृसत्ताक वर्चस्ववादी सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति व्यंग्य के द्वारा होती दीखती है।

प्राचीन भारत में स्त्रियों की सतीत्व-परीक्षा के लिए अनेक प्रथायें प्रचलित थी जिन्हें 'दिव्य' कहा जाता था। "ये दिव्य बड़े ही क्रूर तथा कठोर हुआ करते थे। जैसे दहकती हुई तेल की कड़ाही में हाथ डालना, घड़े में सर्प को रखकर उसे हाथ से पकड़ना, जलती हुई आग में अपराधी को बिठा लेना, नदी के प्रवाह में उसे फेंक देना आदि। राम के द्वारा सीता की अग्नि-परीक्षा तो प्रसिद्ध ही है।"[36] लोकगीतों में 'दिव्य' का उल्लेख पाया जाता है। वह केवल स्त्रियों के लिए ही है और वह भी केवल उनके सतीत्व की शुद्धता की परीक्षा के लिए। यद्यपि पुरुषों ने भी वैसा ही अपराध किया परन्तु उनके द्वारा दिव्य प्रयोग का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। लोकगीतों में समस्त जनता के सामने विशेषकर स्त्री के सम्बन्धित भाई एवं पिता के समक्ष दिव्य देने का वर्णन पाया जाता है। एक गीत में भाई के द्वारा दिए गए गले के हार को देखकर उस स्त्री के चरित्र पर व्यर्थ में सन्देह करके ससुरालवालों के द्वारा उसकी अग्निपरीक्षा ली जाती है और उस परीक्षा में उसका चरित्र निष्कलंक प्रमाणित होता है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत है -

"मोरे पिछुअरवा तेलिया बेतउना हो न।
मोरे नइहरे माँ खबर जनउतेआ हो न।
आगे-आगे आवइँ नउवा अरू बरिआ हो न।
रामा पाछावा भइया असवरवा हो न।
एक औरे बइठइँ मोरे ससुरे के लोगवा हो न।
रामा एक ओरिआ विरना अकेलवा हो न।।"[37]

बहिन की अग्नि परीक्षा की खबर सुनकर भाई अपनी बहिन के पास आया। भाई ने अपनी बहिन से कहा - ए बहिन ! यदि तुम इस अग्नि परीक्षा में हार जाओगी तो मैं लज्जा के मारे इस देश को छोड़कर दूर चला जाऊँगा। परन्तु यदि तुम इस परीक्षा में जीत गई तो तुम्हें पालकी में बिठाकर अपने घर ले जाऊँगा। बहिन उस अग्नि परीक्षा में जीत गई। उसका सतीत्व प्रमाणित हो गया। अतः पालकी में बैठकर वह मायके जा रही थी। अपने महल में बैठी हुई उसकी भावज ने उसे देखा। वह कहने लगी कि जीत कर मेरी ननद प्रसन्नता से चली आ रही है।

मणिपुर एक कृषि प्रधान राज्य है। खेती ही यहाँ के निवासियों की जीविका का मुख्य आधार है। धान यहाँ की मुख्य उपज है। वर्षा काल में प्रारम्भिक दिनों में जब धान के नए उगे पौधे बढ़ने लगते हैं तो उनके साथ-साथ कुछ खर-पतवार भी उग आते हैं, जो धान की खुराक में अपना हिस्सा भी बँटा लेते हैं। अतः ऐसे घास-पात के पौधों को निकालकर बाहर करना किसान के लिए आवश्यक हो जाता है। इस कार्य को मणिपुरी भाषा में 'लौ पेङबा' कहते हैं। इस कार्य को करते समय जो गीत गाए जाते हैं वे 'खुतलङ इशै' कहते हैं। ये गीत अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं। इनमें संक्षिप्त रूप में कोई न कोई कथा अनुस्यूत होती है। इन्हें लोकगाथा की श्रेणी में रखा जाता है। 'खुतलङ इशै' केवल खेत में व्यर्थ घास और पौधे जो पैदा हो जाते हैं उन्हें निकालकर अलग करते समय में ही नहीं बल्कि प्रेम-प्रसंगों में भी प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच गाए जाते हैं। 'खुतलङ इशै' पहले बना-बनाया हुआ गीत नहीं है और न ही एक बार एक भाव में गाने में गानेवाला गीत है। यह प्रश्न-उत्तर पहेली या अपने मन की बातों को उभारनेवाला गीत है। एक 'खुतलङ इशै' द्रष्टव्य है -

लड़का : *"शाबी इबैम्मा नुंशिबी*
ईनेम्म मचा पाम्मुबी
तालोय सिंदा चन
लमलेन लादा येक
कोरौ शङ्बिुम यामलकले
लाकहै कुमशीङ कुइरकले
वागी फिगै शेङबीरो।
लैनुङचादि लुनाइदबी
खाम्बी मैचाक खाङमदा
मालेम याङदो खक्तुदा
ओन्न थोइना खाङबगुम
खाङजरक्पा नबुङनि।

लड़की : *हा करि पाओमेन कोइ हायबगे*
लैकाय तादबा काया तारकलगनि
कैरोय खङदबा काया खङलकलगनि
खाम्बि मैत्रेङ अराबा,

चरै फिना, कुप्पबु

वाङ्लेन काया कुड़गनि

कोरौ काया खाङ्गनि

पलेम पनथो नापदा

कोलोय याखङ शेंङ्मदा

पोम्बी माना पाड़रकपा

कनागी मतीक लैबगे।।"[38]

इस गीत में लड़का–लड़की का प्रेम–प्रसंग वर्णित है। लड़का कहता है कि हे प्रिय! उम्र काफी हो गई है। इंतजार कब तक करना है? अभी तुम सही–सही बताओ, कब इस इंतजार को खत्म करोगी? लड़की कहती है – जिसने अब तक नहीं सुना वे भी सुन लेंगे, जिसको अब तक खबर न थी उनको भी खबर हो जाएगी। जब तक माता–पिता की अनुमति न हो तब तक किस मैना की हिम्मत है उड़ने की . . .? यहाँ स्त्री को 'मैना' पक्षी का प्रतीक दिया गया है।

4.1.4 कटनी गीत :

धान की खेत में कटनी करते समय जो गीत गाये जाते हैं उसे कटनी गीत कहते हैं। आषाढ़ मास में जो धान खेतों में बोया जाता है वे अगहन में अर्थात् शीतऋतु में काटा जाता है तभी खेत–खलिहान समृद्ध होते हैं। घर–द्वार अनाज से भरते हैं। किसानों में उल्लास आ जाता है। खेत में कटनी करते समय स्त्रियाँ गीत की लय के साथ काम करती हैं।

इस समय जो धान काटा जाता है, उसका कुछ अंश कटनी के समय खेत में गिर जाता है, इसे 'सीला' कहते हैं। स्त्रियाँ इसे बीनती है और गाती है, जिसे 'सीला बीनने' का गीत कहते है।

अवध क्षेत्र और मणिपुर के कृषि सम्बन्धी अन्य गीतों में फसल काटने का उल्लेख मिलता है। अवधी क्षेत्रों में भी खेत में कटनी करते समय स्त्रियाँ गीत की लय के साथ–साथ कार्य करती है। इन गीतों की विषयवस्तु कुछ भी हो सकती है। एक कटनी गीत द्रष्टव्य है –

"खेतन म लागी कटनिया हो राम

माथे का झूमर झलाझल झलके

खनके कलइया फगनवा हो राम। खेतन।
मिली जुलि के सखिया लाहि बंधवाओ,
भरै चलो घर की बखरिया हो राम। खेतन. ।।
सासू ननदिया बाट हैरत हैं,
सइयाँ की साजी सेजरिया हो राम।खेतन।।"[39]

अवध के कटनी गीतों के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी गीत मिलते हैं जिसमें खेती किसानी के कार्यों की हर्षोल्लास के साथ चर्चा होती है। निम्नलिखित गीत में पति–पत्नी दोनों हर्षपूर्वक खेत पर धान काटने जा रहे हैं –

"छक छइका छक छइया चनो धनवा कटेरी
सजनियाँ मोरे खेतन में पकै पकै धान रे
आज भरी जइहैं रे घर की बखरिया
हाँ घर की बखरिया छक छइया, छक छइया
है मेहनत का धान हाँ मेहनत का धान
धरती का स्वर्ग मोरा छोटा सा गाँव
हाँ छोटा सा गाँव, मोरे हाथन में खनेक कगनियाँ
छक छइया . . . .।"[40]

धान काटने की उमंग गीत में मुखरित हो रही है। अच्छी फसल हमारे ग्रामीण जीवन की उमंगों का आधार है। खेत काटना, अन्न का घर आना प्रकारांतर से सुख–समृद्धि का आगमन है।

दरअसल लोकगीतों में स्त्री हृदय के सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। किसी गीत में श्रम करने में हर्ष तो किसी में विषाद की भावनाएँ भी मिलती हैं। यथा ऐसा ही एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें स्त्री खेत पर काम करने के प्रति अनिच्छा व्यक्त करती है क्योंकि यह पति मिलन का समय है ऐसे में उसे खेत पर हँसिया लेकर जाना सुहाता नहीं।

"झोकवा बहै पुरवइया, मोर अचरा उड़ा जाय
अरो मोर अचरा उड़ा जाय, हाँ मोर अचरा उड़ा जाय
गेहुँआ काटे हम न जइबै, हाथ माँ लइके हसियां
चाहे जायें सास ननदिया या ननदी के भइया

हो हम न जड़बै, हो हम न जड़बै, हो हम न जड़वै रे
झोकवा बहै . . . ।"[41]

गीत की पंक्तियों में युवती के विरोधात्मक स्वर स्पष्ट होते हैं। युवती स्वयं काम करने से मना करती है और कहती है कि सास, ननद या पति ही क्यों न काम करें, किन्तु मैं काम नहीं करूँगी।

एक अन्य कटनी गीत में विरहिणी की दशा अभिव्यक्त है –

"हाँ–हाँ मोरी सखी जेवना धरे कुम्हिलाय। सासू जी . . .
हो हाँ री मोरी सखी, गेड़ुवा भरवाये तुमरे पियन को,
मोर पनिया धरे कुम्हिलाय। सासू जी. . . .
हाँ–हाँ री मोरी सखी बिरिया लगाई तुम्हें जबावन को,
मोरी बिरिया धरी कुम्हिलाय। सासू जी . . .
हाँ हाँ री मोरी सखी, सेजिया लगाई तोरे सोवन को,
मोरी सेजिया परी कुम्हिलाय। सासू जी . . ."[42]

इस गीत में पति के परदेश जाने पर किसी भी काम में जी न लगने की विरहिणी दशा अभिव्यक्त है साथ ही ऐसी स्त्री की वेदना भी अभिव्यक्त है जो परतंत्रता का अनिच्छित जीवन जीने को अभिशप्त है। उसकी दृष्टि में दूसरे सभी सदस्य आराम से जीवन–जी रहे हैं – केवल वही अपनी यौवनेच्छा का दमन करके खेत में काम करने को विवश है।

मणिपुर में कटनी गीतों के साथ कई पौराणिक सन्दर्भ जुड़े हुए है। 'नोंमाइ काइनौ चींशोम्बा' नाम के एक देवता की पुत्री 'पानथोइबी' पृथ्वी पर धान काटने जाने के लिए हठ करती है और उस समय गाये जाने वाले गीत को 'पुया'[43] में 'लौतारोल'[44] कहते हैं। एक गीत इस प्रकार है –

"चींङु खोईयुम लाइयिंथोगी खालै मरौचाने याह्लोहे हो यानसे।
योइबू खोइमोल लारेम्बीगी खालै मरौचाने याह्लोहे हो यानसे।
इपा लौनि याह्लोहे
हो यानसे।"[45]

इस गीत का भावार्थ इतना ही है कि एक स्त्री खेत में धान काटने का आह्वान कर रही है और बाकी सब अनुगमन करते हुए 'हाँ चलो' दोहरा रहे हैं। ये गीत 'लाई हराओबा'[46] आदि धार्मिक कार्यों में गाए जाते हैं लेकिन लोक के बीच दूसरे तरह से यानी अपने मन से शब्द डालकर भी गाए जाते हैं।

अन्य कटनी गीत इस प्रकार है –

"केगेदा खुलंग मचाशिंग
समुना मीकोक तरानिथोड़ना
शङम ङम्मखै तानबसे
अवाबबु लैरोड़सी
केगेदा खुलंग मचाशिंग
मोइरांग खुलंग मचाशिंग
हे, है, है, हाई।"[47]

यह गीत बारह नौजवानों को परिश्रम से खेत पर काम करने का आह्वान गीत है जिसमें कहा गया है कि आज तुम थकान को अपने ऊपर हावी होने मत देना, क्योंकि तुम मोइरांग निवासी किसान पुत्र हो।

4.1.5 चरखा गीत :

चरखा चलाते समय गाये जानेवाले गीतों को 'चरखा गीत' कहते हैं। अंग्रेज़ों के भारत आने से पहले भारत भर में चरखों का प्रचलन था। चरखा हमारी श्रम-शक्ति का प्रतीक है। चरखे की इसी शक्ति और उपयोगिता को पहचानते हुए महात्मा गांधी ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया था। "पुराने समय में ग्रामों में प्रत्येक घर में चरखा हुआ करता था। विशेष कर ब्राह्मणों के घरों में, क्योंकि प्राचीन समय में ब्राह्मण लोग अपने हाथों से काते हुए सूत का पवित्र यज्ञोपवीत धारण करते थे। स्त्रियों के लिए चरखा जीविका का साधन भी था। विधवा अथवा जिन स्त्रियों के पति परदेश कार्यवश जाते थे वे चरखा कातकर समय तो काटती ही थी साथ ही वे जीविकोपार्जन भी करती थीं।"[48]

अवध और मणिपुर की स्त्रियों के लिए चरखा जीविका का साधन भी था। दोनों क्षेत्रों में चरखा चलाते समय स्त्रियाँ गीत गाती थीं। अवध के एक चरखा गीत में स्त्री का पति परदेश में गया हुआ है। पति जाते समय पत्नी को समय काटने और पेट पालने के लिए चरखा दे जाता है। साथ ही सतीत्व निर्वाह के लिए अपनी सौगन्ध भी दे जाता है। गीत इस प्रकार है –

"बिरन तो ननदी तोहरे गयै रे विदेसवा
घरि गयै चनन चनखवा
सिरिजि गये तुम्हरे बिरन
काति काति सूत समवां रे काटेओ धना
पाल्यौं सबिका पेटवा हो राम
संझा बेरिया सोइवै ननदी सासू के कोखां
रखिबै धरम बचाय हो रामा
अरे दइगै ननदी अपनी दोहइया
धरम जिमि छोड़िउ हो राम।"[49]

भारत में चरखे का इतिहास बहुत प्राचीन होते हुए भी इसमें उल्लेखनीय सुधार का नाम महात्मा गांधी के जीवन–काल का ही मानना चाहिए। गांधी जी को सबसे पहले सन् 1908 में चरखे की बात सूझी थी, जब वे इंग्लैण्ड में थे। उसके बाद वे बराबर इस दिशा में सोचते रहे। गांधी जी के व्यक्तित्व में चरखा पूर्णरूप से समा गया था। चरखे के स्वरूप को यदि गांधी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। गांधी जी के मुँह से निकली बात जनता के लिए मूल मंत्र हो जाया करती थी फिर उस समय तो विशेष कर देश दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और स्वतंत्र होने के लिए छटपटा रहा था। ऐसे अवसर पर गांधी जी ने सभी देशवासियों से निवेदन किया था कि वे विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करके अपने हाथ के बुने वस्त्रों का ही उपयोग करें। अपने हाथ से बुने हुए कपड़ों के लिए आधार था चरखे पर काता हुआ सूत अतः इस सूत के लिए घर पर चरखे का प्रयोग होने लगा। गांधी जी के चरखे के कार्यक्रम से अंग्रेज़ सरकार और अंग्रेज़ व्यापारी घबरा गए थे। इस चरखे को लोककवि ने तोप और बम से भी शक्तिशाली माना है–

देह चरखे नूं गेड़ा
तोड़ नहीं तोपा दी

तेरे बांबा नू चलण नहीं देया
गांधी दे चरखे ने।

इस गीत का तात्पर्य यह है कि चरखा चल रहा है। अब देश को स्वाधीन करने के लिए तोपों की आवश्यकता नहीं। गांधीजी का यह चरखा तेरे बमों को चलने नहीं देगा।

महात्मा गांधी ने चरखा, खादी और ग्रामोद्योग के कार्यक्रम को गाँव–गाँव तक पहुँचा दिया था। अवधी क्षेत्र के स्त्रियों में यह चरखा गीत बहुत लोकप्रिय हुआ –

"चरखवा कै टूटे न तार चरखवा चालू रहै।
दुल्हा बनिकै गांधी चले हैं, दुलहिन बनी सरकार। चरखवा . . .
बीर जवाहिर बने सहिबाला, राट इरबिन बने सार।
सब वालिंटियर बनिगे बराती, नउवा बने थानेदार। चरखवा . . .
गांधी जी बइठे मन माँ मगन होई, दहेज माँ मांगै सुराज
सारे इरबिन लोगैं मनावैं गउने मां देबै सुराज। चरखवा . . .
पंडित मोलवी साइत सोचै,
गउने का दिनवां कुवांर । चरखवा चालू . . ."[50]

एक अन्य गीत में महात्मा गांधी को दूल्हा बनाकर चरखे को गतिशील बनाने का प्रयत्न किया गया है –

"मोरे चरखा कै टूटे न तार
चरखवा चालू रहैं।
गांधी महतिमा दुलहा बने हैं,
अरे ! दुलहिन बनी है सरकार।
चरखवा चालू रहै . . .।
सारे कांगरेसिया बने हैं बराती
अरे ! पुलिस बनी है कहार,
चरखवा चालू रहै . . .।
मोरे चरखा कै टूटे ने तार
चरखवा चालू रहै।"[51]

प्रस्तुत गीत का तात्पर्य यह है कि महात्मा गांधी द्वारा अंग्रेज़ों पर विजय प्राप्ति के भावों को व्यक्त किया गया है। यहाँ गांधी जी को घर और अंग्रेज़ी सरकार को वधू के रूप में माना गया है। जिसके अनुसार गांधी जी रूपी वर ने विदेशी सरकार रूपी वधू को ब्याह लिया है अर्थात् अंग्रेज़ी को अपने अधीन कर लिया है। इस कार्य को अकेले गांधी जी ने ही नहीं किया है बल्कि उसमें काँग्रेस बरात के रूप में साथ थी और पुलिस कहार रूप में। गीत में दूल्हा, दुलहिन, बराती तथा कहार आदि प्रतीकों के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति के साथ-साथ यह दृढ़ संकल्प भी किया गया है कि स्वतंत्रता की भावना हम सबमें सदैव बलवती रहे।

अवधी क्षेत्र में चरखा विषयक जो गीत प्राप्त होते हैं जिसमें सर्वत्र राष्ट्र प्रेम की भावना के ही दर्शन होते हैं।

मणिपुरी स्त्रियों के लिए चरखा जीविका का साधन भी था। मणिपुर की स्त्रियाँ बहुत ही उद्यमी होती हैं। गृह कार्यों के उत्तरदायित्व के साथ-साथ कपड़ा बुनने का काम प्राचीन काल से ही यहाँ होता आया है। मणिपुरी स्त्रियों द्वारा बनाये गये कलात्मक एवं रंग-बिरंगे वस्त्र देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी प्रसिद्ध हैं। वस्त्र निर्माण के लिए हर एक घर में एक स्थान निर्धारित रहता है। जहाँ अवकाश के समय वह बुनाई का कार्य करती है। "राजमहल से लेकर झोंपड़ी तक हर महिला परम्परागत रूप से कपड़े बुनना जानती है। पर्वत और घाटी में रहनेवाली सभी महिलाएँ इस कार्य में कुशल हैं। वस्त्र निर्माण इनकी परम्परागत संस्कृति का अंग है। ऊँचे पद पर रहनेवाली महिला भी वस्त्र बनाने का काम करती है। लड़कियों को बाल्यावस्था से ही वस्त्र बुनाई का कार्य सिखाया जाता है। लड़कियों की शादी के लिए उनका वस्त्र बुनाई जानना आवश्यक है।"[52] स्त्री-पुरुषों के लिए बनायी कलात्मक शालों की बड़ी माँग रहती है।

मणिपुर में स्त्रियाँ चरखा चलाते समय गीत की लय के साथ-साथ कार्य करती हैं। एक मणिपुरी चरखा गीत द्रष्टव्य है -

"शिनाइफानसु कैरूङबा
लैपाक वाबु थोकेले वायेल्लो।
लैपाक वाबु थोकसनु
कैरूङबना वायेल्लु।
पिचुरैगी फम्माङदा

तकपु तरङ ङाल्लिबा
करिनो खङनिङ्ङ
तकुप तरेङ नत्तेये
लाङ्येलगी पाखङ अङाओबना
काओरेलगी काङ्मै खुबगी ङानबने. . .”[53]

4.2 निष्कर्ष :

कोई काम करते समय थकावट मिटाने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'श्रमगीत' कहते हैं। 'श्रमगीत' प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग ढंग से गाए जाते हैं। अवधी और मणिपुरी समाज में भी श्रम सम्बन्धी विभिन्न गीत प्राप्त होते हैं। मणिपुरी भाषा में श्रमगीत को 'शिनशु शिम्बाङ इशै' कहते हैं। अवध और मणिपुर की जनता अधिकांश ग्रामीण है। सदा श्रम में लीन रहना यहाँ के जन-जीवन की प्रकृति बन गई है। स्त्री-पुरुष दोनों अपने-अपने कार्यक्षेत्र में तत्परता एवं उत्साह से कार्य करते हैं। अतः व्यस्त जीवन के क्षणों में गीतों का समावेश इस धरती के स्त्री-पुरुष के प्रत्येक कार्य में मिलते हैं।

अवध में आटा पीसने की चक्की को जाँत अथवा जाँता कहते हैं। स्त्रियाँ चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'जंतसार' कहा जाता है। अवध के जंतसार गीतों में स्त्री जीवन का सम्पूर्ण सुख-दुख, मन की समस्त आशा रहती है। इन गीतों में कहीं तो दुखिनी विधवा स्त्री का करूण क्रन्दन सुनने को मिलता है। तो कहीं किसी वन्ध्या स्त्री की मनोवेदना अभिव्यक्त होती है। कहीं-कहीं विरहिणी स्त्री की वियोग व्यथा का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा वधू को दी गई नारकीय यंत्रणा का चित्रण मिलता है। अवधी क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुरी समाज में जंतसार गीतों की संख्या नहीं के बराबर है। इसका कारण यह भी है कि मणिपुरी समाज के लोग चावल खाना अधिक पसन्द करते हैं, इसीलिए इसकी जगह वहाँ धान कूटने के गीतों का प्रचलन है। मणिपुरी भाषा में धान कूटने के गीत को 'फौशु इशै' कहते हैं। मणिपुरी स्त्रियाँ प्रायः शाम के समय धान कूटने का काम करती थी और धान कूटते समय 'फौशु इशै' गाती थी। 'फौशु इशै' अवध के जंतसार गीतों के विषय से थोड़ा भिन्न है। इन गीतों का प्रधान विषय प्रेम होता है। जिसमें पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिकाओं की क्रीड़ा के साथ ही वात्सल्य रूप सम्बन्धी गीतों का भी उल्लेख मिलता है।

अवध और मणिपुर में धान को खेत में रोपते समय गीत गाये जाने का प्रचलन है। रोपनी कार्य अवध क्षेत्र के गाँवों में कम होता है जब कि मणिपुर में ज्यादा, इसलिए अवध क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुर में रोपनी गीत अधिक गाये जाते हैं। अवध की रोपनी गीतों में बहू ससुराल में अपने प्रति हुए दुर्व्यवहारों का वर्णन, समाज की उस विवाह प्रथा की कुछ कठिनाइयों के प्रति संकेत दम्पत्ति जीवन का वर्णन आदि मिलता है। लेकिन मणिपुरी रोपनी गीतों का विषय अवध के रोपनी गीतों के विषय से थोड़ा भिन्न है। मणिपुरी रोपनी गीतों में भाई-बहिन का प्रगाढ़ प्रेम, किसी में स्त्री-पुरुष के प्रेम-प्रसंग तो किसी में स्त्री के पवित्र तथा आदर्श सतीत्व का वर्णन और सौतेली माँ के कटु व्यवहार का वर्णन मिलता है।

अवध और मणिपुर में निरवाही के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन है। लेकिन मणिपुर में निरवाही के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों का विषय अवध की निरवाही गीतों के विषय से बिल्कुल भिन्न है। निरवाही गीत को मणिपुरी भाषा में 'खुतलङ इशै' कहते हैं। खुल्लङ इशै निरवाही गीत की तरह बड़े होते हैं। खुतलङ इशै केवल निरवाही के समय और नहीं बल्कि प्रेम-प्रसंगों में भी प्रेमी-प्रेमिकाओं के बीच गाए जाते हैं।

अवधी और मणिपुरी क्षेत्र के कृषि सम्बन्धी अन्य गीतों में फसल काटने का उल्लेख मिलता है। दोनों क्षेत्रों में खेत में कटनी करते समय स्त्रियाँ गीत की लय के साथ-साथ कार्य करती हैं। दरअसल लोकगीतों में स्त्री हृदय के सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। किसी गीत में श्रम करने में हर्ष तो किसी में विषाद की भावनाएँ मिलती हैं। यथा अवध के एक कटनी गीत में स्त्री खेत पर काम करने का विरोध करती है -

> ***"चाहे जायें सास ननदिया या ननदी के भइया***
> ***हो हम न जइवै, हो हम न जइबै, हो हम न जइवै रे***
> ***झोकवा बहै . . . ।"***

मणिपुरी कटनी गीतों के साथ कई पौराणिक सन्दर्भ जुड़े हुए हैं। ये गीत सुनने और गानेवालों को हर्ष प्रदान करते हैं।

अवध और मणिपुर में प्राचीन काल से घर-घर में चरखा होता था और स्त्रियों के लिए चरखा जीविका का साधन भी था। दोनों क्षेत्रों में चरखा चलाते समय स्त्रियाँ गीत गाती थीं। अवध के अधिकांशतः चरखा गीतों में राष्ट्र प्रेम की भावना मिलती है। कुछ गीतों में दाम्पत्य जीवन का भी वर्णन मिलता है लेकिन मणिपुरी चरखा गीतों में दाम्पत्य जीवन का वर्णन तो मिलता है परन्तु राष्ट्र प्रेम की भावना नहीं मिलती।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड के सन्दर्भ में), डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी, पृ. 34
2. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.279
3. अवधी लोक वाङ्मय, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 76
4. अवधी श्रम-गीत, सं. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 9
5. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 279-280
6. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 149
7. कविता कौमुदी (ग्रामगीत), सं. डॉ. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 339
8. प्रवासी संसार (अवधी विशेषांक), सं. राकेश पाण्डेय,अक्टूबर-दिसम्बर, 2009, पृ.33
9. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 149
10. प्रवासी संसार (अवधी विशेषांक), सं. राकेश पाण्डेय,अक्टूबर-दिसम्बर, 2009, पृ. 33
11. हिन्दी के लोकगीत (भाग-1), सं. डॉ. महेश प्रताप नारायण अवस्थी, पृ. 187-188
12. वही, पृ. 188
13. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ. 469
14. लोकगीतों में क्रान्तिकारी चेतना, सं. विश्वमित्र उपाध्याय, पृ. 67-68
15. मणिपुरी खुनुङ इशै खोमजन्बा, सं. लाइश्रम वीरेन्द्र कुमार, पृ. 100
16. लोक गायिका - युमलेम्बम ओङबी निङोल, सेकमाई (मणिपुर), उम्र 47
17. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ. 471
18. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 142-143
19. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 211-212
20. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 143
21. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 212
22. हिन्दी के लोकगीत (भाग-1), सं. डॉ. महेश प्रताप नारायण अवस्थी, पृ. 184
23. अवधी लोक वाङ्मय, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 78
24. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 144
25. लोकगीतों में क्रान्तिकारी चेतना, सं. विश्वमित्र उपाध्याय, पृ. 68
26. लोक गायक - शगोलशेम राजमोहोन सिंह, मणिपुर, उम्र 50

27. लोक गायक – ख्वाइराकपम लुज, सेकमाई (मणिपुर), उम्र 88
28. लोक गायिका – इरूङबम पद्मावती देवी, सगोलबन्द (मणिपुर), उम्र 50
29. लोक संस्कृति की रूपरेखा, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 280
30. अवधी लोक वाङ्मय, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 76
31. अवधी का लोकसाहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 210
32. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, डॉ. शान्ति जैन, पृ. 477
33. अवधी लोकगीत, सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 251
34. वही, पृ. 240
35. वही, पृ. 233-234
36. वही, पृ. 213
37. वही, पृ. 205-206
38. मणिपुरी खुनुङ इशै खोमजन्बा, सं. लाइश्रम वीरेन्द्र कुमार, पृ. 78-79
39. अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 212
40. अवध के लोकगीत और शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 145
41. वही, पृ. 146-147
42. अवधी श्रम–गीत, सं. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 140
43. पुया = मणिपुरी धार्मिक ग्रंथ
44. लौतारोल = खेती तंत्र
45. काङलैन उमांग लाइ–हराओबा, सं. ङाङबम कुमार, पृ. 147
46. लाइराओबा = मणिपुर के विशिष्ट प्रादेशिक त्यौहार
47. समन्वय पूर्वोत्तर (पत्रिका), सं. रामवीर सिंह, अंक–3, जुलाई–सितम्बर, 2011, पृ. 22
48. अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 151
49. वही
50. अवधी श्रम–गीत, सं. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, पृ. 105
51. वही, पृ. 151
52. पूर्वोत्तर भारत के राज्य, डॉ. माता प्रसाद, पृ. 78
53. लोक गायिका – पुथेम चाओबी, अन्द्रो (मणिपुर) उम्र 61

❖❖❖

5. पाँचवां अध्याय : ऋतु सम्बन्धी अवधी एवं मणिपुरी लोकगीतों के स्त्री स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन ।

5.1 ऋतु – गीत

5.1.1 कजली

5.1.2 फाग

5.1.3 बारहमासा

5.1.4 चैता

5.1.5 सावन

5.1.6 विविध गीत

5.1.6.1 वर्षा ऋतु–गीत

5.1.6.2 लोरी–गीत

5.1.7 लाईहराओबा

5.2 निष्कर्ष

5.1 ऋतु – गीत :

भारत में एक वर्ष के भीतर प्रधानतया छ : ऋतुएँ होती हैं – जैसे (1) ग्रीष्म, (2) वर्षा, (3) शरद, (4) शिशिर, (5) हेमन्त और (6) बसंत। इन विभिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इन्हीं गीतों को 'ऋतुगीत' कहते हैं। 'ऋतुगीत' भारत के प्रत्येक राज्य में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। "भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत–गायन की परम्परा मिलती है –ऋतु सम्बन्धी गीतों में जनमानस पूर्णरूपेण तरंगित दिखाई पड़ता है। विभिन्न ऋतुओं में जन–मन के अनुरंजन के लिए गीतों के गाने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है। प्रकृति के विभिन्न परिवर्तित रूप ऋतुओं के नाम से अभिहित हैं तथा इन्हीं विभिन्न रूपों का अक्षुण्ण प्रभाव एवं रंगरंजित चित्र ऋतुगीतों की अमूल्य निधि है। विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न लोकगीत गाने का प्रचलन ग्रामीण समाज में है। ग्रामीणों का वर्षाकालीन उल्लास, प्रेमभाव, शरद में विभिन्न त्योहारों एवं व्रतों का उत्साह तथा बसन्त के रंग–रंगीले मौसम की भावभीनी अभिव्यक्ति ऋतुगीतों में प्राप्त है।"[1] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में – "ऋतु–सम्बन्धी गीतों में जन–मानस पूर्ण तरंगित दिखायी पड़ता है। विभिन्न ऋतुओं में जन–मन के अनुरंजन के लिए गीतों के गाने की प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत गायन की परम्परा प्रचलित है।"[2]

"भारत में ऋतु के अनुसार न केवल गीत के कथ्य बदलते हैं, बल्कि उनके शिल्प में भी परिवर्तन आता है।"[3] "विभिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न के गीत गाये जाते हैं। इनमें तदनुरूप भाव–परिवर्तन भी पाया जाता है। यथा बसंतऋतु में होली और चैती गीत गाये जाते हैं और वर्षा ऋतु में 'बरसाती' और 'कजरी'।"[4] डॉ.उपाध्याय ने इस बात को विस्तार देते हुए कहते हैं – "यदि वर्षा (आषाढ़) के दिनों में किसान आल्हा गा–गाकर अपना मनोरंजन करता है तो सावन में कजली गाकर अपने दर्द को दूर करता है। यदि फागुन के महीने में होली या फगुआ के गीतों के द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत में 'चैता' या 'घांटो' गाकर वह आत्म विभोर हो जाता है।"[5] ऋतु गीत को डॉ.स्वर्णलता ने 'वैलासिक गीत' माना है। उनके विचार में "जो गीत संस्कार, त्योहार अथवा व्यवसाय आदि किसी अवसर विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं और केवल मनोरंजन के लिए गाये जाते हैं वे वैलासिक गीत हैं।"[6] यह बात सही है कि ऋतुगीत किसी धार्मिक अनुष्ठान या संस्कारादि अवसर पर नहीं गाये जाते और न इनका संबंध सीधे तौर पर किसी व्यवसाय से रहता है। अत: ऋतुगीत मनुष्य के अन्दर उठनेवाली भाव–तरंगों की स्वत: स्फूर्त्त अभिव्यक्ति है।

भारत के छ: ऋतुओं मे से अधिकांश लोकगीतों का सम्बन्ध ग्रीष्म, वर्षा और बसंत ऋतुओं से हैं यद्यपि शेष तीन ऋतुओं का वर्णन भी कहीं कहीं मिलता है।

अवधी और मणिपुरी क्षेत्र के लोक जीवन में ऋतुओं का विशेष स्थान है। अवधी क्षेत्र में वर्षा में, व्रतों एवं त्यौहारों के अवसरों पर भावमय एवं सरस गीत गाये जाते हैं। प्रकृति के रंगीले एवं निराले रूपों का प्रस्फुटन यहाँ के ऋतुगीतों में प्राप्त है। अब अवधी और मणिपुरी क्षेत्र के विभिन्न ऋतुगीतों में स्त्री–स्वरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा–

5.1.1 कजली :

अवध में 'कजली' को 'कजरी' भी कहते हैं। ''यह गीत अक्सर श्रावण मास में कारे–कारे कजरारे बादलों के नभाच्छन्न होने पर गाया जाता है। काले–काले बादलों की कालिमा के समय गाये जाने से इस गीत का नाम कजली पड़ गया है। सावन मास की शुक्ला तीज को पड़ने के कारण भी इसे 'कजली तीज' नाम दिया गया है। यह गीत वैसे तो पूरे अवधी प्रदेश में गया जाता है, परन्तु मिर्जापुर की कजली विशेष प्रसिद्ध है।''[7] ''कजरी, पूर्वी उत्तर प्रदेश और भोजपुरी बोली से जुड़े हुए कुछ क्षेत्रों का, सावन के महीने में गाया जाने वाला एक प्रसिद्ध लोक–गायन है।''[8] कजरी शब्द की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत हैं। किन्तु यह सर्वमान्य है कि – 'काजल' शब्द 'कज्जल' का अपभ्रंश है, इसी से 'कज्जली' शब्द बनता है, जिसे बोलचाल की भाषा में 'कजली' या 'कज्जरी' कहा जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का समय कजरी का स्वर्णयुग था। ''19 वीं शताब्दी के उत्तराई में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने कजरी के गिरते हुए स्तर को संवर्द्धित करते हुए साहित्य, संगीत और लोक–जीवन में सर्वोच्च स्थान दिलाते हुए उसका पुनर्प्रतिष्ठापन किया।''[9] भारतेन्दुजी ने कजरी गीत का संबंध कंतित (मिर्जापुर) के परोपकारी राजा दादूराय की मृत्यु से जोड़ा है। जार्ज ग्रियर्सन ने भारतेन्दु जी का समर्थन किया है। भारतेंदु जी के मतानुसार वहाँ की स्त्रियों ने दादूराय की मृत्यु से उत्पन्न दु:ख को प्रकट करने के लिए कजरी नामक एक नये गीत–प्रकार का आविष्कार किया था। ''पंडित बलदेव उपाध्याय के मत से आजकल की कजली प्राचीन लावनी की ही प्रतिनिधि है। मिर्जापुर में प्रचलित लोककथा के अनुसार कजली नाम की स्त्री का पति परदेश गया था। वर्षा ने विरहिणी के जले पर नमक छिड़कने का काम किया। वह अष्टभुजी पर कज्जल वाली देवी के आसपास घूम–घूम कर पति–मिलन के लिए विलाप करने लगी और उसके गीत कजरी नाम से लोकप्रिय हुए।''[10]

''एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार 'कज्जलीदेवी' युवावस्था होने पर उत्तेजित होकर इधर–उधर विचरण करने लगीं और जो भी सामने आता उसे शाप देने लगीं। इसी दौरान एक मुसलमान सामने आ गया। वे उसे भी शाप देने के लिए दौड़ पड़ीं। मुसलमान ने करूण रस में एक गीत गाया, जिससे देवी को मानसिक शान्ति मिली। उन्होंने उसी धुन तथा लय में गीत को बारम्बार गाने का आग्रह किया।

अन्त में कजलीदेवी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया और लोगों को विश्वास हो चला कि उसी धुन तथा लय में गीत गाने से देवी मनचाही मुराद पूरी करती हैं, वही गीत 'कजली' नाम से प्रसिद्ध हुआ।''[11]

"लोक-साहित्य के कुछ विद्वान् कजरी के जन्म का संबंध मिर्जापुर और बनारस में प्रचलित शक्तिपूजा या गौरीपूजा तथा वैष्णव धर्म वाले इसे विशेष रूप से कृष्णोपासना या लावनी से जोड़ते हैं। मिर्जापुर के कुछ गायक कजली को अष्टभुजी विन्ध्याचल की देन मानते हैं। उनके अनुसार काली कज्जली के चार रूपों - काली, दुर्गा, विन्ध्याचल की अष्टभुजी और मैहर की मनियादेवी के द्वारा व्यक्त भाव कजली द्वारा गाये गये, अत: कजली नाम से प्रसिद्ध हुए।''[12]

"कजरी गीतों को सर्व प्रथम किसने लिखा यह कहना कठिन है। किन्तु लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भोजपुरी के सन्त कवियों, विशेषकर लक्ष्मी साखी की रचनाओं में कजरी गीत उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु युग को 'कजरी का स्वर्णयुग' कहा जाता है। उस समय साहित्य, संगीत एवं लोकजीवन में कजरी को प्रतिष्ठित स्थान मिला था। इसके भाव, भाषा और लोकप्रियता के कारण साहित्यकार कजरी की ओर आकृष्ट हुए। किन्तु धीरे-धीरे इनका शृंगार वर्णन छिछला और स्तरहीन होता गया तब काशी के भारतेन्दु जी तथा तत्कालीन अन्य कवियों ने इसे स्वस्थ साहित्यिक रूप की गरिमा प्रदान की। इनमें अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन आदि के नाम उल्लेखनीय है।

"उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से कजरी की शैली दो प्रकार की मानी जा सकती है। एक को गजल की शक्ल में कजरी दंगलों में सुना जा सकता है। दूसरी है दुनमुनिया कजरी, जिसे औरतें वृत्त बनाकर ताल देती हुई झुक-झुक कर गाती हैं। घरों की बहू-बेटियाँ घरेलू कामकाज पूरा करने के बाद रात को वहीं एकत्रित होकर कजली गाती हैं।''[14] इन गीतों में लोग अपने मन के भावों को बहुत सहज रूप में व्यक्त करते हैं। लोक जीवन के कोमल और मार्मिक भावों को व्यक्त करने में कजली बहुत लोकप्रिय राग सिद्ध हुई है।

अवधी कजरी की अपनी अलग ही विशेषता होती है। कजरी का प्रधान विषय प्रेम है। इसमें शृंगार रस के दोनों पक्षों की झाँकी देखने को मिलती है परन्तु संयोग शृंगार की प्रधानता होती है। अवध में वर्षा ऋतु के दिनों में नव विवाहिता बहू कजली खेलने के लिए अपने मायके चली जाती है। इसी कारण निम्नलिखित गीत में कोई बहू अपने मायके जाने के लिए पति से निवेदन कर रही है -

"हम का जाय दया नइहरवा,
मोरी कजरिया बीती जाय।

जउ धना जाबू ते नइहरवा,
हम का जेंवना के जेवाँई ।

अपनी बहिनी के बोलाय के,
नइहरवा तू तब जाब ।

जउ धना जाबू तू नइहरवा,
हम का गेड़या के घुँटाइ ।

अपनी बहिनी के बुलाई के,
नइहरवा तू तब जाव ।

जउ धना जाबू त् नइहरवा,
हमका सेजिया के सुताई

अपनी बहिनी के बुलाई के,
नइहरवा तब तू जाव ।

हम का जाय दया नइहरवा,
मोरी कजरिया बीती जाय ।"[15]

प्रस्तुत गीत में कोई स्त्री अपने पति से कहती है कजली के दिन बीते जा रहे हैं । इसलिए आप मुझे अपने मायके जाने दो । लेकिन उसका दुष्ट पति अनेक प्रकार की समस्या का बहाना बनाकर उसे वहाँ जाने देना नहीं चाहता । अन्त में वह कामुक पति एक शर्त रखता है कि – तुम अपनी छोटी बहन को मेरी सेवा करने के लिए बुलाकर अपने मायके जावो । इस शर्त को स्त्री कभी मानने के लिए तैयार नहीं है । फिर भी स्त्री, पति से निवेदन करती है कि – कजरी के दिन बीते जा रहे हैं अत: आप मुझे जाने दें ।

एक अन्य कजरी गीत में भी कोई स्त्री सावन में अपने मायके जाने के लिए पति से निवेदन करती है –

"लागे सावन क महीना दिल लागई न हमार;
हमइ नइहर पहुँचाई देआ अरे साँवलिया ।
जाइब नइहरे कि ओर झूलब झुलना हिंड़ोल;

सोउब बाबा की अटरिआ अरे साँवलिया ।

सँइयाँ जंइहीं ससुरारि देबइं चनना केवार;
नाही खोलबई सकरिआ अरे साँवलिया ।

सँइआँ जइहीं रिसिआइ सखि लेइही मनाय;
देबई जादू कई पेटरिआ अरे साँवलिया ।"[16]

इस गीत में कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि – ए प्रियतम ! सावन का महीना अब आ गया है । इसलिए मेरा मन अब यहाँ नहीं लगता अत: आप मुझे मायके पहुँचा दीजिए । मैं अपने मायके जाऊँगी, वहाँ हिडोला लगा कर झूला झूलूँगी । ए सावलियाँ ! वहाँ मैं अपने पिता की अटारी पर सुख पूर्वक सोऊंगी ।

यदि आप मुझे लेने के लिए अपनी ससुराल आएँगे तो मैं घर में लगे हुए चन्दन के दरवाजे को बन्द कर दूँगी । आपके आग्रह करने पर भी मैं दरवाज़े की जंजीर को न खोलूँगी और जब आप मुझ से रूष्ट हो जायेंगे तब मेरी सखियाँ तुम्हें प्रसन्न कर देगी और मैं तुम्हें जादू की पिटारी दूँगी अर्थात् अपनी अलौकिक सुन्दरता से आपके ऊपर मैं जादू का काम करूँगी ।

अवध में परम्परा से चले आ रेहे कजरी गीतों के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनमें ग्रामीण स्त्री की हृदय की आशंकाएँ स्वाभाविक रूप में प्रकट हुई हैं । निम्नलिखित गीत में गवना का दिन आने पर विवाहित स्त्री की चिन्ता का करुण चित्रण किया गया है –

"पाती आई गई गँवन की अरे साँवलिया;
राधा परोसिनि मोरे नन्हवा कई गोतिन ।

गीति गाई देआ लगन की अरे साँवलिया;
पूजा चकरी अठ सिलिकरा घर कि ततबीर ।

ख्याल करा तू चलन की अरे साँवलिया;
हिल्ला बोलई पहाड़ धूमिल होई गये सिंगार;
मार पड़इ कोड़वन की अरे साँवलिया ।"[17]

इस गीत में विवाहित स्त्री कहती है कि मेरे गौने के दिन की चिट्ठी आ गई है । मेरे पड़ोस में रहने वाली राधा मेरे लड़कपन की सखी है । ए राधा ! अब तुम मेरे गौने के गीत गावो । वह स्त्री स्वयं कहती

है कि पूजा की सामग्री, जाँत और सिल–बट्टा आदि घर के जो सामान की चिन्ता करनी चाहिए तथा अब ससुराल चलने का ख्याल करना चाहिए। ससुराल में सास कटु वचन बोलती है, काम करने से सारा शरीर का शृंगार मलीन पड़ जाता है और पति कोड़ों से मारता है। अत: इस गीत में ग्रामीण स्त्री–जीवन की मनोदशा का अत्यंत यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

कजरी गीतों में विरहिणी स्त्री के कष्टों का वर्णन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। "बहुत से पुरुष जीविका उपार्जन करने के लिए दूर देश विशेषत: कलकत्ता और रंगून को चले जाते हैं और अनेक वर्षों तक धन भेजने की बात तो दूर रही पत्र तक नहीं भेजते। यदि वर्षों बाद कोई पत्र आया भी तो उसकी अनपढ स्त्री उसे दूसरों से पढ़वाती फिरती है। उसका उत्तर लिखवाने के लिए उसे दूसरों से प्रार्थना करनी पड़ती है। यदि दुर्भाग्यवश उसकी सास जीवित रही तो पति के पत्र के कारण व्यंग्य वाणों की वर्षा भी सहनी पड़ती है।"[18] निम्नलिखित गीत में किसी परदेसी पति के प्रति विरहिणी स्त्री की उक्ति है –

"गेवना लिआया पिया घर बइठवले;
आप कन्ता छाये परदेसवा अरे साँवलिआ।

आप नाहीं जावइँ चिठिआ नाहीं भेजइँ;
लिखि लिखि भेजइँ विरोगवा अरे साँवलिआ।

बरहे बरिस पापी चिठिआ जउ भेजेन;
परिगई सासुजी के हँथवा अरे साँवलिआ।

सासु ननद मोरि नन्हवा कइ बइरिनि;
चिठिआ बचावइँ पिछवरवा अरे साँवलिआ।

लहुराँ देवरवा सोरा कन्हवाँ क मितवा;
चिठिआ बाँचइ मोर समनवा अरे साँवलिआ।

ओरे पाछे लिखेआ देवरा खेम कुसलिआ;
विचवा माँ हमरा विरोगवा अरे वाँवलिया।"[19]

प्रस्तुत गीत में किसी विरहिणी स्त्री कहती है कि गौना करा के मेरा पति मायके से मुझे ससुराल में छोड़कर और स्वयं परदेश को चला गया। वह स्वयं न तो आता है और न चिट्ठी ही भेजता है। मैंने अपने विरह के कष्टों को लिखकर उसके पास कितनी ही बार भेजा। लेकिन बारह साल के बाद जब पति ने चिट्ठी भेजी तब वह सासु के हाथों में पड़ गई। वह विरहिणी स्त्री कहती है कि सास और ननद

तो मेरी जन्म की ही बैरिन हैं । वह घर के पिछले भाग में उस चिट्ठी को किसी से पढ़वा रही है । मेरा नन्हा–सा देवर मेरे लड़कपन का दोस्त है। वह मेरे सामने ही उस चिट्ठी को पढ़ता है । वह अपने देवर से कहती है – ए मेरे देवर ! तुम इस चिट्ठी का जवाब भेजते समय चिट्ठी के पिछले भाग में अपना समाचार लिखना लेकिन उसके बीच में मेरे वियोग के बातें लिखना ताकि जिसे पढ़कर मेरा पति घर जल्दी लौट आये ।

अवध में कजरी गाने के साथ झूला झूलने की प्रथा प्राचीन है । सावन के महीने में गाये गये या तालाब के किनारे पेड़ के सहारे रस्सी का झूला बनाकर नर नारी बच्चे सभी झूला झूलते हैं और कजरी गाते हैं । झूला झूलते समय गायी जाती हुई एक कजरी द्रष्टव्य है–

"कि अरे रामा घिर आई काली बदरिया;
बलम घर नाहहीं रे हारी ।
सोने के थारा मा ज्वेना परोसेऊँ;
कि अरे रामा घर नाहीं रे जेवंइया
जेवत डरू लागे रे हारी ।
कि अरे ....।"[20]

प्रस्तुत गीत में एक स्त्री स्वागत की विभिन्न तैयारियों के साथ पोते की प्रतीक्षा कर रही है । वह सोने की थाली में भोजन लगाकर, गडुए में गंगा जल लेकर, पान का बीड़ा सजाकर, फूलों की शय्या के निकट रात भर जागकर उसके आने की राह देखती है, पर वह बादलों के घिर आने के कारण नहीं आता और अन्त में उसे केवल निराशा ही मिलती है ।

कजरी गीतों में सामाजिक यथार्थ दृष्टिगत होता है । एक ओर भावनाओं के उभरते चित्र और दूसरी ओर सामाजिक रीति–रिवाज, रूढ़ियों आदि के चित्र कजरी को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना देता है । कजरी में गाँवों में प्रचलित पर्दा की प्रथा का चित्रण बड़ी ही सुन्दर ढंग से किया गया है । गाँवों में स्त्रियाँ अपने पति से दिन में तो मिल ही नहीं सकती, रात्रि में भी बड़ी कठिनता से भेंट हो सकती है । उस पर भी सास तथा ननद के द्वारा उसमें कम बाधा उपस्थित नहीं की जाती । बेचारी नवागता वधू के लिए अपने प्रियतम से मिलना पहाड़ को पार करना है । एक कजरी गीत में रात्रि में भी पति से मिलने में बेचारी नवागता वधू की कठिनाइयाँ व्यक्त की गई हैं –

"सावला सोवथि अँटरिया;
मइ कउनी विधि जाउँ रे ।

सासु ननदि मोरे नान्हेन कइ वैरीन,
आँगन पलँग बिछावइँ;
मइ कउनी विधि जाउँ रे ।

जेठ जेठानी मोरी नान्हेन कइ बइरिनि;
सोवइँ दिअना जलाइ रे ।
लहुरा देवर मोर नान्हेन कइ मितवा;
लावइँ रेसम की डोरी, भउजि चढ़ि जाउ रे ।
मइ कउनी विधि जाउँ रे ।

लहुरी ननद मोर नान्हेन कइ छिदरी ;
काटइ रेसम डोरी, भउजि गिरि जाई रे ।
मइ कउनी विधि जाउँ रे ।

साँवला सोवथि अटरिया,
मइ कउनी विधि जाउँ रे ।"[21]

इस गीत में एक स्त्री कहती है कि मेरा सुन्दर पति अटारी पर सो रहा है । अपने पति से मिलने के लिए मैं कैसे जाऊँ ? मेरी सास और ननद जन्म से ही मेरी बैरिन हैं । ये दोनों आँगन में पलँग बिछा कर सो रही हैं । इसलिए मैं अपने पति से मिलने के लिए कैसे जाऊँ...? मेरे जेठ और जेठानी भी दीपक जला कर सो रहे हैं । इसलिए मैं प्रकाश में अपने पति से मिलने के लिए कैसे जाऊँ...? छोटा देवर अटारी से रेशम की डोरी बाँधकर उसे नीचे लटका देता है और कहता है कि ए भावज ! तुम इस डोरी को पकड़कर अटारी पर चढ़ जाव । मेरी छोटी ननद लड़कपन से ही मेरी घोर बैरिन है । वह भी कहती है कि मैं रेशम की डोरी काट दूँगी जिससे मेरी भावज गिर जायेंगी । अत: मेरा पति अटारी पर सो रहा है लेकिन मैं उससे मिलने के लिए कैसे जाऊँ....?

लोकगीत हमारे समाज का दर्पण है जिसमें हमारे समाज के यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति होती है । अवध के कजरी गीतों में भी समाज के यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति है । कजरी गीतों में बाल–विवाह अनमेल विवाह का वर्णन देखने को मिलता है । प्राचीन समय में कुछ विवाह ऐसे भी होते थे

जिनमें स्त्री बड़ी और पुरूष बालक या शिशु ही होता था यद्यपि ऐसा होना असम्भव लगता है, कि पत्नी बड़ी भी इतनी बड़ी कि पति उसके आगे शिशु के समान लगे। इसमें नि:संन्देह अतिशयोक्ति है पर ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं हैं, जहाँ पति की आयु पत्नी से कई–कई वर्ष कम होती है किन्तु यहाँ अनेक गीत ऐसे मिलते हैं जिसमें पति शिशु और बालक रूप में दिखाया गया है।"[22] गाँवों में अनेक युवा स्त्रियों का विवाह छोटे बच्चे से कर दिया जाता है जिससे उन्हें आजीवन कष्ट भोगना पड़ता है। यद्यपि बाल विवाह की यह प्रथा अब धीरे–धीरे कम होती जा रही है परन्तु फिर भी इसका प्रचार कुछ कम नहीं हैं। निम्नलिखित गीत में किसी अनाड़ी पति से विवाह होने के कारण उस स्त्री की कष्टों का वर्णन–

"कस गोरी थमवा धरे आज ठाढ़ी।
भीतरा से निकरी साँवर एक गोरी।
कस गोरी थमवा धरे आज ठाढ़ी।
थमवा कई दरद करेजवा मा साली।
अगरे कइ लहँगा बुरहानपुर कइ सारी।
पहिरे न जाने मोर भउजी अनारी।
नाक सोहइ नेथिया काने मां दुइ बारी।
अरे पहिरे न जाने मोर भइजी अनारी।
आँखि सोहे कजरा टिकुरि रतनारी।
देइउ न जाने मोर भउजी अनारी।
पहिरि ओढ़ के राजा चढ़ि गई अटारी।
फूला नेवारी कइ सेजा लगावें प्यारी।
अरे तबहूँ न जागे राजा लरिका अनारी।
अरे अस मन हो गया मारउ हनिके कटारी।
मारि के कटारी जड़ि जेउ रे केवारी।"[23]

अर्थात, "यह गोरी रत्री खम्भे को पकड़ कर क्यों खड़ी है? घर के भीतर से एक सोलह वर्षीया युवती निकली। आज वह खम्भा पकड़ कर क्यों खड़ी हैं ? वह कहती है कि आज मेरे कलेजे में दर्द हो रहा हैं। आगरा का लहँगा है और बुरहानपुर की साड़ी है परन्तु मेरी अनाड़ी भावज उसे पहिनना नहीं जानती है। नाक में तो नथिया है और कानों में दो बालियाँ है। परन्तु मेरी अनाड़ी भावज उन्हें पहिनना नहीं जानती है। आँखों में काजल सुन्दर लगता है और ललाट पर लाल टिकुली अच्छी लगती हैं। परन्तु मेरी अनाड़ी भावज उसे लगाना नही जानती। वह स्त्री कपड़े और गहनों को पहिन कर अटारी पर

गई और उसने नेवार के पलंग पर फूलों को बिखेर दिया । परन्तु उसका अनाड़ी पति नहीं जागा। इस पर वह अत्यन्त दु:खित होकर कहती है कि मेरे मन में ऐसा होता है कि अपनी छाती में कटारी मार कर आत्म–हत्या कर लूँ और आत्म हत्या करने के पहिले भीतर से दरवाजे को बन्द कर दूँ जिससे कोई खोल न सके ।''[24]

एक अन्य कजरी गीत में एक बाल पत्नी की मनोव्यथा का उल्लेख किया गया है –

"हरे रामा चढ़ली जवानी जोर जुलुम कई डारइ रे हरी ।
बारा डाड़े की सिढ़िया रामा चढ़ि गइउ अकारने राम ।
हरे रामा सइयाँ का देखेउ लरिकवा उतरेउ मन मारी रे हरी ।
हरे रामा जाबा से देखेउँ सइयाँ का लरिकवा रामा ।
हरे रामा खाना पानी छूट, नींद नाही आवई रे हरी ।
हरे रामा माई–बाप मिल जनम दीना, सुरति दीन भगवान् रामा ।
हरे रामा दइअउ मउति दइ देत, जिअउँ हमं कइसे रे हरी ।''[25]

उपर्युक्त गीत में एक स्त्री जिसका पति बालक है, अपने कष्टों का वर्णन करती हुई कहती है कि मेरी भरी हुई जवानी है अत: मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है । मैं बिना किसी कारण ही सीढ़ी पर चढ़कर महल के ऊपर अपने बालक पति को देखकर मैं बहुत दु:खी हुई और तुरन्त नीचे उतर आई । जबसे मैंने अपने बालक पति को देखा है तब से मेरी खाना–पीना छूट गया है और मुझे नींद भी नहीं आती। माँ–बाप ने मुझे जन्म दिया और भगवान ने मुझे सौन्दर्य प्रदान दिया । अब, हे भगवान मुझे मृत्यु दे तो भी वह अच्छा है क्योंकि मैं ऐसी दशा में कैसे जीवित रह सकती हूँ ।

''इस प्रकार के विवाह जिसमें कन्या बड़ी और वर बालक के रूप में होता है, कदापि नहीं होते, ग्राम्यंचल में बड़ी उम्र की लड़की से छोटी आयु के लड़के का विवाह आज भी आश्चर्यजनक नहीं है, किन्तु वर अत्यधिक बड़ा और कन्या छोटी ऐसे विवाह देखने को मिलते हैं । इसका कारण गरीबी तथा दहेज प्रथा है । कभी–कभी ऐसे भी विवाह सम्पन्न होते देखे जाते हैं जिनमें दुल्हा दुहाजू अर्थात् उसकी पत्नी मर चुकी होती है, उसके तीन चार बच्चे भी होते हैं उसका विवाह ऐसी लड़की से होता है जिसकी आयु उसके अपनी पहली पत्नी के बच्चों के बराबर या कुछ अधिक होती है । अवध में ऐसे विवाह एक नहीं अनेक हुए हैं और होते रहेंगे ।''[26]

अवध के एक कजरी गीत मे एक स्त्री कम आयु में ही उसका विवाह कर देने के कारण अपने पिता के प्रति उपालम्भ भाव को व्यक्त कर रही है –

"मोरी पतली कमर, लम्बी सेज झुकउँ जइसे नागिनिया ।
कारे कहँउ अपने बारे पण्डित का;
जवन नान्हें विचारइ सुदिनवा ।
कारे कहउँ अपने नउवा, बारी का;
जउन नान्हें निआवे सुदिनवा ।
कारे कहँउ अपने सासु ससुर का;
जउन नान्हें पठावे सुदिनवा ।
कारे कहँउ अपने भाई, बपई का;
जउन नान्हें पठावे गवनवा ।
मोरी पतली कमर लम्बी सेज;
झुकउँ जइसे नागिनिया ।"[27]

इस गीत में "स्त्री कहती है कि मेरी कमर पतली है । जब अपनी सेज पर मैं झुकती हूँ तो ऐसा मालूम होता है जैसे नागिन झुक रही हो । मैं अपने पण्डित से क्या कहूँ जिसने लड़कपन में ही मेरे विवाह का दिन निश्चित कर दिया। मैं अपने नाई और बारी से क्या कहूँ जो मेरी बाल्यावस्था में ही गौने का दिन निश्चय कर देता है । मैं अपने सास और ससुर को क्या कहूँ जो लड़कपन में ही मेरे गौने का दिन भेज देते हैं । वह स्त्री फिर कहती है कि मैं अपने भाई और बाप को क्या कहूँ जो लडकपन में ही मुझे ससुराल में भेज देते हैं । मेरे कमर पतली है और सेज लम्बी है । मैं नागिन के समान उस पर झुकती दिखाई देती हूँ ।"[28] अत: ये गीत समाज में प्रचलित अनमेल विवाहों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं।

सावन की वर्षा के कारण जो मौसमी परिवर्तन आया है, इससे प्रेमी–प्रेमिका के अन्दर भी प्रेम और भोग की इच्छा जाग पड़ी है । अवध के कजरी गीतों में प्रेम के प्रतीक के रूप में 'राम' आते हैं। राम अवध की संस्कृति में प्रेम और ईश्वरत्व दोनों के प्रतीक हैं, अतएवं आध्यात्मिक भाव और प्रेम दोनों की अभिव्यक्ति के लिए कजरी गीतों का अवतरण हुआ है । निम्नलिखित गीत में एक स्त्री अपने पति की प्रशंसा अपनी सखियों से कहती है –

"अरे रामा, मोर पिया सैलनिया, खेलावैं रोज कनिया रे हारी ।
जब उई घूमइ जायँ बनरिया, हमहूँ के लै जायँ सँघरिया रामा ।
अरे रामा, पेड़ा–मलाई–रसगुल्ला, खियावैं रस–बुनिया रे हारी ।
जम्फर, साड़ी, साया लावैं, अपने हाये पहिरावैं रामा ।
अरे रामा, चूमैं गाल लै कनिया, दुलरावैं दुनौं दुनिया रे हारी ।"[29]

प्रस्तुत गीत में एक स्त्री अपनी सखियों से कह रही है कि मेरे पति बड़े सैलानी हैं, वे प्रतिदिन मुझे अपनी गोद में बैठाकर खिलाते हैं । जब वे बाजार घूमने जाते हैं तो अपने साथ हमें भी ले जाते हैं । वे वहाँ पेड़ा, मलाई, रसगुल्ले तथा रसबुनिया खिलाते हैं । मेरे पति बाजार से मेरे लिए जम्फर, साड़ी और साया लाते हैं और अपने हाथ से पहनाते हैं । वे फिर अपनी गोद में लेकर मेरे गाल चूमते और दोनों जून (अपराह्न) दुलराते हैं ।

अन्य एक कजरी गीत में कोई विरहिणी नायिका कहती है –

“हरे रामा सावन मस्त महीना छयल नाहिं आए रे हरी ।
सावन भादौ की अँधियारी, सूनी सेज हमारी रामा ।
अरे रामा तलफँड सारी रात, यार नाहिं आए रे हरी ।
सावन मास हमैं न भावैं, पिया बिना मदन सतावै रामा ।
अरे रामा करिके कौल करार यार नहिं आए रे हरी ।
संग सखी सब करै सिंगारा, गावै राग करारा रामा ।
अरे रामा केहि पर करउँ सिंगार यार नाहिं आए रे हरी ।”[30]

प्रस्तुत गीत में विरहिणी नायिका कह रही है कि सावन का महीना बड़ा मस्ताना होता है लेकिन मेरा पति अभी तक परदेश से नहीं आया । सावन तथा भादों की अन्धकारमयी रात्रि में पति के बिना मेरी सेज सूनी लगती है । मैं सारी रात अपने पति के वियोग के कारण व्याकुल थी । सावन का महीना अच्छा नहीं लगता क्योंकि इस मास में पति के बिना कामदेव बड़ा कष्ट देता है । मेरा पति प्रतिज्ञा करके, शपथ खाकर भी घर लौटकर नहीं आया । मेरी सखियाँ अपना श्रृंगार कर रहीं हैं और सुन्दर गीत गा रही हैं । परन्तु मैं किसके लिए ऊपर श्रृंगार करूँ ? मेरा निर्दयी पति तो घर लौटकर आया ही नहीं ।

5.1.2 फाग :

ऋतुराज बसंत के अवसर पर फागुन में गाये जाने वाले गीतों को फाग अथवा फागुण कहते हैं। “ ‘फाल्गुन’ शब्द ‘फल्’ धातु में ‘गुक्’ प्रत्यय लगाकर बना है । फल्गु > फग्गु > फागु > फाग । यह महीना लगभग फरवरी–मार्च में पड़ता है । फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण इस समय के गीतों को ‘फाग’ कहा जाने लगा ।”[31] “फागुन हम भारतीयों का सबसे सरस और उल्लासपूर्ण महीना है । किसान का पसीना मोती बनकर फसलों के रूप में लहराता है, धरती की नयी सज–धज मन मोह लेती है, वासंती बयार मनप्राण में पुलक भर जाती है, आम बौरा जाते हैं, महुवा मदन रस टपकाता है,

कोकिल के स्वर कानों में मधु घोलते हए हृदय की गहराइयों में उतर जाते हैं, नवोढ़ा प्रकृति का समग्र वैभव निरावरण होकर निखर जाता है।"[32] "ऐसे ही समय में आता है – होली का पर्व, जो मुक्ति और आमोद–प्रमोद का पर्व है– सामाजिक बंधनों से मुक्ति, रूढ़ियों से मुक्ति, अनेकानेक वर्जनाओं से मुक्ति। इन विभिन्न उल्लासपूर्ण भावों को जन मानस फागों द्वारा अभिव्यक्ति करता दिखाई देता है।[33] अत: फाग का सम्बन्ध बसंत ऋतु में होने वाले होली पर्व जो फाल्गुन मास में पड़ता है, के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों से है।

हर राज्य में अपने अपने रीति–रिवाजों के अनुसार अलग–अलग धार्मिक कथाएँ होली त्यौहार के साथ जुड़ी है। अवधी क्षेत्र में होली का त्यौहार पूर्ण उत्साह के साथ सम्पन्न होता है। होलिकादहन में सम्मत अर्थात् पूरा संवत्सर जल जाता है। लकड़ी, उपले, घास–फूस के ढेर, वृक्ष की डालें सभी सम्मत बाबा की चिता में भस्म होते हैं। प्राय: लोग उस राख को अपने सिर पर लगाकर धूलिवन्दन करते हैं। इस अवसर पर ढोलक, झाल के साथ धोबी, चमार और अहीरों का नृत्य देखते ही बनता है। "होलिकादहन के दूसरे दिन मिट्टी, रंग, गुलाल से होली खेली जाती है। संध्या समय फाग गाने वालों का दल गाँव का चक्कर लगाकर मुखिया के द्वार पर आता है और सामूहिक रूप में फाग गाता है। होली के अवसर पर अवध प्रदेश में गाये जाने वाले गीत होली, फाग, फगुआ और चौताल नाम से प्रसिद्ध है।"[34] होली के अवसर पर अवध प्रदेश में 'रेखता' नामक गीत भी गाए जाते हैं। रेखता अवधी क्षेत्र की अपनी निजी विशेषता है। "रेखता गानेवाले लोग हाथों में मोरछल लिए रहते हैं और गीत को ताल के साथ ही उसे दूसरे हाथ से ठोंकते रहते हैं। यह परम्परा क्यों और कैसे चली, इस संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। पर यह परम्परा अपने वर्तमान रूप में काफी क्षीण हो चुकी है।"[35]

"राम की भूमि होने पर भी अवध के बारह जिलों में जबर्दस्त होली होती है। कहते हैं – 'होरी' शब्द अवधी का है, जिसका खड़ी बोली रूप होली है। जहाँ फैज़ाबाद में 'गुबरैली' और 'डामर धूल' की होली होती है, वहाँ लखनऊ में नवाबी नजाकत और नफासत वाली होली होती है। अवध में नवाब आसिफुद्दौला वाजिद अली शाह के दरबार में होली के उत्सव को सार्वजनिक रूप से मनाने की प्रथा थी। 'मीर' ने इसका जिक्र इस प्रकार किया है –

"होली खेलत आसिफुद्दौला वजीर।
रंगे – सोहबत से अजब है खर्दो–पीर।"[36]

होली को मणिपुरी भाषा में 'याओसङ' कहते हैं। याओसङ मणिपुर का एक प्रमुख त्यौहार है। "होलिका–प्रह्लाद की पौराणिक कथा से जुड़ा होने के साथ यह बसन्तोत्सव भी है। चैतन्य महाप्रभु के

जन्म से भी इस त्यौहार का सम्बन्ध माना जाता है । चैतन्य महाप्रभु को कृष्णावतार माना जाता है, अत: होली के साथ कृष्ण एवं चैतन्य महाप्रभु का मणिपुरी होली से घनिष्ठ संबंध है ।"[37] मणिपुर में पूर्णिमा के कई दिन पूर्व ही याओसङ की तैयारियाँ होने लगती हैं । हर बस्ती में एक घास फूस की झोंपड़ी बनाई जाती है, जिसको पूर्णिमा के दिन चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति रख कर पूजा करके जलाया जाता है । "याओसङ या झोंपड़ी को जलाने से पूर्व कीर्तन किए जाते हैं तथा धार्मिक पुस्तकों से श्लोक पढ़े जाते हैं तथा महाप्रभु की मूर्ति को निकाल लिया जाता है । जब याओसङ जलती है तो हरी बोल, हे हरी के नारे गूंज उठते हैं । राख को लोग उठाकर घर ले जाते हैं और अपने ललाट पर लगाते हैं । बची हुई राख को द्वार पर सुरक्षा कवच के रूप में रखा जाता है । होली के अवसर पर रंग अबीर भी लगाए जाते हैं ।"[38] याओसङ जलाने के बाद बच्चे घर-घर जाकर पैसा माँगते हैं । इस प्रथा को 'नाक्कथेङबा' (शाब्दिक अर्थ खंभा छूना) कहते हैं । बच्चे घर के द्वार पर जाकर ये गीत गाते हैं -

यांबा मयूम चत्लुसि,
नाक्क येङ्लुसि,
लेतै नुङ्दे हायगनु,
तरेत शेङ्गाओनुङ दगी,
शे-शे लान्थोकउ,
पाबरी सान्तबा साल्हनगे
इमोम पोमदबा पोमहनगे ।

अर्थात आओ हम बड़े भाईयों के घर चलें । वहाँ चलकर 'नाक्क थेङबा' (पैसा माँगना) करें। (पैसा माँगते हुए)- भैया पैसा नहीं है, यह मत कहना अपनी थैली से निकाल कर हमें पैसा दीजिए । क्योंकि इस दान के परिणामस्वरूप आपके पुत्र नहीं है तो सुपुत्र और पुत्री नहीं है तो सुपुत्री होगी । इस गीत के माध्यम से ही हम समझ सकते हैं कि मणिपुरी समाज में पुत्र और पुत्री के जन्म में कोई भेद नहीं है।

याओसङ जलने के साथ ही बच्चे, विशेष रूप से लड़कियाँ सड़क पर चलने वालों से 'पैसा पीरो' (पैसा दो) कहकर पैसा माँगती है और प्रत्येक व्यक्ति को पैसे देने होते हैं । बच्चे घरों से चावल, सब्जियाँ और पैसे एकत्र करते हैं । दान से एकत्र किए गए सामान और पैसे से अन्त में एक भव्य सामूहिक भोज किया जाता है ।

याओसङ जलाने के पश्चात मणिपुर की घाटी में खुले मैदानों में चाँदनी रात में 'थाबल चोङबा' (चाँदनी रात में नृत्य) आरंभ होता है। युवक-युवतियाँ एक दूसरे का हाथ पकड़ कर एक वृत्त में नाचते हैं और केन्द्र में ढोलक या ढोल बजाया जाता है तथा एक गायक खड़ा रहता है जो एक पंक्ति गाता है और उसके साथ सब लोग समवेत स्वर में उस पंक्ति को दोहराते हैं इस समय गाए जाने वाले गीतों में सृष्टि कथा, पौराणिक आख्यान तथा प्रेम गीत होते हैं।

फागों का प्रचलन कबसे है, यह कह पाना कठिन है। लेकिन "लोकगीत के रूप में फाग की मौखिक परम्परा दसवीं शताब्दी से चली जो कि बारहवीं शताब्दी तक लिखित परम्परा के रूप में प्रचलन में आई। विषयवार फागों, प्रश्नोत्तरी, फागों तथा विभिन्न शैलियों की फागों का प्रचालन हुआ। फाग साहित्य की लोकप्रियता एवं उसके विकास में फड़बाजी की प्रमुख भूमिका है। काव्य क्षेत्र में जिसका प्रचलन एक विषय की रचना और समस्या पूर्ति के साथ हुआ।"[39]

डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने फाग का इतिहास के सम्बन्ध में लिखा है कि "फाग का इतिहास बड़ा गौरवास्पद है। इसका प्रचलन अपभ्रंश भाषा के विकास के साथ-साथ देखा जा सकता है। गुजराती, राजस्थानी तथा 'पुरानी हिन्दी' में जैन कवियों ने फाग गीतों की रचना प्रभूत मात्र में की थी। समकालीन अवधी और बुंदेली विभाषाओं में आज भी फाग की बड़ी व्याप्ति है। बंदेली के लोक कवि ईसरी को फाग सम्राट माना जाता है। उन्होंने प्रेम, शृंगार, नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नखशिख, प्रकृति-चित्रण, आदि अनेकानेक विषयों पर फागों की रचना की है। ईसुरी का रचनाकाल 1880 से 19 वीं के पूर्वार्द्ध तक माना जाता है। बुन्देली चूँकि बैसवारी की पड़ोसी विभाषा है, इसलिए किंचित परिवर्तन के साथ ईसुरी के फाग बैसवारा अंचल में फैल गये हैं।"[40] हिन्दी के कुछ संत भक्त कवियों के पदों को भी फाग का रूप दे दिया गया है। जैसे कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई आदि कवियों की पद शैली में थोड़ा-सा परिवर्तन करके भी फागों का गायन होता है। "कहत कबीर सुनौ भाई साधौ" बड़ी प्रसिद्ध फाग पंक्ति है।

यद्यपि फाग ऋतु गीत है, फिर भी इसमें प्रत्येक विषय से सम्बन्धित गीत सुनने को मिलते हैं। जैसे, धार्मिक, शृंगारिक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि। प्रकृति वर्णन से सम्बन्धित फागों में ऋतुओं का विशेष वर्णन मिलता है। देवी-देवताओं, राम, कृष्ण, गणेश, शिव, पार्वती, सरस्वती आदि की गाथाएँ विभिन्न फाग गीतों में देखने को मिलता हैं। रूढ़ियों, अन्धविश्वासों के विरोध एवं समसामयिक समस्याओं का चित्रण भी इन गीतों में मिलते हैं। बाल-विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, कुलटा कर्म और फूहड़ नारियों के चित्र इनमें बहुआंश में अंकित हुए हैं। फाग गायन में किसी वाद्य की आवश्यकता नहीं हैं, फिर भी कुछ लोक वाद्यों के सहारे इन्हें चित्ताकर्षक बना दिया गया है। ढोलक, झांझ, ढप,

करताल, लोटा, मंजीरा आदि के माध्यम से इस गायन को सुर–संगीत प्रदान किया जाता है ।

छन्द शैली के आधार पर फागों के कई रूप होते हैं, जैसे –

1. होरी –

होरी वसन्त ऋतु में गाया जाने वाला एक सहगान है, जिसके प्रत्येक चरण का पूर्वार्द्ध विलम्बित और उत्तरार्ध द्रुत होता है । होरी गीतों को स्त्री प्रधानगीत कह जा सकते हैं, क्योंकि इन गीतों का गायन स्त्रियाँ ही करती है । एक स्त्री गीत की कड़ी प्रारंभ करती है । अन्य स्त्री उसका अनुकरण करती है । इन गीतों में शृंगारिक, भक्तिपरक तथा सांस्कृतिक भावना से ओत–प्रोत होते हैं ।

2. चौताल–

''चौताल वसंत ऋतु में गाया जाने वाला विलंबित लय का सहगान है । चार अधात और दो खाली होने के कारण इस ताल को चौताल कहा जाता है । चौताल और होरी के छंदविधान में विशेष अंतर नहीं है । होरी के बोल टेक से ही द्रुत होते हैं किंतु चौताल के विलंबित। चौताल की विलंबित लय पुनरावृत्ति में क्रमशः द्रुत होती जाती है । स्मरणीय है कि अंतरा की परिसमाप्ति पर चौताल की लय फाग के गीतों में सर्वाधिक द्रुत हो जाती है । किन्तु दूसरा अंतरा आरंभ करते ही गायन पुनः विलंबित लय पकड़ लेते है और क्रमशः द्रुत होते–होते सम पर चरमबिंदु पर पहुँच जाते हैं । यही क्रम चलता रहता हैं ।''[41] ये गीत सुलतानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी, बहराइच आदि जनपदों में प्रमुखता के साथ गाये जाते हैं ।

3. धमार–

धमार पुरूष प्रधान गीत हैं । धमार का अर्थ है धूम मचाना या उल्लास प्रकट करना । शास्त्रीय संगीत में यह एक धीर–गम्भीर विधा है । धमार गीतों में लय ताल का विशेष ध्यान रखा जाता है । गायक एक ही कडी को निर्धारित ताल पर अलग–अलग लयों में गाते हैं । ''बैसवारा क्षेत्र में जो धमार गाया जाता है, उसकी लय अत्यन्त द्रुत होती है । यह ऊँचे स्वरों में गाया जाता है ।''[42]

4. डेढ़ ताल –

चौताल डेढ़ ताल और ढाई ताल एक ही शैली के फाग हैं । किन्तु इनके आकार क्रमशः विस्तृत होते जाते हैं । डेढ़ ताल की मुख्य पंक्ति (कड़ी) तीन बार यति लेने से पूरी होती है ।

5. ढाई ताल –

ढाई ताल का आकार डेढ़ ताल से भी बड़ा होता है । इसकी एक कड़ी पाँच बार यति लेने से पूरी होती है ।

6. उलार –

यह एक समूह गान है जो कभी भी एकल नहीं गाया जाता है । "धमार, चौताल, डेढ़ ताल और ढाई ताल के गीतों के गायन में लगभग आधे घण्टे का समय लगता है । गीत समाप्त होने के पश्चात और प्रारम्भ होने पूर्व का जो अन्तराल होता है, उसमें रस परिवर्तन की दृष्टि से इस गीत को गाया जाता है । इसका आकार लघु है किन्तु प्रभाव चुटीला होता है ।"

7. कबीर –

यह फागुन के महीने में गाया जाने वाला एक एकल–अश्लील, लघु मुक्त गीत है । डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने 'कबीर' के सम्बन्ध में लिखा है कि "होली के अवसर पर गालियों के गाने की बड़ी प्रथा है जिन्हें 'कबीर' कहते हैं । जैसे –

अररर अररर भइया, सुन लेउ मोर कबीर ।

इन गालियों को कबीर क्यों कहते हैं यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है । ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर की अटपटी निर्गुण बानी तत्कालीन समाज में लोकप्रिय नहीं हो सकी । अत: कबीर के प्रति समाज की अप्रसन्नतया आक्रोश दिखलाने के लिए ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया है ।"[43] यद्यपि इसमें अश्लील भावों एवं फूहड़ शब्दावलियों का समावेश हो गया है, फिर भी इसमें लोक–जीवन का मधुरस प्रवाहित है ।

8. चहली –

अवध प्रदेश में होलिकोत्सव के अवसर पर सवाद्य वृन्दगान के रूप में गाया जाने वाला यह लोकगीत विशेष चहल–पहल पूर्ण होने के कारण 'चहली' कहलाता है । चहली गीतों में विविध पौराणिक आख्यान उपलब्ध होते हैं, यह वाद्य यन्त्रों के साथ गाया जाने वाला एक वृन्द गान है ।

9. लेज –

'लेज' होली के अवसर पर गाये जाने वाला एक शास्त्रीय लोकगीत है । "यह होलिकोत्सव पर वृन्दगान के रूप में ढोलक, झांझ जैसे वाद्यों सहित विलम्बित स्वर से आलापपूर्वक गाया जाने वाला एक शास्त्रीय लोकगीत है ।

यथा–शम्भुसुत सुनहु विनय एक मोरि ।
मोरि विनय श्रवण कर लीजै, कहत दोउ कर जोरे ।"[44]

अवधी फाग साहित्य की परम्परा के प्रारम्भ का कोई निश्चित प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। यद्यपि अवधी फाग साहित्य की बड़ी समृद्ध परम्परा है । परन्तु फाग गीतों के कुछ रचनाकार ज्ञात है, तो कुछ अज्ञात । ज्ञात कवियों ने अपनी रचनाओं का समय नहीं दिया । डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित जी ने अवधी फाग साहित्य की सम्बन्ध लिखा है कि – "अवधी फाग साहित्य की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है, किन्तु सांस्कृतिक क्षरण के इस युग में इन गीतों के भविष्य और अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लग गया है । सिनेमाई संस्कृति और इलेक्ट्रानिक मीडिया ने सबसे बड़ी क्षति लोकगीतों को पहुँचायी है । दिनोंदिन फाग गायकों का अभाव होता जा रहा है । नयी पीढ़ी में न तो अभिरूचि है और न इसके गायन का शऊर। अब ये फाग मात्र वाचिक परम्परा के लोक–गायकों के कण्ठों में सुरक्षित हैं । बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है इसकी गायन शैली को सुरक्षित रखने का । अभी इस क्षेत्र में कई वृद्ध फाग गायक जीवित हैं, जो बड़े ओजस्वी ढंग से फागों का गायन करते हैं । उनकी गायन शैली को सुरक्षित करना बहुत आवश्यक है । आवश्यकता इस बात की भी है कि इस विद्या को जीवन्त बनाये रखने के लिए फाग गायन प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायें, जिससे इस विद्या में रूचि रखने वाले युवाओं को प्रशिक्षित किया जाये ।"[45] फाग गीत अवध के जन–जीवन के परिचायक हैं । इनका गायन प्राय: मस्ती एवं जोश से परिपूर्ण होता है । फाग के गीतों की विषयवस्तु शृंगारिक (और एक सीमा तक अश्लील भी) होती है। फागों का गायन प्राय: सांध्य बेला में ही होता है । घर–गृहस्थी, खेती तथा जीवन के दैनिक कार्यो के समापन के बाद निश्चिन्त होकर जन समूह इन गीतों का गायन करता है।

अवध के फागों में दाम्पत्य जीवन की झांकी देखने को मिलते हैं । जैसे –

"चलौ, चली अटरिया भगि पिया,
बरसै लागी कारी बादरिया ।
डेषिया भीजै तौ भोजन देउ ।
कजरा लै चल बचाय पिया बरसै. ।
सेंदुरा भीजै तौ भीजन देउ ।
बेदिया लै चल बचाय पिया, बरसै. ।
लहँगा भीजै तौ भीजन देउ ।
चोलिया लै चल बचाय पिया, बरसै. ।"[46]

प्रस्तुत गीत में एक स्त्री अपने पति से कहती है कि – चलो हम लोग अटारी पर भाग चलें, क्योंकि काली बदली पानी बरसने लगी। यदि डिबिया भीगती है तो उसे भीगने दो लेकिन उसमे रखे हुए काजल को बचाकर ले चलिए। फिर पति से कहती है कि यदि सिन्दूर भीगता भी है तो भीगने दो लेकिन बिन्दी बचाकर ले चलिए । अत: यह भी कहती है कि यदि लहँगा भीगना है तो भीगने दो परन्तु चोली बचाकर ले चलिए।

होली उमंग और उत्साह का त्यौहार है। अत: इस अवसर के गीतों में एक विशेष प्रकार की मादकता रहती है। लेकिन होली में जहाँ एक ओर उल्लास और उमंग की लहर दिखाई पड़ती है, वहीं दूसरी ओर विरह वेदना के चित्र भी देखने को मिल जाते हैं। किसी नवयौवना स्त्री का पति विदेश चला गया है और वह समय पर लौटकर नहीं आया। इसलिए स्त्री गा उठती है –

"तुम बिनु यह हाल हमारे, प्रानपति प्यारे ।
हेरत पंथ रहत निसि वासर घूंघट कर पट टारे ।
तुम नहि देखि परत कहुं औचक हम तरसति हृदय मंझारे ।
मृदु मुकुकनि सावंलि सूरत कलम नयन रतनारे ।
आठ पहर दिल से नहिं भूलत नहि रहत बनत तुर द्वारे ।
पलक एक छिन बिसरत नाहीं काह कहौं दुख सारे ।
काहे न ख्याल करत तुम प्रीतिम मोहि केहि अपराध बिसारे ।
हम अब लोक लाज सब त्यागब लागब संग तुम्हारे ।
द्विज छोट कुन कहे होत सकल सुख चरम सरोज लिहारे ।
प्रान प्रति........।
तुम बिनु यह हाल हमारे प्रानपति प्यारे ।"[47]

एक अन्य फाग गीत में एक विरहिणी स्त्री पपीहे से कहती है –

"मोहि बिरहिन काँ, काहें मोरे पपिहरा ।
बोली की गोली से मारै ।
एक तो बैरिन घर सासु ननदिया,
दूजे रगर करै बाहर सबतिया ।
तेहपर, तुझहू जरे पर जारै,

बोली की गोली से मारै ।
बेदर्दी पिया गौना मोरा लाये,
बाँकी सुरतिया न कबहूँ देखाये ।
तूँ पिया पिया कहिके जिगर मोरा फारै,
बोली की गोली से मारै ।"[48]

प्रस्तुत गीत में एक विरहिणी कहती है – ऐ पपीहे ! मुझ विरहिन को क्यों बोली से मार रहा है? एक तो घर में बैरिन सास–ननदें हैं, दूसरे बाहर सौत ईर्ष्या–द्वेष करती है, उस पर तू भी जलाता है । निर्मम प्रिय मेरा गौना तो ले आया, पर अपनी सलोनी सूरत कभी नहीं दिखायी । ऊपर से तू प्रिया–प्रिया कहकर मेरे हृदय के टुकड़े कर रहा है ।

बहुत से पति जीविका उपार्जन करने के लिए दूर चले जाते हैं और पत्नी से कहकर जाते हैं कि मैं अमुक समय पर घर आऊँगा. परन्तु नौकरी या किसी अन्य अड़चन के कारण वे उक्त समय पर नहीं पहुँच पाते तो पत्नी बड़ा कष्ट होता है । निम्नलिखित फाग गीत में किसी परदेसी पति की विरहिणी स्त्री के कष्टों को अपनी साखी से बताती है –

"मोसे करि गयो कौल करारा, गयो हो पिय प्यारा ।
बीते माघ लवटि घर आउब, फागुन के अंधियारा ।
सोई गयो बीति परतीति के औसर, नाहि मानत जियरा हमारा, गयो. ।
गावन गीत सबै सखियां मिलि, बाजल ढोल चिकारा ।
सो सुनि सूल होत उर अन्तर, नहिं मानव जिअरा हमारा, गयो. ।
कारन कवन कन्त नहिं आये, सुरति मोरि बिसराये ।
केकरी प्रीति रीति रस बस भये, सजनी हमरे बनजारा, गयो. ।"[49]

प्रस्तुत गीत में एक स्त्री अपनी सखी से कहती है कि मेरे प्रियतम मुझ से कौल–करार करके चले गये थे । उन्होंने कहा था कि मैं माघ के बीतने पर घर लौट आऊँगा, फागुन में अँधेरा हो गया है । वे मुझे भूल गये । मेरा जी नहीं मानता । मेरी सभी सखियाँ मिलकर गा रही हैं, ढोल और चिकारे बज रहे हैं । उन्हें सुनकर हृदय में पीड़ा होती है, हमारा जी नहीं मानता । किस कारण से मेरे पति नहीं आये, मेरी याद भूल गये, हे सखी ! वे किसकी प्रीति रीति के वशीभूत हो गये?

फाग गीतों मे श्रृंगारिकता एवं भोग की प्रवृत्ति भी मिलती है । प्रेमी–प्रेमिका को रंगों से रंगकर तथा गुलाल मलकर अपनी इच्छापूर्ति करता है, प्रेम–प्रदर्शन करता है । बदले में प्रेमिका भी प्रेमी को

इसी प्रकार उपकृत करती है । यह प्रेम–प्रदर्शन पति–पत्नी, देवर–भाभी आदि के बीच भी होता है । अवधी के एक फाग गीत में एक नायिक अपने नायक से मिलने के लिए श्रृंगार करती है –

"एक फूल फूलै खड़ी दुपहरियाँ,
दूसर फूल फूलै आधी राति हो गोरिया ।
फुलवा बिनि–बिनि मैं रसा गराया,
हौदा भरा रस होय हो गोरिया ।
वही रसा कै मैं चुनरी रँगायों,
चुनरी भई रँगदार हो गोरिया ।
चुनरी पहिरि मैं ओलर्‍यों ओसरवाँ,
पियवा कै मन ललचाय हो गोरिया ।
चोर की नई पिया छिपि कै आवैं,
गोरी के जियराँ हुलारन हो गोरिया ।"[50]

प्रस्तुत गीत में एक वासकसज्जा नायिका अपने नायक से मिलने के लिए श्रृंगार करती है, वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती है । नायिका फूलों के रस में चटकीली चूनर रँगकर पति को आकृष्ट करने के लिए पहनती है, पहनकर लेटी हुई प्रिय की प्रतीक्षा करती है । उसकी मनोवांछा सिद्ध होती है, प्रिय का मन उसे देखकर ललचा उठता है और वह चोरों की भाँति छिपकर उससे मिलने आता है ।

"भारतीय साहित्य में राधा और कृष्ण अमर प्रेमी के रूप में ख्यात हैं । कृष्ण तथा गोपिकाओं की प्रेमकथा का वर्णन कई महान कवियों ने किया है । इसलिए, होली गीतों में मुख्यतया इन्हीं दोनों के बीच होली खेलते के प्रसंग का वर्णन मिलता है ।"[51] इस सम्बन्ध में डॉ. सरोजनी रोहतगी लिखती है कि – "होली गीतों में राधा–कृष्ण की होली का वर्णन ही विशेष रहता है, पर अवध क्षेत्र में राम, सीता और शिव को भी होली खेलते दिखाया गया है । पवनसुत हनुमान भी लंका में होरी की धूम बचाते पाए गए है । राम के बाल रूप का सुन्दर वर्णन ढोलक और झांझ के साथ होली गीतों में मिलता है ।"[52] निम्नलिखित होली गीत में सरजू तट पर राम सीता होली खेल रहे हैं –

"सरजू तट खेलैं होरी, सरजू तट ।
चारिउ भइया आजु खेलैं होरी सरजू तट ।
केहिके हाथ म सोहैं पिचकारी

कैकिके हाथ अबीर की झोली । सरजू तट...।।

राम के हाथ सोहै पिचकारी,
सीता हाथ अबीर की झोली । सरजू तट...।।

केहिके हाथ रंग गुलाल,
केहिके संग सखिन की होली । सरजू तट...।।

चारिउ भाय के हाथ रंग गुलाल,
सीता संग सखिन की टोली । सरजू तट...।।"[53]

उपयुक्त गीत में 'धुरेरी' के दिन का सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया गया है । यहाँ सखियों के रूप में सभी युवतियों तथा राम रूप में सभी युवकों का मनोहारी वर्णन किया गया है ।

5.1.3 बारहमासा :

बारहमासा वह गीत है, जिसमें वर्ष के बारहमासों का वर्णन प्राय: विरहिणी द्वारा किया जाता, जिसमें प्रत्येक मास के प्राकृतिक दृश्यों तथा विशेषताओं के साथ-साथ विरह-व्यथा एवं विरहिणी की विवशता वर्णन मिलता है । डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने बारहमासा के सम्बन्ध में लिखा है कि - "पावस ऋतु में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं । इन गीतों में विरहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है । जीविकोपार्जन के लिए पति परदेश चला गया है । बरसों से लौटकर नहीं आया है । वर्षा का दिन है, छप्पर चू रहा है, परन्तु कोई उसको छाने वाला नहीं है । ऐसी दशा में विरहिणी वेदना की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है और उसकी मनोव्यथा बारहमासे के रूप में प्रकट होती है । इन गीतों में पति के वियोग के कारण बारह महीनों में जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन होता है । अत: इन्हें 'बारहमासा' कहते हैं ।"[54] अत: बारहमासा गीतों में विरह व्यथा की भावनायें ही अधिक प्रतिबिम्बित होती हैं । विरहिणी की विरह व्यथा और प्रकृति के उद्दीपन विभावों की यहाँ मार्मिक अभिव्यक्ति होती है ।

बारहमासा गीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है । अनेक सन्त कवियों ने बारहमासा गीत का गायन किया है । वीर गाथा काल में बीसलदेवरासो में राजमती का बारहमासा प्रसिद्ध है । डॉ. उपाध्याय

ने बारहमासे की परम्परा की सम्बन्ध लिखा है कि– "हिन्दी साहित्य में बारहमासा लिखने की परम्परा बड़ी प्राचीन है । सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि जायसी ने नागमती के विरह–वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है । ऐसा ज्ञात होता है कि जायसी से बहुत पहले ही लोक–गीतों के रूप में बारहमासे प्रचालित थे । जायसी ने उसी परम्परा का अनुसरण अपने काव्य में किया है । जायसी ने नागमती का वियोग वर्णन आषाढ़ मास से प्रारम्भ किया है और ज्येष्ठ मास में इसकी समाप्ति की है । प्रत्येक महीने में होने वाले विरहजन्य प्रकृति का वर्णन इस कवि ने तल्लीनता के साथ किया है । जायसी के पश्चात् अनेक सन्त–कवियों विशेषकर भोजपुरी सन्त कवियों ने बारहमासा लिखा है, जिसमें विरहिणी के दु:खों की मार्मिक व्यंजना उपलब्ध होती है ।"[55] बारहमासा गीतों को गाने का प्रचलन लगभग हिंदी के सभी बोलियों – मालवी, मैथिली, भोजपुरी तथा अवधी आदि में है । बंगला में बारहमासा गीतों को गाने का प्रचलन है । बंगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं । लेकिन मणिपुरी समाज में बारहमासा गाने का प्रचलन नहीं है ।

बारहमासा गीतों की रचना पारंपरिक रूप से प्राचीन काल से चली आ रही है, लेकिन आज पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्प्रभाव से इन गीतों की आत्मा मरती जा रही है । आधुनिक युग में नये बारहमासा गीतों की रचना तो समाप्तप्राय है किन्तु ये गीत इतने अधिक रोचक और हृदय स्पर्शी हैं कि आज भी परम्परा निर्वाह के रूप में वर्षा ऋतु में इन्हें गाने का प्रचलन है । बारहमासा गीतों में न केवल विरहिणी स्त्री की मनोदशाओं का वाणी मिली बल्कि अंचल विशेष की पूरी संस्कृति और सभ्यता का चित्रण भी मिलता है । बारहमासा के अन्तर्गत 'छहमासा' और 'चौमासा' लोकगीत भी आ जाते हैं ।

छहमासा :

छहमासा गीतों में छह मासों का वर्णन होता है । वर्ण्य विषय बारहमासा गीत की भाँति ही होता है अन्तर केवल इतना होता है कि छहमासा गीत में छ: मास का ही उल्लेख रहता है ।

चौमासा :

चौमासा गीतों में वर्षा के चार महीने – आषाढ़, सावन, भादौ और क्वार का लोकमानस के अनुरूप चित्रण किया जाता है । डॉ. हिरालाल तिवारी ने चौमासा की सम्बन्ध में लिखा है कि – "बारहमासे का एक लघु रूप चौमासा भी उपलब्ध है । चौमासा में आषाढ़ से कुवार अथवा सावन से कार्तिक तक की प्रकृति का विरहिणी के मन पर प्रभाव चित्रित किया जाता है ।"[56]

बारहमासा, छहमासा तथा चौमासा गीतों के वर्ण्य विषय में प्रकृति का उद्दीपन के रूप में

चित्रण होता है। साथ ही विरहिणी स्त्री की विविध दशाओं, मनोदशाओं पर विशेष प्रकाश डाला जाता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण 'बारहमासा' ऋतुगीतों में यह बड़ा लोकप्रिय है और साहित्य के क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

अवधी क्षेत्र में बारहमासा गाने की परम्परा काफी प्राचीन है। अवधी क्षेत्र में प्राय: आषाढ़ मास से इस का गायन प्रारम्भ हो जाता है और सभी महीनों की विचित्र मनोदशाओं का क्रमश: उल्लेख किया जाता है। किसी विरहिणी स्त्री के लिए बारहों महीने का प्रत्येक क्षण बड़ा ही कष्टकारी और गम्भीर अनुभूतियों और मनोवेदनाओं से युक्त होता है। विरहिणी स्त्री अपने पति का स्मरण कर अहर्निश रोती–कराहती रहती है। अत: विरहिणी के बारहों मास के कष्टमय जीवन की मार्मिक अनुभूतियों तथा मनोवेदनाओं की विवृत्ति इन गीतों में चित्रित होती है। अवधी के एक बारहमासा गीत में विभिन्न महीनों में अनुभूत किसी विरहिणी स्त्री के कष्टों का वर्णन किया गया है –

"लोग हइ पूस जिअरा भये दुइ टूक;
जरइ नइहर क रहनवाँ, अरे साँवलिया।
लागे हइँ माघ जिअरा होइ गये वेहाल;
जाड़ा मरउँ बिनु ओढनवाँ अरे साँवलिया।
लागे हई फगुनवाँ घरवा नाहीं मोर देवरवा;
के संग खेलउँ फगुनवाँ, अरे साँवलिया।
लागे हइँ चइतवा पिया होई गये डकइचवा ;
केतना सहउँ ओरहनवा, अरे साँवलिया।
लागे हइँ बइसाख, सोवई सवती के साथ;
नाहीं मानइ मोर कहनवा अरे साँवलिया।
लागे हइँ जेठ पिता पुरवइँ आपनि टेक;
साड़ी भोजथ पसिनवां अरे साँवलिया।
लागे हइँ असाढ़ देव वरसई मूसलधार;
गोरी भीजथि अँगनवाँ अरे साँवलिया।
लागे हइ सावनवाँ गोरी झूलथि पलनवाँ;
गोद लिहीं हइं ललनवाँ अरे साँवलिया।
लागे हइँ भगवना गोरी झटकइ आपन केस;

मुख देखई दरपनवाँ अरे साँवलिया ।
लागे हइँ कुआर सँइआँ बइठें हइ दुआर;
कइसे निकरउं समनवां अरे साँवलिया ।
लागे हइँ कतिकवा घरवा नाही मोर पियवा;
केहि पर करउँ मइँ सिंगरवा अरे साँवलिया ।
लागे हइँ अगहनवा, बिनु पिया अनमनवा;
अब कइसे काटइँ दिनवा, अरे साँवलिया ।"[57]

प्रस्तुत गीत में विरहिणी स्त्री का कहना है –

पूस का महीना लग गया । पति वियोग के कारण मेरा हृदय दो टुकड़ों में हो गया । ऐ सांवलिया! अब मायके में निवास करना मुझे आग के समान जला रहा है । अब माघ का महीना लग गया । मेरा हृदय विह्वल हो गया है । ओढ़ना के बिना मैं जाड़े के मारे मर रही हूँ । अब फागुन लग गया, मेरा देवर घर मे नहीं है । अब मैं किसके साथ फागुन खेलूँगी । अब चैत का महीना आ गया । मेरा पति परदेसी हो गया है । अब मैं कितने दिनों तक उलाहना सहूँगी । अब वैसाख का महीना आ गया । मेरा पति मेरी सौत के साथ परदेश में सो रहा है । वह घर लौट आने की मेरी विनती को नहीं सुनता । अब जेठ का महीना आ गया । मेरा पति अनेक वर्षों तक परदेश में रहने की अपनी टेक को निभा रहा है । गर्मी की भीषणता से पसीने के कारण मेरी साड़ी भीज रही है । आषाढ़ का महीना आ पहुँचा । अब दैव मूसलाधार वर्षा करने लगे हैं । मैं गोरी आँगन में भीज रही हूँ । अब सावन का महीना लग गया । गोरी अपनी गोदी में बालक को लेकर पालने में झूला झूल रही है । अब भादो का महीना आ गया । गोरी अपने बालों को झटक रही है और अपने मुख को शीशे में देख रही है । भादो के महीने में पति परदेस से आ गया । अब कुआर का महीना आ गया । मेरा प्रियतम घर के द्वार पर बैठा हुआ है । मैं उसके सामने कैसे निकलूँ । परन्तु कार्तिक का महीना आते ही पति परदेश चला गया । अब वह घर पर नहीं हैं। अत: मैं किस के लिए शृंगार करूँ अथात् किसको प्रसन्न करने के लिए आज साज शृंगार करूँ । अब अगहन का महीना आ गया । प्रियतम के बिना मेरा मन बड़ा उदास है । ए साँवलिया! अब मैं अपने दिन कैसे काटूँगी ।

एक अन्य गीत में प्रत्येक मास का क्रम से वर्णन रहता है तथा विरहिणी स्त्री इन्हीं प्रत्येक मास के उपक्रमों को लेकर प्रवासी प्रियतम के स्मरण में अपने दु:खों का वर्णन करती हुई दृष्टिगोचर होती । गीत इस प्रकार है –

"प्रात में कातिक परा है तुसार ।
मोहिं छोड़ि कन्त भये बनिजार ।
मैं न झूलिहौं ।।

अगहन मासा जो अग्र सनेह ।
चलु गोरिया नैहर अपनेह ।
पान फूल ले कापड़ चीन्ह ।
कन्त बिछोह दई दुख दीन्ह ।
मैं न झूलिहौं ।।

पूस मास पिया बरस तुम्हार ।
मैं बरती पाँचौं अवतार ।
न्हाय खोरि कै देहुँ असीम ।
जीवहु कन्त तूँ लाख बरीस ।
झूलने तुम जाव रे सबै सखी ।
मैं न झूलिहौं ।।

माघ मास घन परा है तुसार ।
काँपई हाथ और काँपई गात ।
काँपई पाट तुरँगहि खाट ।
कि मैं नाहीं जैहौं झूलने तुम जाव ।
मैं न झूलिहौं ।।

फागुन मास बहै फगुनी बयार ।
तरूवर पात सबै झरि जाय ।
जो मैं जनतिउँ फगुनी बयार ।
हरि जू को रखतिऊँ अंग छिपाय ।
मैं न झूलिहौं ।।

चैत मास बन फूले हैं टेसु ।
गोरिया ने पठई है पिया को सनेसु ।
सुनि कै सनेसु पिया अजहूँ न आय ।

ए दोनों नैना रोय गँवाय ।
मैं न झूलिहौं ।।

जेठ मास बरसाईत होय ।
बर पूजन निकरी सब लोय ।
आँखि से अधरा कजरवा क रेख ।
फिर–फिर कन्त मोर मुख देख ।
मैं न झूलिहौं ।।

आषाढ मास असाढ़ी जोग ।
घर घर मन्दिर सजैं सब लोग ।
चिरई चिरंगुल खोता लगाय ।
हमरा बलमु परदेस में छाय ।
मैं न झूलिहौं ।।

सावन मास में अधिक सनेह ।
पिय बिन भूल्यों देह औ गेह ।
पहिरी है कुसुमी उतारी है चीर ।
पिया बिन सोहै न माँग सेन्दुर ।
मैं न झूलिहौं ।।

भादों मास राति अन्हियार ।
सूझै नाहीं आर औ पार ।
अपनी महल डरै जिया मोर ।
कन्त बिना कहाँ पावौं ठौर ।
मैं न झूलिहौं ।।

कुवार मास सब भेर बखार ।
पिय अगुवानी का त्योहार ।
पहिरौं रंग बिरंगी चीर ।
पुलकै मोरा सगरो सरीर ।
अब मैं झूला झूलोंगी ।"[58]

प्रस्तुत बारहमासा गीत में एक विरहिणी स्त्री कहती है कि– "कार्तिक महीने में मेरे मन तुषार पड़ गया। मेरे पति मुझे छोड़कर परदेश चले गये। मैं झूला नहीं झूलूँगी ।

अगहन महीने में स्नेह आगे होता है । मुझ गोरी को मायके जाना है । पान फूल मिला, वस्त्र–आभूषण मिला, पर प्रिय ने विछोह का दु:ख दे दिया । मैं नहीं झूलूँगी ।

पूस महीने में हे प्रिय ! तुम्हारी कुशलता के लिए मैं पूस के पाँचों रविवारों का व्रत रखती हूँ । नहा–धोकर हे प्रिय ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हें लाख वर्ष की आयु मिले । हे सखियो ! तुम सभी झूलने जाओ, मैं नहीं जाऊँगी ।

माघ महीने में घना तुषार पड़ा है । हाथ काँप रहे हैं । पूरा शरीर काँप रहा है । पाट (आसन) काँप रहा है, खाट ऐसे काँप रही है जैसे तुरंग (घोड़ा) । मैं झूला झूलने नहीं जाऊँगी । तुम सभी जाओ, मैं नही जाऊँगी ।

फागुन महीने में फागुनी बयार बह रही है । वृक्षों के सभी पत्ते झड़ गए हैं । हे फागुनी बयार! यदि मैं जानती कि फागुन में ऐसा होता है तो मैं हरि जी को अपने अंगों में छिपाकर रखती, जिससे उनके शरीर के ऊपर तुम्हारी बयार का प्रभाव नहीं पड़ता । मैं झूला नहीं झूलूँगी ।

चैत महीने में वन में टेसू फूले हैं । गोरी ने प्रिय को सन्देश भेजा है । सन्देश सुनकर भी प्रिय अभी तक नहीं आये हैं । मैं अपने दोनों नेत्र रो–रोकर गँवा रही हूँ । मैं नहीं झूलूँगी ।

बैशाख महीने में बहुत अधिक शुभ संस्कार होते हैं । जिनका बचपन में विवाह हो गया है, उनका गौना आना है । किसी का विवाह होना है । मड़वे छाये जाएँगे, गीत गाये जाएँगे । पर मेरा समय तो अपने कन्त की राह देखते बीतेगा । मैं झूला झूलने नहीं जाऊँगी, मैं नहीं झूलूँगी ।

जेठ महीने में वर अमावस्या (वट–सावित्री) व्रत होगा । वट–वृक्ष की पूजा करने के लिए सभी सुहागिन स्त्रियाँ निकलीं हैं। मेरी आँखों से बहते आँसुओं के साथ काजल की रेखा अधरों तक आ गयी है । हे प्रिय ! तुम लौट आओ, लौट आओ । मेरा मुख देख लो । मैं नहीं झूलूँगी ।

आषाढ़ मास में आषाढ़ी योग है । सब लोग घर–द्वारा सजा रहे हैं । चिड़िया–चिरंगुल भी घोंसले बना रहे हैं । मेरा पति परदेस में बसा है । मैं नहीं झूलूँगी ।

सावन मास में स्नेह अधिक बढ़ जाता है । प्रिय के बिना देह और गेह (घर) की सुध बिसर गयी। कुसुम रंग की चूनर फीकी लगती है । मैंने उतार दी है । प्रिय के बिना माँग का सिन्दूर भी शोभा नहीं देता। मैं झूला नहीं झूलूँगी ।

भादों महीने की अँधेरी रात है । आस–पास कुछ भी नहीं सूझ रहा है । अपने महल में मेरा मन डर रहा है । प्रिय के बिना मुझे कहाँ ठौर है ? मैं नहीं झूलूँगी ।

क्वार मास में सब बखार अनाज से भर गये हैं। प्रिय के आगमन का त्यौहार आ गया। मैं रंगबिरंगी चूनर पहन रही हूँ। मेरे सारे शरीर में पुलक भर गयी है। अब मैं झूला झूलूँगी।"[59]

एक छहमासा गीत प्रस्तुत है जिसमें चैत माह से लेकर भादों माह तक उल्लेख किया गया है –

"दूर दियस मोर बलमा बसत है, कब सुधि लेहौ रे हमार रे रामा
चैत मास सबके गेहुआँ कटत हैं, सब करै खेत खलिहनवा रे कमवां
दूर दियस मोर बलमा बसत है, को रे भले खलिहनवां रे रामा
दूर दियस...।
बैसाख मास गारिया गहन गढ़ावे, और मंगावै चुनरी ओ लहंगा
दूर दियस मोर बलमा बसत है, को रे लई आवे चुनरी रे रामा
दूर दियस....।

जेठ मास चलै लूक बयरिया, अपने पिया का डुलावे रे बेनिया
दूर दियस मोर बलमा बसत है, केहिका डोलावौउ बेनिया रे रामा
दूर दियस....।

असाढ़ मास पड़ै रिमझिम बुन्दियां, गोरिया तो सोवे बलमा सेजरिया
दूर दियस मोर बलमा बसत है, इक टक निहारू रे बाट रे रामा
दूर दियस....।

सावन बरसै भादों रे गरजे, टपके रे कोठरी हमार रे
दूर दियस मोर बलमा बसत है, को रे छवावै छपरा हमार रे रामा
दूर दियस....।"[60]

प्रस्तुत गीत का भावार्थ इस प्रकार है– एक स्त्री का पति जीविका के लिए काफी समय से परदेश गया है और वह उसके वियोग में व्यथित है। चैत का महीना आ गया है, किसान गेहूँ की फसल काट कर खलिहान में रख रहे हैं। विरहिणी स्त्री को चिन्ता हो रही है कि उसका पति परदेश में हैं, उसके खेत का गेहूँ कौन काटे। बैसाख मास का आगमन हो गया है, ग्रामीण लोग बाजार में खरीदारी करते हैं। स्त्रियाँ गहने गढ़वाती हैं, कपड़े बनवाती हैं लेकिन परदेसी पति की पत्नी के गहने तो दूर उसकी चुनरी कौन लाकर देगा। जेठ माह की गर्मी में स्त्रियों को अपने–अपने पति को पँखा झलने का अवसर प्राप्त है लेकिन विरहिणी स्त्री इससे वंचित है। अब भादों माह का आगमन हो गया है। सावन भादों में

अधिक वर्षा होने के कारण विरहिणी पत्नी को कुछ ज्यादा ही कष्ट मिलता है, पति के परदेश में होने के कारण उसका टपकता हुए छप्पर कौन छवावें ।

एक अन्य गीत में विभिन्न महीनों में अनुभूत किसी विरहिणी स्त्री के दु:खों का वर्णन मिलता है :-

"आषाढ़ मास घना घन गरजै,
रिम झिम लगा सँवनवाँ ना ।
भादौ मास बिजुलिआ चमकै,
हरि का देखा सपनवाँ ना ।
कुआर मास कुँअर पख लागे,
कातिक दीपक लेसनवाँ ना ।
अगहन मास सुदिन का महिनवाँ,
सब सखी चली गवँनवाँ ना ।

पूस मास माँ परै तुसारा,
माघइ काँपइ करेजवा ना ।
फागुन मास देवर घर नाहिं,
केहि सँग खेलउँ फगुनवाँ ना ।
चइत मास बन टेसु फुलतु हइं,
बइसाखइ लिखइँ अवनवाँ ना ।
जेठ मास चलइ धूप काला,
सिर से ढुरइ पसिनवाँ ना ।"[61]

प्रस्तुत गीत में एक विरहिणी स्त्री कहती है कि आषाढ़ के महीने में बादल जोरों से गरजते हैं और सावन में पानी रिमझिम रिमझिम बरसने लगता है । भादों में बिजली जोरों से चमकने लगती है । इसी मास में मैंने अपने पति के आने का सपना देखा है । कुआर के महीने में पितृ पक्ष होता है और कार्तिक में आकाश दीप जलाया जाता है । अगहन का महीना बन्धुओं के आने-जाने के लिए बड़ा शुभ माना जाता है । इसलिए मेरी सारी सखियों का गौना हो गया और वे अपनी ससुराल चली गईं । पूस के महीने में बड़ी ठण्डक पड़ती है और माघ मे जाड़े के मारे कलेजा काँपने लगता है । फागुन के मादक मास में तो देवर घर पर है नहीं, अब मैं किसके साथ होली खेलूँ । अब चैत का महीना आ गया है, टेसू का फूल वन में खिलता है । वैसाख के महीने में प्रियतम ने अपने घर आने के बारे में लिखा है । जेठ में धूप बड़ी

तेज होती है। सिर से पसीना सदा गिरता रहता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बारहमासा, छहमासा, चौमासा गीतों में अधिकतर विरहिणी स्त्री का विरह ही वर्णित किया जाता है, परन्तु कभी–कभी अन्त में पति का आगमन होता है और पत्नी की सारी आशाएँ –अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती है।

5.1.4 चैता :

चैत मास में गाये जाने वाले गीतों को 'चैता' या 'चैती' कहा जाता है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा के फाग की समाप्ति के बाद, चैती गायन प्रारम्भ होता है, जो चैत मास की पूर्णिमा तक चलता है। इसके बाद चैत की विदाई के साथ ही चैती भी विदा हो जाती है। चैता दक्षिणी बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों का एक विशिष्ट ऋतु गीत है। "यों चैत मास में विभिन्न पर्वों से संबंधित गीत भारत के अन्य प्रान्तों में भी गाये जाते हैं। किन्तु अपनी विशिष्ट शैली में चैती के इन पदों की स्थानीयता निश्चय ही सीमित है।"[62] भोजपुरी क्षेत्र चैता की सबसे विस्तृत भूमि है। अवधी, मगधी और मैथिली क्षेत्र में भी इसका महत्व है।

'चैता' ऋतु गीतों के क्षेणी में आ जाते हैं, जिन्हें 'मौसमी गीत' भी कहा जा सकता है। "वसन्त आता है तो मन–प्राण पर छा जाते हैं बसन्त के रसीले गीत। इसे ऋतु–परिवर्तन भी कहा जा सकता है। इसी समय फसल काटी जाती है। चैत का महीना भी ग्रामीणों के उत्सव का महीना है। बसन्त पंचमी के दिन से रंग अबीर भरे गीत गूँजते हैं। चौपाल धमार से गूँज उठता है। फाल्गुन पूर्णिमा की रात को होली के गीतों की समाप्ति होती है और उभर आते हैं चैती के स्वर।''[63] फाल्गुन और चैत को क्रमशः पुरूष और नारी का प्रतीक माना गया है। होली में पुरूष और स्त्री की आपस की हँसी–ठिठोली सामान्य रूप से वर्णित है, किन्तु चैता पूर्णरूपेण नारी का प्रतीक प्रतीत होता है। चैता गीत में प्रायः पुरूष के प्रति नारी की प्रेमानुभूति व्यक्त होती है। चैता गीत में प्रायः स्त्री की ओर से ही निवेदन होता है। इसी कारण चैता गीतों में लालित्य भी अधिक मिलता है। "शीत के चार महीनों में चैत्र का महीना अन्तिम माना जाता है और इस माह का जाड़ा इतना प्रसिद्ध है कि इसके संबंध में एक कहावत प्रचलित है– एक ब्राह्मण को बछिया बेचकर कम्बल खरीदना पड़ा। जिस प्रकार दिया बुझने से पहले लौ एक बार जोरों से जलती है, उसी प्रकार जाड़े की विदाई के पूर्व एक बार शीत का रंग और गहरा हो जाता है। इस मौसम में जिसे 'मधुमास' भी कहते हैं, प्राणिमात्र विशेष रूप से श्रृंगारप्रिय हो उठता है। मधुमास मात्र प्रकृति में ही नहीं आता, जनमानस पर भी छा जाता है और ऐसे में नारी की ओर से प्रणय की बातें निश्चय ही पुरूष–हृदय को पुलकित करने लगती हैं।''[64] चैत मास में खेतों में फसलों की कटाई के बाद किसान निश्चिन्त और उत्सव की मानसिकता में होता है। इस पूरे माह उस पर चैता की

मस्ती छाई रहती है। यद्यपि चैता गीतों में नारी भावना की प्रधानता है, परन्तु मुखर होता है वह पुरूष स्वर में भी। "चैती के छन्द में प्रत्येक अन्तरे में दो पंक्तियाँ होती हैं। इसके गायन में, लगभग प्रत्येक पंक्ति के आरम्भ में अधिकतर 'रामा' या 'हो रामा' जोड़ा जाता है। किन्तु पंक्ति के अन्त में 'हो रामा' तो अवश्य ही आता है। कुछ छन्दों में दूसरी पंक्ति के प्रथम पद की आवृत्ति पंक्ति के गायन के पश्चात पुन: होती है। यह एक मधुर कर्णप्रिय गायन है, चैती के गायन का प्रारम्भ दीपचंदी चॉचर (लोकगीतों में विशेषत: प्रचलित) लय से होता है। अस्थाई की आवृत्ति के बाद, अंतरे की मुख्य लय भी वही रहती है। अन्तरे के अस्थाई से जुड़ने के पहले लय द्रुत कहरवे में परिवर्तित हो जाता हैं और सम पर आकर पुन: दीपचन्दी में आ जाता है।"[65] चैता गीत के विकास के सम्बन्ध में कोई निश्चित इतिहास नहीं मिलता। यह एक विशुद्ध लोक-गायन है। चैती के साहित्यिक विकास के क्रम में हम देखते हैं कि चैती के जो गीत मौखिक परम्परा से प्रचलित हैं, उनमें शृंगार रस का पुट अधिक है तथा नारी भावना का प्राधान्य है। कालान्तर में इन गीतों में धार्मिक भावना तथा अन्य विषयों का प्रवेश भी हुआ। जैसे चैत में रामजन्म, शिव-पार्वती के संवाद, कृष्ण की लीला आदि विषयों ने भी इन गीतों में स्थान पाया। धीरे-धीरे जब चैती का प्रसार काफी होने लगा तो गीतों में भी परिवर्तन हुआ। मात्र बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ही यह प्रचलित है। बिहार के दक्षिण भाग में इसका विशेष प्रचार है। धुनों की यात्रों के साथ यह मिथिला पहुँची और वहाँ चैती गीत प्रचलित हुए। भोजपुरी एवं मगही के चैती गीतों का भाव लेकर कुछ विषय परिवर्तन के साथ उनके यहाँ मैथिली भाषा के गीत प्रचार में आये। निश्चय ही ये रचनाऐं नई होंगी। 18 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में 'बुलाकी दास' ने चैता गीतों की रचना की, जिनका संकलन 'चैती-घाटोपाद' बहुचर्चित है। संत साहित्य में भी चैता गीतों की शैली मिलती है। सन् 1731 के दरिया साहब की एक घाँटो रचना में चैता गीत उपलब्ध है। सन् 1846 में पटना में एक उर्दू कवि सैयद अली मुहम्मद 'शाह' हुए, जिन्होंने 'वलीय' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में एक चैती गीत भी है। गीत द्रष्टव्य है-

"काहे अइसन हरजाई हो रामा
तोरे जुलुमी नयना तरसाई हो रामा
सास ननद मोका ताना देत हुई
छोटा देवरा हँसि के बोलाई हो रामा।"[66]

बुलाकीदास के एक शिष्य रामदास की रचना में रामजन्म और कृष्ण सम्बन्धी चैता गीत मिलते हैं। सन् 1840 के संत कवि केशवदास ने चैता शैली में निर्गुण भक्तिपरक गीतों की रचना की है। 19 वीं सदी के अन्त में सारन जिले के बिजईपुर गाँव में कवि सुरूजमल हुए, उनके चैता गीतों में परम्परा से कुछ हटकर चैता गीतों का वर्ण्य विषय पाया जाता है यद्यपि भाव वही है -

"सपना देखीला वलखनवाँ हो रामा
कि सैंया के अवनवाँ
'सुरूज' चाहेले गरवा लगावल
कि खुलि गइले पलक पपनवाँ हो रामा ।"[67]

बनारस निवासी कवि देवीदास ने अपनी 'बाँका छबीला गवैया' नामक पुस्तक में एक चैती पद दिया है –

"नाजुक बलमा रे रतिया नाहिं आवे हो रामा
एक त मोरी चढ़ली जवानी
दूजे बिरहा सतावे हो रामा
चैतवा की गरमी निंदिया न आवे हो रामा ।"[68]

भारतेन्दु हरिचन्द ने भी कुछ चैता गीत लिखकर इनकी साहित्यिक परम्परा को आगे बढ़ाया । तत्कालीन कवि पं. अम्बिकादत्त व्यास, किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने भी कुछ चैता गीत लिखे हैं। इस तरह चैता का भावपक्ष और साहित्यिक पक्ष विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर है ।

चैता में अन्य गीतों की अपेक्षा अधिक मनोहरता तथा हृदय–द्रावकता विद्यमान होती है । इसका वर्ण्य विषय संयोग तथा वियोग श्रृंगार होता है । इसके गाये जाने का ढंग भी दो प्रकार का है – (१) झलकुटिया और (२) साधारण ।

(१) झलकुटिया :

झलकुटिया सामुहिक रूप से गाया जाता है । "झलकुटिया शब्द की व्युत्पति है– झाल+कूट+इया (प्रत्यय) । झाल कूटने की कल्पना से ही इस गीत का नाम 'झलकुटिया' पड़ा है । स्पष्ट है कि इस प्रकार की चैती सामूहिक रूप से झाल कूटकर या बजाकर गाई जाती है "[69] प्राय: इसके गानेवाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं । पहले दलवाले व्यक्ति प्रथम पंक्ति को गाते हैं तो दूसरे दलवाले उसकी टेक को समवेत स्वर में तार स्वर में गाते हैं । इस प्रकार गाने का क्रम बहुत देर तक चलता रहता है । गाते–गाते गवैये भावावेश में घुटनों के बल खड़े होकर अहो रामा या हो रामा की गगन भेदी ध्वनि से समस्त वायुमण्डल प्रतिध्वनित कर देते हैं ।

(२) साधारण चैता : जिसमें कोई व्यक्ति विशेष बिना किसी वाद्ययन्त्र की सहायता के लयपूर्वक गाता है । चैता में ढोलक, मंजीरे, झाँझ, झाल, खन्जरी आदि वाद्य मुख्यत: प्रयोग किये जाते हैं ।

चैता गीतों में शृंगार की प्रधानता होती है। इसमें मुख्य रूप से नायिका की विरह–वेदना को स्वर मिलता है। चैता गीतों में संयोग शृंगार की कहानी रागों भी मिलती है। कालान्तर में चैता धार्मिक भावों से भी जुड़ गई। कहीं कृष्ण–राधा के प्रेम–प्रसंग हैं, तो कहीं राम–सीता का आदर्श दाम्पत्य प्रेम है। कहीं दशरथनन्दन के जन्म का आनन्दोत्सव चित्रित हुआ है तो कहीं राम और उनके भाईयों के बीच का नैसर्गिक प्रेम प्रदर्शित हुआ है। कहीं स्वकीय तथा कहीं परकीया नायिका के प्रेम के विविध रूप दिखाई देते हैं। इन गीतों में समसामयिक कुप्रथाओं– जैसे बाल–विवाह अथवा दैनिक जीवन के शाश्वत क्रिया–कलापों की चर्चा भी मिलती है साथ ही इन गीतों में वसन्त की मस्ती एवं रगीन भावनाओं का अनोखा सौन्दर्य है।

अवधी क्षेत्र में चैता गाये जाने प्रचलन है। चैता गीतों का प्रधान विषय प्रेम होता है, जिसमें पति–पत्नी और प्रेमी–प्रेमिका की क्रीड़ा के साथ ही दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी गीतों का भी उल्लेख मिलता है। निम्नलिखित चैता गीत में किसी ग्रामीण स्त्री का अपने पति से नवीन वस्त्र या किसी अन्य वस्तु का आग्रह व्यक्त है –

"पियरी चुनरी रंगाय दियौ रामा
चैत ही मासे, चैत ही मासे
चुनरी रंगाय दियौ ओ गोटवा सजवाय दियौ
बिच बिच फुलवा लगावाय दियौ रामा
चैत ही मासे, चैता ही मासे।"[70]

प्रस्तुत गीत का भावार्थ यह है कि चैत मास में गेहूँ की नई फसल तैयार होती है। अत: पत्नी जानती है कि फसल बिकने पर पैसे मिलेंगे। इसीलिए वह अपने पति से पीली चुनरी लाने का आग्रह करती है। चुनरी को पीले रंग में रंगवा कर उसे चारों और गोटे से सजाकर बीच–बीच में फूलों को लगाने का भी निवेदन करती है।

चैता प्रेम और अनुराग के गीत हैं। अच्छी फसल के लिए ग्रामीण स्त्रियाँ महीनों से आस लगाये बैठे रहते हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ फसल होने पर ही पतियों से अपने वस्त्र, आभूषण तथा–प्रसाधन आदि की इच्छाएँ व्यक्त करती हैं और जब इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं तब उनमें कुंठाओं का जन्म होता है। एक ऐसा ही चैता द्रष्टव्य है –

"करबी बिकाया हमका लाय दियौ लटकन
करबी बिक जइहै तो बइल का खंइहैं
बइलौ बिकाय हमका लाय दियो लटकन
बइल बिक जइ हैं तो खेत को जुतइहै
खेतों बिकाय हमका लाय दियौ लटकन

+++++

बप्पा बिक जइहैं तो तुम का करिहौ
हमहूँ विकाय हमका लाय दियौ लटकन
करत बहाना नाही लाय दियो लटकन
करबी ....।।"[71]

प्रस्तुत गीत में छोटे किसान की पत्नी करवी के बिक जाने पर लटकन (कान के पहनने का आभूषण) के लिए अपने पति से आग्रह करती है परन्तु वह बराबर अपनी लाचारी प्रकट करता है। फिर भी पत्नी को लटकन चाहिए ही, चाहे क्यों न उसका खेत, बैल, अनाज, बच्चे, पति तथा वह स्वयं ही बिक जाये। अन्त में वह समझ जाती है कि पति बहाना बना रहा है ताकि लटकन न लानी पड़े।

5.1.5 सावन गीत :

कजली की ही भाँति सावन के महीने में झूला झूलते समय अवधी क्षेत्र में एक प्रकार के और गीत गाए जाते हैं जिन्हें 'सावन' कहते हैं। इसे झूला गीत भी कहते हैं। सावन के महीने में झूला-झूलते समय स्त्रियाँ प्राय: यह गीत गाती हैं। सावन का नामकरण महीने के आधार पर हुआ है। इन गीतों में कहीं उल्लास तो कहीं करूणा की अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों के विषय सुख-दु:ख के रंगों से मानव-जीवन की विविध भावात्मक स्थितियों का चित्रांकन करते हैं। "सावन के गीत श्रृंगार एवं करूणा से भरे पड़े हैं, क्योंकि सावन के महीने में लोक-मानस ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्रकृति ही रसमय हो जाती है। सावन मास आते ही जन-जन का ह्रदय उमंग और उल्लास से भर जाता है और जन-जन के कष्ट इन लोक-गीतों में मुखरित हो उठते हैं। काले-कजरारे मेघों से आच्छादित आसमान, गर्भिणी की तरह मन्द-मन्द चलती शीतल हवा, पति-वियोग में विरहिणी के आँसुओं-सी झडती वर्षा की बूँदें, पति-दर्शन की प्रसन्नता के समय निकलनेवाले स्वर के समान कोयल की मधुर कुहुक, नवोढा के समान हरे वस्त्र धारण किये हुए प्रफुल्लित धरती-ये समस्त उद्दीपन नारी-ह्रदय को उमंग और उल्लास से

सराबोर कर देते हैं। उमंग और उल्लास से भरा हृदय भावुक होकर गा उठता है। फलस्वरूप नारी–कण्ठों से नि:सृत यही गीत सावन–गीतों का नाम ले लेते हैं।"[72] सावन समीप आते ही अवध में नवेली बहुएँ प्राय: अपने–अपने मायके में नागपंचमी का त्यौहार मनाने के लिए अवश्य जाती हैं। मायके में वे पूरी स्वतंत्रता के साथ सहेलियों के समूह में झूला झूलती और झुलाती हैं तथा अनेक प्रकार के सावन गीत गाती हैं।

अवधी के एक सावन गीत में एक स्त्री अपने बीते हुए उस सावन की याद कर रही है, जिसे कुछ वर्षों पूर्व मायके में अपनी सखी सहेलियों के साथ बिताया था। सावन की हलकी–हलकी फुहारों की कल्पना मात्र से उसका हृदय रोमाँचित होता है वह विगत स्मृतियों को गीत के माध्यम से व्यक्त करती है –

"अबकी बरस बाबुल भइया का भेज्यो
सावन मा लीन्हौं बुलाय रे
लौटिहैं जब हमरे बचपन की सखियाँ
दीन्हों सन्देसा भिजवाय रे
अबकी.....।

अम्बुआ तरे फिर से झूला परि हैं
रिमझिम पड़ि है फुहार रे
लौटिहै फिर तुम्हेरे अँगना मा बाबुल
सावन की ठण्डी फुहार रे ।।

छलके नयन मोरा कसके रे जियरा
बचपन की जब आये याद रे
अब की......।"[73]

प्रस्तुत गीत में बीते हुए दिनों की यादें जनपदीय स्त्री की मनोव्यथा का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है।

होली के बाद प्राय: वधुएँ अपने पिता के घर से अपनी ससुराल जाती हैं। वे वहाँ तीन–महीने रहती हैं, फिर श्रावण मास लगने से पूर्व ही वधू का पिता, ताऊ, चाचा या भाई जाकर उसे अपने घर ले आता है, जिससे वह स्वच्छन्द हो सावन के महीने में अपनी सखी–सहेलियों के साथ झूले झूल सके,

साथ ही अपने माता–पिता, भाई आदि से भी मिल सके। ससुराल में वधुएँ उनके आने की प्रतीक्षा करती रही हैं, किन्तु श्रावण का महीना लग जाने पर भी जब कोई उन्हें लाने के लिए नहीं पहुँचता तो पास पड़ोस की स्त्रियाँ व्यंग्य करने लगती हैं, जिसे सुनकर वे दुःखी होती हैं और अपने आत्मीयों को कोसने लगती हैं, किन्तु जब वे उसे लाने के लिए पहुँच जाते हैं तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। एक ऐसा ही सावन गीत यहाँ द्रष्टव्य है :–

"कवने निरमोहिया कइ धेरिया रे, ससुरे माँ सावन लाग।
केथुअइ कै तैरी मइया रे, केथुअइ कइ तोरा बाप।
कवने रकम बीरन भइया रे, ससुरे माँ सावन लाग।
इँटिया कै मोरी माइया रे, पथरेन कै मोरा बाप।
लोहवा बरन बीरन भइया रे, ससुरे माँ सावन लाग।
अगवा के घोड़वा अरे बाबइया रे, पछवा के पितिया हमार।
लीले घोड़े भइया असवार रे, ससुरे माँ सावन लाग।
बगिया उतरे अरे बाबइया रे, हटिअइ पितिया हमार।
ससुरू दुअरवा अरे बीरन भइया रे, ससुरे माँ सावन लाग।
पियरी लिआये अरे बाबइया रे, चुँदरी हो पितिया हमार।
घुघुरी लिआये अरे बीरन भइया रे, ससुरे माँ सावन लाग।
पिअरी जे पहिरइँ अरे सासुइया रे, चुँदरी ननदिया हमारि।
घुघरे जे लेइहइँ अरे जेठनिया रे, हम धना नइहर जाब।"[74]

प्रस्तुत गीत में सावन के महीने में एक स्त्री पर उसके पास पड़ोस की स्त्रियाँ व्यंग्य कर कहती हैं कि किस निर्मोही पिता की यह पुत्री है कि ससुराल में रहते हुए ही सावन का महीना लग गया। फिर वह उससे पूछती है तुम्हारी माँ किसकी बनी है, और कैसा तेरा पिता है और किस तरह का तुम्हारा भाई है कि ससुराल में सावन लग गया। जिसे सुनकर वह दुखी हो कर मन से कहती है कि मेरी माँ ईंट की बनी है, पत्थर के मेरे पिताजी हैं और लोहे के सदृश भाई है, जिससे ससुराल में सावन लग गया है। तभी आगे के घोड़े पर पिता, पीछे चाचा और नीले घोड़े पर सवार होकर भाई आ गये। बाग में पिताजी उतरे, बाजार में काका और ससुर जी के द्वार पर भाई। पिताजी पेरी (पीली धोती) ले आये, काका जी चूनर और भाई घुघुरी ले आये। मेरी तो सासजी पेरी पहनती हैं, चूनर हमारी ननद और घुघुरी जेठानी जी लेंगी।

एक अन्य गीत में भाई अपनी बहन के घर पहुँचता है और बहिन भाई से भेंट होने पर अपनी दुर्दश को बताती हैं–

"मूड़ु द्याखौ मूड़ु द्याखौ भइया हमारे
जइसे कुकुरिया की पूँछ रे ।
पीठि द्याखौ देह द्याखौ बिरना हमारी,
जैसे बैलु केरि पीठि रे ।
मन एकु कूटौं, मनु एकु पीसौं
मनु एकु खचौं रसोई रे ।
पछिली कोचइया भइया भोजन करत हौं
वाहू म कुकुर बिलार रे ।
यहु दुखु बाँध्यौ भइया गडरी गठरिया
बाँधि नैहर लै जाव रे ।।।"[75]

वह भाई को सचेत करती है कि–मेरी दुर्दशा का वर्णन भौजी को न सुनाना, नहीं तो वे नित्य ताने देंगी । चाची, ताई को न सुनाना क्योंकि घर–घर जाकर अफवाह फैलाएँगी । सखियों–सहेलियों को न सुनाना, अन्यथा सब ससुराल जाना बन्द कर देंगी । माँ के आगे तो यह दुखड़ा कदापि न रोना, नहीं तो वह छाती पीट–पीटकर मर जाएगी ।

इसी प्रकार के एक सावन गीत में घर के सदस्यों द्वारा पीड़ित किसी विरहिणी स्त्री की मनोव्यथा का उल्लेख किया गया है –

"ई कोइल बोलइ सहा न जाय रे ।
अरे जवन बोली सासु बोलइ उहइ ससुरवा ।
ई जियरा कहइ भला (बला) होई जाइ रे ।
जवन बोली जेठ बोलइ उहइ जेठनिया;
इ जियरा कहइ जहर, विष खाइ रे ।
जवन बोली देवर बोलई उहइ देवरनिया ।
ई जियरा कहइ मिलेन होइ जाइ रे ।
ई कोयल बोलई सहा न जाय रे ।"[76]

प्रस्तुत गीत में एक विरहिणी स्त्री कहती है कि कोयल की बोली अब सही नहीं जाती है क्योंकि उससे बड़ा कष्ट हो रहा है । जैसा कटु वचन हमारी सास बोलती है वैसा ही ससुर भी बोलता है । मेरा दिल कहता है कि इससे मर ही जाना अच्छा है । जैसे विषम वचन हमारा जेठ बोलता है वैसे ही मेरी जेठानी भी बोलती है । मेरा दिल कहता है कि इससे तो मर जाना अच्छा है । जैसे प्रिय तथा मधुर बचन मेरा देवर बोलता है वैसे ही मेरी देवरानी भी बोलती है । मेरे दिल में अब यह आता है कि देवर से मिलन कर लूँ अर्थात् उससे प्रेम संबंध स्थापित कर लूँ । अत: जब घर के सभी लोग शत्रु बन जाते हैं तो जिस दिशा से प्रेम प्राप्त होता है उधर आकर्षण होना स्वाभाविक है । ये गीत वास्तव में बड़े मार्मिक होते हैं।

सावन के गीतों में वर्षा ने विरहिणी स्त्री के कष्टों को बढ़ा दिया है । एक गीत द्रष्टव्य है –

"पुरबई चढ़ी बदरिया बरसन लगे बड़े बूँद ।
टपकन लागे अरे मोरे बोंगलवा ;
सासुरू छवावैं आपन बांगलवा ।
मोर पिय छाये विदेसवा रे ।
जेठवा छवावै आपन बाँगलवा,
मोर पिय छाये विदेसवा रे ।
देवरा छवावै आपन बाँगलवा,
मोर पिय छाये विदेसवा रे ।
टपकन लागे मोर बाँगलवा रे ।" [77]

प्रस्तुत गीत में एक विरहिणी स्त्री कहती है कि पूर्व दिशा में बादल आकाश में चढ़ आये और बादलों ने बड़ी–बड़ी बूँदो को बरसाना आरम्भ कर दिया है । वर्षा के कारण मेरा घर टपकने लगा है। मेरा ससुर, जेठ, भाई, देवर ने अपना–अपना घर तो छवा लिया है परन्तु मेरा पति तो विदेश में है । अत: मेरे टपकते हुए घर को मेरे पति के बिना कौन छवावेगा ।

सावन गीतों में कुछ गीत ऐसे भी मिलते हैं । जिनमें प्रेम के अटूट संबंध की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार एक गीत द्रष्टव्य है–

"तू तउ दरदउ न जान्या मोहन हमरी ।
तरा लाली रजइया उपर सुजनी ।
मुख चुम्मइ न देबइ बिगर झुलनी ।

लागी लागी बजरिया मकनपुर की ।
गोरी लइले झुलनिया अपने मन की ।
बिना पाती कइ झुलनी सजत नाहीं ।
चहय रोइ मरउँ मोहन मिलन नहीं ।
तरे दूधे कइ साठी ऊपर माठा ।
ऐसी झुलनिउ पै बैइठइ छयल बाँका ।
जइसे बन कइ लकड़िया कटक टूटइ ।
वइसे लागी परितिया कसत छूटइ ।
जइसे बन कइ लकड़िया का तोर डउबइ ।
वइसे लागी नजरिया छोड़ाइ अउबइ ।
जइसे कथ्था सुपारी कटत नाहीं ।
लरिकइ योंउ को यारी छुटत नाहीं ।"[78]

प्रस्तुत गीत में प्रेमिका अपने प्रेमी से कहती है कि ए मोहन ! तुम मेरे दिल के दर्द को नहीं जानते हो । नीचे लाल रजाई है और ऊपर सुजनी है । परन्तु झुलनी पहिने बिना मैं अपने मुख का चुम्बन लेने नहीं दूँगी। मकनपुर का बाजार लगा हुआ है । अपने मन के अनुसार तुम झुलनी खरीद लाओ। मुझे बिना पत्ती के झुलनी अच्छी नहीं लगती है । चाहे रोते हुए मर जाऊँ परन्तु प्रियतम (मोहन) से मिलन नहीं हो सकता । नीचे दूध की सीठी है और ऊपर माठा है । ऐसी सुन्दर झुलनी पर बाँका प्रियतम बैठा हुआ है अर्थात् उसकी दृष्टि झुलनी पर लगी हुई है। जिस प्रकार से बन की लकड़ी बड़े कष्ट से टूटती है उसी प्रकार से लगी हुई प्रीति बड़े कष्ट से छूटती है । जिस प्रकार से बन की लकड़ी को तोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार से प्रियतम की लगी हुई नजर से अपने को छुड़ा लूंगी । जैसे कथ्था और सुपारी बड़ी कठिनाई से काटा जाता है वैसे ही लड़कपन से चली आती हुई मित्रता (लरिकाई की प्रीति) बड़ी मुश्किल से छूटती है ।

5.1.6 विविध :

5.1.6.1 वर्षा ऋतु गीत :

अवधी और मणिपुरी लोकगीतों मे वर्षा ऋतु गीत पाए जाते हैं। दोनों क्षेत्रों में इन्द्र की पूजा की परंपरा है। इस पूजा में कभी तो बादलों से वर्षा करने और कभी जब कोई अनुष्ठान वगैरा होता है तो पानी न बरसाने की प्रार्थना की जाती है। अवधी क्षेत्र में पानी अपने समय पर नहीं बरसता और खेत बोने में देर होने लगती है तब एक अनुष्ठान किया जाता है। जैसे "रात के समय स्त्रियाँ हल लेकर खेत में जाती हैं, वहाँ नग्न होकर दो स्त्रियाँ बैल के रूप में और एक स्त्री हल के रूप में खेत जोतती हैं।"[79] इसके पीछे यह धारणा है कि भगवान इन्द्र उनकी दयनीय दशा देखकर द्रवित हों और वर्षा दें। अवधी क्षेत्र के लोकगीतों में वर्षा से सम्बन्धित कई गीत देखने को मिलते हैं। एक लोकगीत में माता इन्द्र से विनती कर रही है कि उसके पुत्र व पुत्र–वधू बाहर गए हुए है। ऐसे समय यदि वर्षा होगी तो वे भीग जाएँगे –

"रिमिकि झिमिकी दैवा बरिसे मोहे नाहीं भावइ हो राम।
दैवा वोहि बन जाए जनि बरिसहु जहाँ मोर लरिकन हो राम।
राम कै भीजे मटुकवा, लखन सिर पटुका हो राम।
सीता का भींजै सेन्दूरवा लवहि घर आवउ हो राम।"[80]

एक अन्य गीत में एक विरहिणी स्त्री इन्द्र भागवान से प्रार्थना कर रही है। उसके पति आज आने वाले हैं इससे वर्षा न करे। पति कहता है कि मैं अवश्य आऊँगा मेरे साले का जनेऊ है। गीत इस प्रकार है –

"इमली के पेड़ सुरूहुर अवरी डुरूहुर।
तेहि तर ठाढ़ी कवनी देई देवा मनावयं।।
जनि देवा अर्जहुं गरजुहु जनि देवा बरिसहु।
आवत होइहैं मोर स्वामी झिमी बुनियां भिजी जइहैं।
केतनो तु ए दैवा बरिसहु हमरे जे सारे क जनेउ भिंगत हम जाबइ।"[81]

मणिपुर में वर्षा ऋतु के समय में विशेष प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इस गीत को मणिपुरी भाषा में 'नोङलाऊ इशै' कहते हैं। जब मणिपुर का कोई क्षेत्र सूखा–ग्रस्त हो जाता है तब उसी क्षेत्र की स्त्रियों

व पुरूषों का एक–एक समूह मध्यरात्रि में अपने अपने घरों से नग्न अवस्था में बाहर आकर एकत्रित होता है तथा ऊँचे स्वर में गीत गाता हैं । इसके पीछे भी यह धारणा है कि इन्द्र भगवान उनकी दयनीय दशा को देखकर द्रवित हो उठते हैं और वर्षा कर देते हैं । गीत इस प्रकार है–

“नोंओ चुरो ।
हनुबी हनुबा ताओथरो
लांजिङ मतोन थुमहल्लो
पातसोइ नुराबी ताओथरो ।
नोंओ चुरो ।
नोंओ चुरो ।”[82]

अर्थात ओ ! वर्षा आ जाओ । तुम इतना बरसो कि लांजिङ (पर्वत) शिखर डूब जाए । पातसोइ (गाँव का नाम) की कुमारी और बूढ़े–बुढ़िया को बहाकर ले जाओ ।

5.1.6.2 लोरी गीत :

लोरी गीत बच्चों को खिलाने और सुलाते समय गाए जाते हैं। कहीं कहीं लोरियों में देवी–देवता की मनौती की जाती है । देवी–देवता नींद में बच्चों की रक्षा करें यही भाव उनमें रहता है। कुछ लोरियों में बच्चों के अच्छे गुणों का वर्णन रहता है व बच्चे को अच्छा बनने का लालच भी दिया जाता है । कुछ लोरियों में माँ अपने बच्चे को सुलाते हुए अपनी मनोदशाओं को व्यक्त करती है । लोरियों के कुछ गीत ऐसी भी उपलब्ध होते हैं जिनका कुछ अर्थ नहीं होता । इसका एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है । लोरी गीतों की परम्परा के सम्बन्ध में डॉ. सरोजनी रोहतगी ने लिखा है कि – “लोरी और पालने के गीतों की परम्परा ढूंढ़ना बहुत ही कठिन कार्य है । मानव की सृष्टि के विकास में प्रत्येक माता ने अपने बालकों को प्यार से थपकियाँ देकर सुलाया होगा । इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ सकती । मालूम नहीं कितनी माताओं ने खेतों में कार्य करते समय पेड़ों की डालियों का पालना बनाकर अपने पुतुआ, मुनुआ और ललुआ को थपकी दे–देकर अस्फुट, अर्थहीन पर लययुक्त स्वरों में गीत गा–गाकर सुलाया होगा और आज भी इसी प्रकार लोरी गा–गाकर प्यार–भरी थपकियों से सुला रही है ।”[83]

हिन्दी साहित्य के महान कवियों ने भी लोरी गीत की रचना की है। सूरदास ने भी कृष्ण के लोरी पदों में 'जोई,सोई' शब्दों का प्रयोग किया है। यथा –

'यशोदा हरि पालने झुलावै, हलरावै दुलरावै मल्हावै जोइ–सोइ कछु गावै।'

"मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे ने आनि सुआवै।
तू काहे नहिं वेगहि आवे, तोको कान्ह बुलावै ।।४३।।"[84]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी गीतावली में राम को सुलाने के लिये माता से लोरी गवाई है –

"पौढ़िये लालन, पालने हों झुलावौं।
कर पद मुख चखकमल लसत लखि लोचन–भंवर भुलावै।"[85]

लोरी गीत अवधी और मणिपुरी दोनों क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अवधी क्षेत्र में प्राय: बच्चों को सुलाने, खाना खिलाते और नहलाते समय 'लोरी गीत' गाये जाते हैं। माताएँ लोरी गा–गाकर प्यार भरी थपकियों से बच्चों को सुलाती हैं –

"आउरे चिरैया वन झोझिया लगाउरे,
तेरी झोंझी आगि लागै भैया का सोवाउ रे।"[86]

इस गीत में कोई विशेष अर्थ होना आवश्यक नहीं है। यह केवल बच्चों को बहलाने के लिए तथा प्रसन्न करने के लिए गाये जाते हैं।

लोरियों के द्वारा माताएँ बच्चों की सुख–समृद्धि का टोटका करती हैं। इन लोरियों का मनोवैज्ञानिक भाव यह है कि बच्चे का ध्यान अन्य स्थान व कार्य से हटाया जाता है तथा उसे लोरी गाने वाली माता का स्नेह व साथ मिलता है जिससे वह नि:शंक तथा निडर होकर सोता रहता है। ताल–युक्त ध्वनि और थपथपाहट बच्चे के मन और शरीर को सुख पहुँचाते हैं। जैसे –

"कब लाल बड़ाके होइहैं,
कब बाबा की बगिया जइहैं।
कब आम धबद लै अइहैं,
आजी के अगवा धरिहैं।
तब आजी कै जियरा जुड़इ हैं।"[87]

लोरी गीत को मणिपुरी भाषा में 'नाओशुम इशै' कहते हैं । 'नाओशुम इशै' मणिपुरी लोक गीतों में सबसे सरल और प्रचलित गीत है । मणिपुरी लोरी गीत में माँ अपने बच्चे को सुलाते हुए गीत गा रही है –

"हुम हुम हुम हुम
नाबा नङ्बु तुम्मोको
ईपारी नङ्बु तुम्मोको
(इमोम नङ्बु तुम्मोको)
हुम हुम हुम हुम
नावा नङ्ना तुमलिङै
नपागी थौदा पाङ्हौगे
हुम हुम हुम हुम ।"[88]

प्रस्तुत गीत में एक माँ अपने बच्चे को सुलाने की कोशिश कर रही है । बच्चे को सुलाते हुए कह रही है कि – तू सो जा, जब तू सो जाएगा तो मैं घर का काम पूरा करूँगी । मुझे तेरे पिता की सेवा भी करनी है, खाना भी पकाना है इसीलिए तू सो जा ।

एक अन्य लोरी गीत में एक माँ अपने बच्चे को सुलाते हुए गीत गा रही है –

"नोंना वा–वा चुबने
ईमागी लांलेन तुमथरोने
ईङागी नोंहौना कनबना
ईमागी लांलेन तुमथऐने
हुम हुम हैया हुत हैया हुम ।

कोरौ नुमितना थेंलकपने
पनथो नपाना खारै लबुक माइकै पांखिबा
हलकपना हाल्लबदि ईमादि
तरागी चेंयेनसु लैतरि,
खारासु फौसु शुदरि
खारी फौबु मसुगे

ईमागी लांलेन तुमथरो
हुम हुम हैया–हुम हैया हुम ।

पनथौ नपाना हलकपबु हालबदि लांलेन
तराशी चाकपु थोंबबु लोइद्ररबदि
खोइरांनरनि खोइशाओनरीन इमागी शामु नंगलदा
मैकोक चिंशा नामिबा ना यैराबदि
ईमादि करि ओइरगनि
ईमागी लांलेन तुमथरोने
हैया हुम,हुम हुम, हैया हुम ।"[89]

इस गीत में एक माँ अपने बच्चे को सुलाने का प्रयत्न कर रही है और कहती है बारिश बहुत हो रही है, तुम्हारे पिता के खेत से वापस आने का समय हो गया है। अभी घर का बहुत काम करना बाकी है और खाना भी बनाना बाकी है अगर पिताजी के आने तक खाना बनाना खत्म नहीं हुआ तो वे गुस्सा होंगे और मुझे को डाँटेंगे इसीलिए बेटे तू सो जा।

5.1.7 लाइहराओबा :

'लाइहराओबा' मणिपुर का प्राचीनतम परंपरागत त्यौहार है। जिसे संपन्न करने का अधिकार मैतै (मणिपुर में सर्वाधिक जनसंख्या मैतै जाति के लोगों की है) लोगों को ही है। लाइहराओबा मणिपुर में बड़े धूमधाम से मनाते हैं। यह चैत मास शुरू होकर फाल्गुन मास तक (आषाढ़, सावन, अगहन, पूष छोड़कर) आठ महीने तक चलता है। श्री.टी. बोकुल ने 'मैतै इनात' नामक पुस्तक में लिखा है कि वर्ष के चार महीने में लाइहराओबा नहीं मनाया जा सकता है।''[90] स्पष्ट है कि आठ माह तक यह त्यौहार मनाया जाता है। अत: मणिपुर का सबसे लंबा त्यौहार है 'लाइहराओबा'।

लाइहराओबा से जुड़ी अनेक पौराणिक कथाएँ मैतै–समाज में प्रचलित हैं। इन्हीं में से एक कथा के अनुसार "नौ देवताओं (लाइपुङथौ) ने मिलकर पृथ्वी को स्वर्ग से उतारा था। उस समय सात देवियां (लाइनुरा तरेत) जल पर नृत्य कर रही थीं। उन्होंने विशेष नृत्य–भंगिमाओं के साथ पृथ्वी को संभाला और जल पर स्थापित कर दिया। अपने मूल रूप में पृथ्वी बहुत ऊबड़–खाबड़ थी। इसे रहने योग्य बनाने का दायित्व माइबियों (विशेष पुजारिन) को सौंपा गया। उन्होंने इसे नृत्यगीत नियंत्रित

चरणों से समतल किया। इस प्रकार पृथ्वी का निर्माण हो जाने के बाद अतिया गुरू शिदबा और लैमरेन ने निश्चय किया कि वे किसी सुन्दर घाटी में नृत्य करेंगे। खोज करने पर उन्हें पर्वत–मालाओं से घिरी एक घाटी मिली, जो जल से परिपूर्ण थी। अतिया गुरू शिदबा ने घाटी को परकोटे की तरह घेरे पर्वत–माला में अपने त्रिशूल से तीन छेद किये, जिससे जल बह गया और पृथ्वी निकल आई। गुरू शिदबा और देवी लैमरेन ने अन्य सात देवियों के साथ इस पृथ्वी पर नृत्य किया। माना जाता है कि देवताओं की प्रसन्नता का यह प्रथम नृत्य था। उसी की स्मृति में लाइहराओबा नामक धार्मिक–अनुष्ठान संपन्न किया जाता है।''[91] लाइहराओबा देवताओं की प्रसन्नता का नृत्य है। बाद में धीरे–धीरे इस कथानक के साथ खम्बा–थोइबी गाथा से लेकर कुछ अंशों में नोङपोक पानथोइबी, याङजिन तथा लाइरेन्बी जैसे मैतै देवी–देवताओं के प्रसंग भी इसमें जोड़ दिये गये।

लाइहराओबा मणिपुर के हर मुहल्ले में बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। लाइहराओबा में मुख्य भूमिका माइबा (मैतै पुजारी) और माइबी (मैतै पुजारिन) की होती है। हर घर का प्रत्येक सदस्य भी इसमें भाग लेता है। 'लाइहराओबा' का प्रारम्भ उस गीत से होता है जो सृष्टि के अति प्रारंभ में देवों के द्वारा गाया गया था। वह गीत है –

"आ.......होइरौ......आ
ना.......आ....आ
होइरौ.....होइरौ......आ
ना......आ......आ
होइरौने ए से ने।
आ......हैया.........आ
ना.....आ......आ
हैया हैया.........आ
ना........आ........आ
हैया हैयाहे नगेदा आ.......आ
योइबुबिने........आ......आ
हैयाने ए ....से ....शुम।[92]

इस गीत का नाम 'होइरौ होइया लाओबा' है। इस गीत में आनंद से परिपूर्ण हर्षोल्लास से भरी ध्वनि है। इसके साथ एक मिथक भी जुड़ा हुआ है कि इस गीत को गाते समय सुर के खींच ताल में या अन्य किसी भी प्रकार की होनेवाली गड़बड़ी उस मुहल्ले (जिसमें यह उत्सव हो रहा होता है) के लिए

महा अशुभ है । इसीलिए आज भी इस गीत कों सावधानी बरतते हुए गाया जाता है ।

लाइहराओबा के पहले दिन की शुरूआत यानी सुबह के समय एक गीत गाया जाता है जिसे याकैरोल (जागरण गीत) कहा जाता है । यह गीत लाइहराओबा के प्रारंभिक दिन से लेकर अंतिम दिन तक प्रत्येक सुबह गाया जाता है । गीत द्रष्टव्य है –

"उम....हुम.....।
हैयी........हैया.......
हैयी–हैया......हैयुम ।
हैया हे–हे......शुभ....।
हैया चाजुम हैया चा
हैयाना चाजुम हैयी चा......"[93]

इस गीत के बोल निश्चित नहीं हैं, लेकिन इसका आरम्भ ऊपर दिए गए बोल से ही करना आवश्यक है। इसके बाद के बोल अलग–अलग होने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता परन्तु सुर एक ही होना अनिवार्य है । इस सुर में अलग–अलग देवी–देवताओं के अलग–अलग जीवन प्रसंगों को लेकर गान होता है ।

लाइहराओबा के अवसर पर कई गीत गाए जाते हैं । इन गीतों मे सृष्टि के निर्माण–विकास के साथ–साथ दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं का भी वर्णन है ।

लाइहराओबा का अंतिम दिन 'लाइरोइ' कहलाता है । उसी दिन माइबा और माइबी 'शरोय–खाङबा' नामक पूजा करके लोगों को रोग, दुरवस्था, भूत–प्रेत और अकाल से बचाने के लिए प्रार्थना करते हैं । बाद में 'नोंगारोल' नामक एक गीत के साथ इस त्यौहार की समाप्ति होती है । नोंगारोल गीत का एक पद द्रष्टव्य है–

"शोरानेन्ना नोङदोल कागे हायरेदा ।
हा पा खाओ पुबा पुररो–पुररो ।"[94]

अर्थात शोरारेल (देवता) स्वर्ग जाने के लिए कह गए हैं । अत: हे झोला वाले पिता ! तुम उनको ले चलो ।

लाइहराओबा मैतै जाति ही नहीं बल्कि संपूर्ण मणिपुर की प्राचीन संस्कृति के भव्य रूप का प्रतिनिधि अनुष्ठान है । प्रो.इ.नीलकांत सिंह ने लाईहराओबा के सम्बन्ध में लिखा है कि – 'लाइहराओबा' में मणिपुरी लोगों की संपूर्ण संस्कृति का प्रतिबिंब देखा जा सकता है । इसमें इनकी शक्ति और दुर्बलता, विश्वास तथा अंधविश्वास और संभवत: मंत्र और मणिपुरी लोगों के हर्षोल्लास का भी उद्घाटन होता है। यह लोगों के चिंतन को भी प्रतिबिंबित करता है ।"[91] 'लाइहराओबा' मणिपुरी लोक–साहित्य का ही नहीं बल्कि लोकवार्ता (फोकलोर) का भी अक्षय भंडार है । विविध विषयों से सम्बन्धित लोकगीत भी इसके अभिन्न अंग हैं । सत्य तो यह है कि मणिपुरी लोकगीतों की परम्परा लाईहराओबा के बिना अधूरी है ।

लाईहराओबा का एक विरह गीत द्रष्टव्य है –

"चेकला पाइखराबदा
पोंबी हनजिल्लकपना
चेकलागी काइदोङफम खङदबना
पोंबी ककङाओनरेदो ।
साबी इनेमचा माम्मुबी
चीङनुङगी सना लोक्तगी पाइबिरकलोदा ।"[95]

इस गीत का भावार्थ है–चेकला (नर चिड़िया) उड़कर बहुत दूर चला गया । पोंबी (मादा चिड़िया) जब संध्या के समय लौटकर अपने घोंसले में आई तो वहाँ 'चेकला' नहीं मिला । इसीलिए पोंबी कहती है कि हे चेकला ! तुम सुदूर पर्वत से लौट आओ । रूपक के माध्यम से कोई विरहिणी स्त्री अपने प्रियतम को घर लौट आने का अनुरोध कर रही है ।

लाइहराओबा एक प्रसिद्ध गीत द्रष्टव्य है –

"चींदा सातपी इङेल्लै
चीन्नदना केनखिबा
कल्लकइदा कल्लकइदे ।
ऐना केनगे केनबरा,
मालङबना हुंबगी हो केनबनि
केनबनि दे ।

मालङ्बा ऐसू कैदौदे
लैराङ लैखोक लोड़बगी
हा केनबीन हा केनबनि
केनबनि दे ।''[96]

इस गीत का भावार्थ है– पर्वतीय क्षेत्र में खिलने वाला पुष्प (इङेल्लै) किसी के कान (मणिपुरी संस्कृति में स्त्री–पुरूष के कान में पुष्प लगाने की सुन्दर परम्परा रही है) की शोभा बने बिना ही शाखा से टूटकर गिर पड़ा है । पुष्प की दुर्गति की जब किसी ने हँसी उड़ाई तो पुष्प ने कहा कि मैं स्वयं शाखा से टूटकर नहीं गिरा हूँ । वेगवान पवन ने मुझे भूलुंठित कर दिया है । यह सुनकर पवन बोला– मैंने कुछ नहीं किया है । पुष्प तो जीवन की समाप्ति पर टूटकर गिर पड़ा है । इङेल्लै के रूपक के माध्यम से गीत में जीवन की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता की अभिव्यक्ति हुई है ।

5.2 निष्कर्ष :

विभिन्न ऋतुओं में जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें ऋतुगीत कहा जाता है । ऋतुगीत भारत के प्रत्येक राज्य में किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं । लेकिन मणिपुरी समाज में लोकगीतों की परम्परा अवरोधित होने के कारण ऋतुगीतों का अभाव है । वर्षा–ऋतु से सम्बन्धित प्राय: एक गीत उपलब्ध होता है । अवधी क्षेत्र में वर्षा में व्रतों एवं त्यौहारों के अवसरों पर भावमय एवं सरल गीत गाये जाते हैं । प्रकृति के रंगीले एवं निराले रूपों का प्रस्फुटन यहाँ के ऋतु गीतों में प्राप्त होता है । अवध में विभिन्न ऋतुओं में कजली, फाग, बारहमासा, चैता, सावन आदि गीत गाये जाते हैं ।

अवध में कजली को कजरी कहते हैं । अवध में यह गीत विशेषतः श्रावण मास में ही गाया जाता है । कजली विशेष रूप से स्त्रियाँ गाती हैं । इसकी विषयवस्तु मुख्यत: प्रेम से सम्बन्धित है तथा विप्रलभ और संभोग दोनों प्रकार का श्रृंगार इन गीतों में विद्यमान होता है । परदेशी पति के आगमन की प्रतीक्षा, ननद–भावज का हास–परिहास, करूण भावों की ह्रदयद्रावक व्यंजना, बाल, विवाह, अनमेल विवाह की मनोव्यथा आदि इन गीतों में दृष्टिगत होते हैं । अवधी क्षेत्र में फाग को फगुआ कहते हैं । अवध में फाग साहित्य की बड़ी समृद्ध परम्परा है । फाग गीत अवध के जन–जीवन के परिचायक हैं। इन गीतों में दाम्पत्य जीवन की झांकी, विरहिणी स्त्री की मनोव्यथा, शृंगारिक्ता एवं भोग की प्रवृत्ति देखने को मिलते हैं ।

अवधी क्षेत्र में बारहमासा गाने की परम्परा काफी प्राचीन है। अवध में प्राय: आषाढ़ मास से इसका गायन प्रारम्भ हो जाता है और सभी महीनों की विचित्र मनोदशाओं का क्रमश: उल्लेख किया जाता है। किसी विरहिणी स्त्री के बारहमाह के कष्टमय जीवन की मार्मिक अनुभूतियों तथा मनोवेदनाओं का चित्रण इन गीतों में होता है। अवध में चैता गाये जाने की प्रचलन है परन्तु चैता गीतों की संख्या कम है। इन गीतों में मुख्य रूप से ग्रामीण स्त्रियाँ अपने पति से नवीन वस्तुओं के लिए आग्रह, कृषक-दाम्पत्य की पारम्परिक छेड़-छाड़ तथा वासंती मादकता आदि के दर्शन होते हैं। कजली की ही भाँति सावन के महीने में झूला-झूलते समय अवधी क्षेत्र में एक प्रकार के और गीत गाए जाते हैं, जिन्हें 'सावन' कहते हैं सावन के महीने में झूला झूलते समय स्त्रियाँ प्राय: यह गीत गाती हैं। इन गीतों में शृंगार से संयोग और वियोग पक्षों की सुन्दर झाँकी मिलती हैं और मध्ययुगीन स्त्री उत्पीड़न, सामंती संयुक्त परिवार की विडम्बना और स्त्री की सहिष्णुता के मार्मिक वर्णन मिलते हैं।

'लाइहराओबा' मणिपुर का प्राचीनतम परम्परागत त्यौहार है। यह चैत मास से शुरू होकर फागुन मास तक (आषाढ़, सावन, अगहन, पौष, छोड़कर) आठ महीने तक मनाया जाता है। इसीलिए लाईहराओबा मणिपुर का सबसे लंबा त्यौहार है। लाइहराओबा के अवसर पर कई गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में सृष्टि के निर्माण-विकास के साथ-साथ दैनिक-जीवन की विभिन्न क्रियाओं का भी वर्णन मिलते हैं। यह त्यौहार मैतै जाति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मणिपुर की प्राचीन संस्कृति के भव्य रूप का प्रतिनिधि अनुष्ठान है। लाइहराओबा मणिपुरी लोक-साहित्य का ही नहीं बल्कि लोक का भी अक्षय भंडार है। विविध विषयों से सम्बन्धित लोकगीत भी इसके अभिन्न अंग हैं।

❖❖❖

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1) लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड एवं वधेलखण्ड के सन्दर्भ में) डॉ.(श्रीमती) विनोद तिवारी, पृ.61
2) लोक साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण) –डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 82
3) लोकगीतों का सामाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ.छोटेलाल बहरदार, पृ.117
4) मगही लोक साहित्य–डॉ.सम्पत्ति आर्यणी, पृ.19
5) लोक साहित्य की भूमिका – डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय,पृ.93
6) लोक साहित्य विमर्श–डॉ. स्वर्णलता, पृ.116
7) अवधी लोक साहित्य की भूमिका–जगदीश पीयूष,(प्रवासी संसार, पत्रिका से लिया गया है) पृ.32
8) लोकरंग (उत्तर प्रदेश)–दया प्रकाश सिन्हा, पृ.100
9) वही
10) लोकगीतों के संदर्भ और आयाम–डॉ. शान्ति जैन, पृ.192
11) बरसैं आसाढ़ के बदरिया (लेख)–शंभुनाथ मिश्र,धर्मयुग,अंक–19,जुलाइ–1981
12) लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम–डॉ.शान्ति जैन,पृ.193
13) वही,पृ.193-194
14) वही, पृ.194
15) अवधी लोक–गीत–सं.डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय,पृ.126
16) वही,पृ.128
17) वही,पृ.132
18) वही,पृ.133
19) वही
20) अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य–डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव, पृ.127
21) अवधी लोक गीत–सं.डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.140-141
22) अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य –डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव,पृ.218
23) अवधी लोक गीत–सं.डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय,पृ.161
24) वही, पृ.162
25) वही, पृ.163
26) अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य–डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव,पृ.219
27) अवधी लोकगीत–सं.डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय,पृ.143
28) वही,पृ.143-144
29) हिन्दी के लोकगीत (भाग–1)–सं.डॉ.महेश प्रतापनारायण अवस्थी,पृ.167
30) अवधी लोक गीत–सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.169
31) लोकगीतो के सन्दर्भ और आयाम–डॉ.शान्ति जैन,पृ. 262-263
32) गंगाघाटी के गीत– डॉ.हरीलाल तिवारी, पृ. 52

33) अवध मा होली खेलैं रघुवीरा–सं.शैलेश कृष्ण,पृ. 4
34) लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम–डॉ.शान्ति जैन,पृ. 273
35) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास–(लोक साहित्य,खण्ड–2 : अवधी : अध्याय–2) पृ.199
36) लोकगीतों के सन्दर्भ–और आयाम–डॉ. शान्ति जैन, पृ. 273
37) मणिपुर : विविध सन्दर्भ–सं.डॉ.देवराज,पृ.14-15
38) वही, पृ.15
39) अवध मा होली खेलै रघुवीरा–सं.शैलेश कृष्ण–पृ.4
40) अवधी लोक वाङ्मय–डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित–पृ.35
41) गंगाघाटी के गीत–डॉ.हीरालाल तिवारी,पृ. 53
42) अवधी लोक वाङ्मय–डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित–पृ. 37
43) लोक–साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण) –डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय,पृ. 84
44) अवध मा होली खेलै रघुवीरा–सं.शैलेश कृष्ण,पृ.7
45) अवधी लोक वाङ्मय–डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित,पृ.35
46) हिन्दी के लोकगीत (भाग–1)–सं.डॉ.महेश प्रतापनारायण अवस्थी,पृ.172
47) अवध मा होली खेलै रघुवीरा–सं.शैलेश कृष्ण, पृ.32
48) वाचिक कविता: अवधी – सं.डॉ.विद्या निवास मिश्र,पृ.74-75
49) हिन्दी के लोकगीत (भाग–1)–सं.डॉ.महेश प्रतापनारायण अवस्थी, पृ.173
50) लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. छोटेलाल बहरदार, पृ.127
51) वही
52) अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 204-205
53) अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य–डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 136-137
54) लोक साहित्य की भूमिका (सप्तम संस्करण) –डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 86-87
55) वही, पृ. 87
56) गंगाघाटी के गीत– डॉ.हरीलाल तिवारी, पृ.60
57) अवधी लोक गीत–सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.171
58) वाचिक कविता: अवधी – सं.डॉ.विद्या निवास मिश्र,पृ.93-95
59) वही, पृ. 95-96
60) अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य–डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 132
61) अवधी लोक गीत–सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.169-170
62) लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम–डॉ.शान्ति जैन,पृ. 325
63) वही, पृ. 313
64) वही, पृ. 314
65) लोकरंग (उत्तर प्रदेश), सं. दयाप्रकाश सिन्हा, पृ. 98
66) लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम–डॉ.शान्ति जैन,पृ. 315-316
67) वही, पृ. 316
68) वही
69) वही, पृ. 320
70) अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्प सौन्दर्य–डॉ.मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 139
71) वही, पृ. 140-141
72) लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, डॉ. महेश गुप्ता, पृ. 139

73) अवध के लोकगीत एवं उनका शिल्पसौन्दर्य, डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, पृ. 125
74) हिन्दी के लोकगीत (भाग–1)–सं.डॉ.महेश प्रतापनारायण अवस्थी, पृ.163
75) अवधी लोक वाङ्मय–डॉ.सूर्यप्रसाद दीक्षित,पृ. 40
76) अवधी लोक गीत–सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.111
77) वही, पृ.114
78) वही, पृ.109
79) अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 472
80) वही
81) वही
82) मणिपुरी खुन्नुङ इशै खोमजन्बा, सं. लाइश्रम बीरेन्द्र कुमार सिंह, पृ. 94
83) अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 222-223
84) सूरसागर (पहला खण्ड), नागरी प्रचारिणी सभा, पृ. 276
85) गीतावली (बालकाण्ड), तुलसीदास
86) अवधी का लोक साहित्य, डॉ. सरोजनी रोहतगी, पृ. 223-224
87) वही, पृ. 224
88) मणिपुरी लोक साहित्य, राजकुमारी तम्फासना देवी, पृ. 4
89) लोक गायिका – पुथैम चाओबी लैमा (अन्द्रो) मणिपुर, उम्र– 61
90) मैतै इनात–टी. बोकुल, पृ. 27
91) स्वतंत्र वार्ता (समाचार पत्र) – प्र. सं. गिरीश संघी, हैदराबाद, गुरुवार, 17 जून, 2010, पृ. 9
92) काङलै उमङलाइ हराओबा – सं. ङाङबम कुमार, (माइबा), इम्फाल, पृ. 28
93) वही, पृ. 14
94) मणिपुरी खुन्नुङ इशै खोमजन्बा, सं. लाइश्रम बीरेन्द्र कुमार सिंह, पृ.50
95) लोक गायिका – इरूङबम पद्मावति देवी, सगोलबन्द, मणिपुर, उम्र 50
96) मैतै ईनातकी इशै, सं. लोइतोंबम कालाचन्द सिंह, पृ. 104-105

❖❖❖

6. उपसंहार

किसी भी देश की लोक–संस्कृति उसकी जातीय स्मृति का रूपक होती है। भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक–संस्कृति है। यह अपने प्रकृत रूप में आज भी हमारे गाँवों, जंगलों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए है। लोक–संस्कृति की आत्मा गाँवों और जंगलों में रहने वालों के रीति–रिवाजों, लोकगीतों और आचार–विचारों में निहित है। प्राचीन काल से स्त्री का कंठ गीतों को माधुर्य देता आ रहा है। त्यौहारों में, नृत्य–गीतों में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक संस्कारों पर गाये जाने वाले गीत एवं कलात्मक मांगलिक रूप हमारी लोक–संस्कृति के परिचायक हैं।

लोक–साहित्य में लोक–संस्कृति की झांकी मिलती है और जन–मानस की प्रकृत भावनाओं, स्वाभाविक आवेग उल्लास का यथार्थ स्वरूप मिलता है। लोक साहित्य में मानव हदय का यथार्थ चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है। जीवन के निश्छल और स्वाभाविक रूप का दर्शन हमें लोक साहित्य में होता है। लोक साहित्य वस्तुतः हमारी आदि संस्कृति का प्रतीक है। यही कारण है कि पूर्व मानव की सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करता रहा है। लोक साहित्य से राष्ट्रीय जीवन को गति और प्रगति प्राप्त होती है। हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, इतिहास के लिए समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि अनेक शास्त्रों के अध्ययन को पूर्ण बनाने के लिए लोक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त आवश्यकता है।

सीमोन द बोउवार ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'द सेकेन्ड सेक्स' में कहा है कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है।' परिवार व्यवस्था अस्तित्व में आने के साथ–साथ पितृसत्ता का वर्चस्व संसार के लगभग सभी समाजों में दिखाई पड़ता है। भारत के संदर्भ में भी क्रमशः ऐसी ही स्थिति थी। वैदिक काल में यहाँ स्त्रियों को शिक्षा प्राप्ति का अधिकार था, वहीं कालांतर में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से भारत में उसकी स्थिति दोयम दर्जे की हो गई। उन्नीसवीं शताब्दी तक भारतीय स्त्रियों की स्थिति में क्रमशः पतन ही देखा जा सकता है। जब तक कि पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान के प्रभाव से और पश्चिम में चल रहे सुधारवाद का प्रभाव भारत में नहीं पड़ा। इस दौरान फ्रांसीसी क्रांति के दौरान यूरोप में स्त्री जागरूकता का विस्तार हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी दृष्टिकोण को महत्ता दी। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक रूसी सुधारकों के लिए स्त्री प्रश्न एक केन्द्रीय मुद्दा बन गया, जब कि भारत में विशेषकर बंगाल और

महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाना शुरू किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहनराय, महात्मा ज्योतिबा फुले, गोविन्द रानाडे, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द जैसे समाज सुधारकों ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए, कुरीतियों को समाप्त करने, स्त्रियों में सामाजिक-चेतना उत्पन्न करने एवं कुप्रथाओं के विरूद्ध सरकारी अधिनियम बनाने से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य किये। इन सभी प्रयासों के बावजूद भी व्यावहारिक रूप से स्त्री की दशा में कुछ विशेष सुधार न हो सका, परन्तु भविष्य में भारतीय स्त्रियों की स्थिति में विकास के लिए उचित वातावरण तैयार हो गया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य मे स्त्री सुधार के प्रश्न बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों की चिंता के केन्द्र में रहे। बंगाल और महाराष्ट्र में सुधार आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव पड़ा और किसी हद तक स्त्रियों की स्थिति में सुधार भी आया। इसकी तुलना में हिन्दी पट्टी में समाज सुधार आन्दोलनों के केन्द्र में स्त्री प्रश्न होने के बावजूद आम स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई दिया। शिक्षा और संचार साधनों के विकास ने स्त्रियों को शिक्षित किया परन्तु सिर्फ उन्हीं स्त्रियों को जो किसी न किसी रूप में नगर एवं कस्बों से संपृक्त थी। ग्राम एवं मंडल स्तर की स्त्रियों की स्थिति में कम परिवर्तन आया। परिवार टूटने लगे, संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवार और खेत के छोटे-छोटे टुकडों ने ले लिया। पितृसत्तात्मक वर्चस्व ने स्त्रियों की समाज में दोयम दर्जे को स्थिति बनाए रखा। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार किसी ग्राम या मण्डल में बोली जाने वाली भाषा 'बोली' (Subdilect) कहलाती हैं, जिसे निम्न तबके के लोग तथा अशिक्षित व्यक्ति व्यवहार करते हैं। इन बोलियों में स्त्री की सामाजिक, मानसिक वेदना की अभिव्यक्ति मौखिक गीतों, लोककथाओं के माध्यम से सदियों से होती चली आयी है - अशिक्षित, अनपढ़ स्त्रियों ने अपनी वेदना और व्यथा, पीड़ा, हास-उल्लास, हर्ष- विषाद को मनुष्य जीवन के विविध पड़ावों और संस्कारों से संबंधित गीतों में अभिव्यक्ति दी, यह स्थिति भारत में प्रत्येक प्रान्त में एक समान ही रही। अंतर सिर्फ इतना ही था कि समाज के विकास की दर के अनुपात में इन लोकगीतों के कथ्य और वस्तु में अंतराल आता गया।

लोकप्रियता की दृष्टि से लोक-साहित्य की विभिन्न विधाओं में से लोकगीत सर्वोपरि है। लोकगीत दो शब्दों : लोक और गीत के योग्य से बना है। इस प्रकार से लोक विशेषण से विभूषित गीत शब्द गीत के सामान्य अर्थ से कुछ भिन्न और विशिष्ट अर्थ रखता है। लोक के विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण के पश्चात कहा जा सकता है कि सुसंस्कृत एवं परिष्कृत लोगों के प्रभाव-चक्र से परे का वह सहज स्वाभाविक समाज लोक है जो आदिम संस्कृति के पुरातन तत्वों से युक्त शास्त्रीयता से दूर और कृत्रिमता से रहित है। लोकगीत वह गेय गीत है जिसमें जन-मन का अनुरंजन सदा होता है। ये गीत

किसी जाति,समूह और देश की लोक–संस्कृतियों के परिचायक होते हैं और जीवन की धड़कनों का साहस इन में देखा जा सकता है। लोकगीत के सम्बन्ध में पाश्चात्य एवं भारतीय लोक–साहित्य के अनेक विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से विचार प्रकट किये है, परन्तु इन विचारों में साम्य–वैष्यम्य होते हुए भी उनकी मूलभूत मान्यताओं में विशेष अंतर दिखाई नहीं देता। लोकगीत आदिम मानव समाज के ऐतिहासिक महत्व एवं सांस्कृतिक गौरव के सहज प्रहरी हैं। इसमें विज्ञान की तराश नहीं मानव संस्कृति का सारल्य है तथा भावों का रसपूर्ण उभार है। अतः लोकगीत हमारे संस्कृति के मुंह बोलते चित्र है।

लोकगीत की परम्परा भारत में वैदिक काल से लेकर अब तक चली आ रही है। अधिकांशतः लोकगीतों में स्त्रियों की भागीदारी रही है। लोकगीतों में से ज्यादातर का सम्बन्ध स्त्रियों के जीवन से है। इन गीतों में स्त्री–जीवन और उसकी भाव भंगिमाओं की सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति हुई है। अतः लोकगीत और स्त्री स्वर का घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु तक कोई न कोई संस्कार होता ही रहता है। जन्म, विवाह एवं मृत्यु–लोक जीवन के प्रमुख संस्कार हैं। इनसे अनेक लोकाचार जुड़े हुए हैं और इन अवसरों पर विविध गीत गाए जाते हैं। जन्म–संस्कार के अवसर पर मणिपुरी समाज में गीत गाने का प्रचलन प्रायः नहीं है। अवध में जन्म के अवसर पर गीतों का प्रचलन है। पुत्र जन्म के अवसर पर अवध की स्त्रियाँ 'सोहर' और 'सरिया' गाती हैं लेकिन कन्या के जन्म के अवसर पर यह गीत नहीं गाये जाते कारण अवधी समाज में कन्या के विवाह में जो दहेज की प्रथा है उससे माता–पिता कन्या का जन्म लेना अहितकर समझते हैं लेकिन मणिपुरी समाज में कभी भी कन्या का जन्म शोक का विषय नहीं माना जाता। अवध के जन्म सम्बन्धी गीतों में स्त्री–पुरुष की रति–क्रीड़ा, गर्भाधान, स्त्रियों द्वारा मंदिरों में अपने गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित वरों की माँग करना, धाय का बुलाना, बाँझ स्त्रियों की करुण प्रथा और नियोग कथा के प्रसंग मिलते हैं।

अवधी समाज में विवाह के प्रत्येक अवसर पर गीत गाये जाते हैं लेकिन मणिपुरी समाज में गीत गाये जाने का प्रचलन नहीं है। अवधी विवाह सम्बन्धी गीतों में लड़कियों की शादी और दहेज को लेकर माता–पिता की परेशानी, बाल–विवाह की कुप्रथा की झलक दिखाई पड़ती है। अवध में 'जेंवनार' के अवसर पर गाली गायी जाती है। इन गाली गीतों में कभी–कभी अश्लीलता का पुट भी होता है। अवधी और मणिपुरी क्षेत्र में मृत्यु संस्कार के अवसर पर गीत गाये जाने का प्रचलन है लेकिन मृत्यु गीत अधिक संख्या में नहीं मिलते हैं। इन गीतों में प्रसन्नता अथवा उत्साह नहीं मिलता अपितु विषाद की गहरी रेखा और कहीं लोकोत्तर आश्वासन के संकेत प्राप्त होते हैं।

अवधी और मणिपुरी क्षेत्र में श्रम सम्बन्धी विभिन्न गीत प्राप्त होते हैं। मणिपुरी भाषा में श्रम–गीतों को 'शिनशु शिम्बाङ इशै' कहते हैं। अवध में चक्की पीसते समय 'जंतसार' गीत गाती है। इन गीतों में स्त्री–जीवन के सम्पूर्ण सुख–दुख, मन की समस्त आशा–निराशा की अभिव्यक्ति रहती है । इन गीतों में कहीं तो वंध्या स्त्री की मनोवेदना की अभिव्यक्ति होती है तो कहीं दुखिनी विधवा स्त्री का करुण क्रन्दन सुनने को मिलता है। कहीं–कहीं विरहिणी स्त्री की वियोग–व्यथा का वर्णन है तो कहीं सास के द्वारा वधू को दी गई नारकीय यंत्रणा के चित्र मिलते हैं। अवधी क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुरी समाज में 'जंतसार' गीतों की संख्या नहीं के बराबर है। इसका कारण यह भी है कि मणिपुरी समाज के लोग चावल खाना अधिक पसन्द करते हैं इसीलिए इसकी जगह धान कूटने के गीतों का प्रचलन है। मणिपुरी भाषा में धान कूटने के गीतों को 'फौसु इशै' कहते है। फौसु इशै का विषय अवधी के 'जंतसार' गीतों से थोड़ा भिन्न है। इन गीतों का प्रधान विषय प्रेम होता है। जिसमें पति–पत्नी और प्रेमी–प्रेमिकाओं की क्रीड़ा के साथ ही वात्सल्य रस पूर्ण गीतों का भी उल्लेख मिलता है। रोपनी कार्य अवध क्षेत्र के गाँवों में कम होता है जब कि मणिपुर में ज्यादा इसलिए अवध क्षेत्र की अपेक्षा मणिपुर में रोपनी गीत अधिक गाये जाते हैं। दोनों क्षेत्र में रोपनी गीतों के विषय में थोड़ी भिन्नता दिखाई देती है। अवधी रोपनी गीतों में अधिकतर स्त्रियों का शोषण और पितृसत्तात्मक समाज द्वारा थोपी गई वर्जनाओं, कुंठाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई हैं और मणिपुरी रोपनी गीतों में भाई–बहन का प्रगाढ़ प्रेम, किसी में स्त्री–पुरुष के प्रेम–प्रसंग तो किसी में स्त्री के पवित्र तथा आदर्श सतीत्व का वर्णन तो किसी में सौतेली माँ के कटु व्यवहार का वर्णन मिलता है। अवध और मणिपुर के निरवाही गीतों की विषयवस्तु में अंतर दिखाई देता है। अवध के निरवाही गीतों में स्त्री जीवन की करुण गाथा होती है लेकिन मणिपुरी निरवाही गीतों में स्त्री पुरुष के मिलन और विरह की भावनाएँ व्यक्त होती हैं।

अवधी और मणिपुरी क्षेत्र के कृषि सम्बन्धी अन्य गीतों में फसल काटने का उल्लेख मिलता है। अवध के कटनी गीतों में स्त्री हृदय के सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है। किसी गीत में श्रम करने में हर्ष तो किसी में विषाद की भावनाएँ मिलती है। मणिपुरी कटनी गीतों के साथ पौराणिक संदर्भ जुड़े हुए हैं। ये गीत सुनने और गानेवालों को हर्ष प्रदान करते हैं। अवधी क्षेत्र के अधिकांश चरखा गीतों में राष्ट्रप्रेम की भावना मिलती है और अन्य गीतों में दाम्पत्य जीवन का वर्णन मिलता है। जब कि मणिपुरी चरखा गीतों में दाम्पत्य जीवन का वर्णन तो मिलता है परन्तु राष्ट्रप्रेम की भावना नहीं मिलती। ऋतु गीत भारत के प्रत्येक राज्य में किसी न किसी रूप में प्रसिद्ध है लेकिन मणिपुरी समाज में ऋतुगीतों का अभाव है। प्रायः वर्षा ऋतु से ही संबंधित गीत उपलब्ध हैं। अवधी क्षेत्र में विभिन्न ऋतुओं में कजली, फाग, बारहमासा, चैता, सावन आदि गीत पाये जाते हैं। इन गीतों में दाम्पत्य जीवन की

झाँकी, स्त्रियों के मनोभाव, सुख–दुख, मान–मर्यादा आदि के सुंदर चित्रण प्राप्त होते हैं। 'लाइहराओबा' मणिपुर का प्राचीनतम परम्परागत त्यौहार है। यह त्यौहार चैत्र मास से शुरू होकर फागुन माह तक यानि आठ महीने तक मनाया जाता है। लाइहराओबा के अवसर पर कई गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में सृष्टि के निर्माण विकास के साथ–साथ दैनिक जीवन की विभिन्न क्रियाओं के भी वर्णन मिलते हैं। लाइहराओबा मणिपुरी लोक साहित्य का ही नहीं बल्कि लोक संस्कृति का भी अक्षय भण्डार है। विविध विषयों से सम्बन्धित लोकगीत भी इसके अभिन्न अंग हैं।

संस्कार गीत, श्रम गीत और ऋतु गीतों की समृद्ध परम्परा जिस प्रकार अवधी लोकगीतों में है वैसी मणिपुरी भाषा के लोकगीतों में सुलभ नहीं है। जिसके कारण – मणिपुर में महाराज गरीबनिवाज (सन् 1709-48) के शासन काल में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार हुआ और मणिपुरी भाषा (मैतै लोन) लिपि (मैतै मयेक) साहित्य का मार्ग राजाज्ञा द्वारा अवरुद्ध हो गया। "जब वैष्णव मत के प्रचारक शान्तिदास गोसाई ने मणिपुर की मूल संस्कृति की प्रकृति को पहचाने बिना उसे अपनी विचारधारा की चादर में बलात् लपेट लेना चाहा और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'महाराज गरीबनिवाज' को अपने मत में दीक्षित कर वैष्णव मत को राज–धर्म घोषित करवाने में सफलता प्राप्त करके प्राचीन पुराण ग्रन्थों को जला डालने का दुस्साहस किया तो यहाँ की साधारण जनता ने ऐसा तेवर अपनाया कि शांतिदास को प्राण रक्षा करना कठिन हो गया।" (मणिपुर : विविध संदर्भ, प्र. सं. डॉ. देवराज, हिन्दी परिषद, हिन्दी विभाग मणिपुर विश्वविद्यालय पृ. 3) मणिपुर में सन् 1732 में धर्मयुद्ध हुआ था। यह धर्म युद्ध अहिंसक था। जिसमें प्राचीन धर्मानुयायियों एवं वैष्णव धर्म प्रचारकों के बीच वैचारिक संघर्ष के बाद वैष्णव धर्म की स्थापना हो गई। वैष्णव धर्म प्रचारक शांतिदास गोसाई की प्रेरणा से राजा ने मणिपुरी प्रजा को अभिशाप दिया कि, "लोग मणिपुरी भाषा में गाना नहीं गा सकते, भजन–कीर्तन आदि नहीं कर सकते। यदि इस आज्ञा का पालन न किया गया तो पाप होगा। यदि मणिपुरी भाषा में गाना गाया जाए और दिन में तुम्हारी मृत्यु हुई तो कौए के रूप में तथा रात में तुम लोग मर गए तो उल्लू के रूप में जन्म ग्रहण करना होगा अर्थात् तुम लोग कौए तथा उल्लू का शरीर धारण करोगे। पेना (प्राचीन काल का एक बाजा) पर रोए तो नरक में पड़ जाओगे।" (कवि–श्री माला, मणिपुरी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पृ. 5) उस समय प्रजा राजा को विष्णु का अवतार मानती थी और राजाज्ञा का अक्षरशः पालन करती थी। जिन लोगों ने राजाज्ञा का पालन नहीं किया तो उन्हें जबरदस्ती स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया या फिर उन्हें मणिपुर के ही सुदूर व दुर्गम सीमा पार भेज दिया गया था। परिणामस्वरूप मणिपुरी भाषा में गाने की परम्परा अवरुद्ध हो गई।

वैष्णव धर्म के आगमन के कारण सम्पूर्ण मणिपुरी संस्कृति व परम्परा में भी व्यापक रूप से परिवर्तन हुआ। मणिपुर के पहाड़ी इलाकों में बसने वाली जनजातियों के धर्म व संस्कृति पर वैष्णव धर्म व संस्कृति का बहुत ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन घाटी में रहनेवाली मणिपुरी (मैतै) जाति के धर्म व

संस्कृति का एक तरह से पूर्णतः वैष्णवीकरण हो गया। आज मणिपुर की घाटियों में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक के प्रत्येक घरेलू कार्य में वैष्णव धर्म की छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती है। आदमी के जन्म से लेकर मृत्यु तक होनेवाले प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसरों व संस्कारों के समय संकीर्तन गाये जाते हैं। निसंदेह मणिपुरी लोकगीत भी इससे कहीं न कहीं जरूर प्रभावित हुए हैं। "यह कहना तो कठिन है कि मणिपुरी भाषा का गायन तथा स्थानीय वाद्य 'पेना' वादन पूर्ण रूप से बंद होने के बाद लोकगीतों की परम्परा अवरुद्ध हुई। निश्चित रूप से लोकगीत परम्परा पर इसका दुष्प्रभाव पड़ा। सम्प्रति मणिपुर में संस्कार सम्बन्धी लोकगीतों का प्रचलन नहीं है और न ही त्यौहारों पर गीत गाये जाते हैं। संस्कारों या त्यौहारों पर लोकगीतों के स्थान पर संस्कृत, बंगला, मैथिली, ब्रजबुलि आदि के शास्त्रीय गान की परम्परा है और यह शास्त्र पाठ या गायन प्रमुख रूप से ब्राह्मणों के द्वारा किया जाता है। गायकों को गृहस्वामी से पर्याप्त दक्षिणा प्राप्त होती है। स्वार्थवश वैष्णव धर्म प्रचारकों ने यह प्रतिबन्ध लगवाया।" (भारतीय लोकगीत–सांस्कृतिक अस्मिता–2, सं. डॉ. सुरेश गौतम, शब्द सेतु, दिल्ली, पृ. 111)

महाराज गरीबनिवाज के प्रतिबन्ध के उपरान्त भी 'लाइहराओबा' में तथा स्थानीय पर्व–त्यौहारों आदि के साथ पारम्परिक मणिपुरी भाषा के गीतों का प्रवाह पूर्णरूपेण बाधित नहीं हो सका किन्तु लोकगीतों के विविध प्रकारों की समृद्ध परम्परा जैसे अन्य प्रान्तों में दीखती है वैसी परम्परा मणिपुरी समाज में उपलब्ध नहीं है। मणिपुरी लोकगीतों को लिखित रूप में कम होने के कारण मुझे लोकगायकों से निजी तौर पर मिलना पड़ा। मणिपुर प्रान्त के सुदूर गाँवों में जाकर मैंने लोकगायकों से गीत गवाए उन्हें 'रिकार्ड' किया। इन क्षेत्र कार्य के अनंतर मुझे बहुत–सी समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। कहीं भाषा की समस्या थी तो कहीं आर्थिक लोभ–लाभ का प्रश्न और दूरस्थ गाँवों में सुरक्षा की समस्या से भी मुझे जूझना पड़ा।

अवधी लोकगीतों में स्त्रियों की दयनीय स्थिति, करुणा एवं विवशता का प्राधान्य है, वही मणिपुरी लोकगीतों में दाम्पत्य प्रेम, संयोग प्रेमी–प्रेमिकाओं के मिलन के उल्लासजनक भावों का प्राधान्य है। स्थान एवं जलवायु के अंतर से लोकगीतों की वस्तु में यह अंतर मुझे शोधकार्य अनन्तर ज्ञात हुआ हम ऐसे समय में जी रहे हैं, जब कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप बाजारीकरण ने साहित्य के विभिन्न विधाओं के समक्ष अस्तित्व की चुनौती खड़ी कर दी है। ऐसे में क्षेत्र एवं अनुसंधान कार्य के दौरान लिये मौखिक साक्षात्कारों एवं लोकगीतों के संकलन ने मुझमें लोकगीतों के शोधकार्य में और भी अधिक दिलचस्पी जागृत की । प्रस्तुत शोध–प्रबंध लोकगीतों की लुप्त होती जा रही विधा को साहित्य के केन्द्र में स्थापित करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

❖❖❖

7. संदर्भ ग्रंथ सूची :

आधार ग्रंथ

(अवधी)

१. अवधी लोकगीत–सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्र. सं, १९७८

२. अवधी लोकगीत (भाग–१,२,)– सं. डॉ. महेश प्रताप नारायण अवस्थी, वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. १९८५.

३. अवधी श्रमगीत – सं. प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित–स्वाध्याय प्रकाशन, लखनऊ, प्र. सं. २००५.

४. अवधी–लोकरंग – सं. डॉ. कमला सिंह–हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र. सं. २०००.

५. चंदन चौक–(उत्तर प्रदेश लोकगीतों का संग्रह)–सं. डॉ. विद्यानिवास मिश्र–उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ, प्र. सं. १९८९.

६. अवध मा होली खेलौं रघुवीर (हजार फाग गीतों का संकलन)– सं. डॉ. रामबहादुर मिश्र, संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश, प्र. सं. १९९९

७. वाचिक कविता: अवधी–सं. विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली– द्वि. सं. २००५.

(मणिपुरी)

१. मणिपुरी खुन्नुड इशै खोमजन्बा–सं. डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्र. सं. १९९९.

२. मैते इनातकी इशै–सं. श्री कलाचन्द्र सिंह, इम्फाल–१९६९

※ लोकगीत संबंधी इस अध्ययन के लिए आधारभूत सामग्री की उपलब्धि के तीन साधन है–एक तो अवधी और मणिपुरी लोकगीतों के प्रकाशित संकलन, दूसरा–क्षेत्र कार्य के दौरान संकलित लोकगीत और तीसरा–विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री । यथावसर लोकसाहित्य संबंधी अन्य ग्रंथों से भी उदाहरण दिए गए हैं ।

(हिन्दी)

१. अवधी का लोक–साहित्य–डॉ. सरोजनी रोहतगी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. सं. १९७१.

२. अवधी लोक वांग्मय–डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, स्वाध्याय प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्र. सं. २००८.

३. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौंदर्य–डॉ. मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, प्र. सं. २००७.

४. अवधी साहित्य सर्वेक्षण और समीक्षा–सं. जगदीश पाण्डेय, लोक साहित्य संस्थान, इलाहाबाद–१९७८

५. अवधी और भोजपुरी लोकगीतों मे रामकथा–डॉ. किरण मराली, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्र. सं. १९८४.

६. अवधी का विकास–डॉ. बाबूराव सक्सेना, हिन्दुस्थानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. सं. १९७२.

७. अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य–सं. राजेन्द्र यादव एवं अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, २०००.

८. आदमी की निगाह में औरत –राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१

९. आधुनिकता और महिला उत्पीड़न– मानचंद खडेला, पोइन्टर पब्लिशर्स प. सं. २००६

१०. औरत: कल, और कल–आरारानी व्होरा, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली. प्र. सं. २००६

११. इरोम शर्मिला और मणिपुर जनता की साहस–यात्रा – दीप्ति मेहरोत्रा, दामिश बुक्स, दिल्ली प. सं. २००६.

१२. कविता–कौमुदी–तीसरा भाग(ग्रामगीता)–रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मंदिर (उ.प्र.) प्र. सं. १९९०

१३. खड़ीबोली का लोक–साहित्य–डॉ. सत्या गुप्त, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्र. सं. १९६७.

१४. गंगाघाटी के गीत–डॉ. हीरालाल तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. प्र. सं. १९८०

१५. धरती गाती है – डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, दिल्ली १९४८.

१६. नारी शोषण: आइने और आयाम–आशाराणी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र. सं. १९९२

१७. नारी : अन्तदर्पण व समाज – सं. चन्द्र मोहन अग्रवाल, इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्युटर्स, दिल्ली– २००३

१८. पूर्वोत्तर भारत के राज्य –डॉ. माता प्रसाद, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली. प्र. सं. १९९८

१९. भदावरी लोकगीतों में फाग–डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ब्रजभारती प्रकाशन, फाल्गुन–२००९

२०. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – पृथ्वीकुमार अग्रवाल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

२१. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व– सं. ब्रह्मवर्चस्व, अखण्ड ज्योति संस्थान. मथुरा, द्वितीय संस्करण –१९९८

२२. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान–उमा शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. १९९४

२३. भारतीय लोक साहित्य–डॉ. श्याम परमा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. बम्बई, कॉपी राईट १९५४

२४. मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत – डॉ. मोहनान्द झा. जानकी प्रकाशन, पटना १९८९

२५. मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन–डॉ. ताराकान्त मिश्र, जानकी प्रकाशन, पटना प्र. सं. १९८५

२६. मणिपुरी लोक साहित्य–तम्फासना देवी, डी. मणिपुर गीता प्रेस, इम्फाल–१९७४

२७. मनुस्मृति: सं. गंगानाथ झा. परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली पुनर्मुद्रण संस्करण–१९९८

२८. महाभारत – गीता प्रेस, गोरखपुर १९५५

२९. लोक साहित्य की भूमिका– डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, सप्तम संस्करण १९९८

३०. रामचरित मानस : तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर

३१. लोक साहित्य विज्ञान–डॉ. सत्येन्द्र, पोरवाली प्रिटिंग प्रेस, आगरा द्वि. संशोधित संस्करण १९७१

३२. लोक संस्कृति की रूपरेखा – डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र. सं. १९८८.

३३. लोक–साहित्य सरस प्रसंग– जगदीश पीयूष, शुभदा प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. १९८१

३४. लोक साहित्य के प्रतिमान–डॉ. कुन्दन लाल उत्प्रेती, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ.

३५. लोक–साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन–डॉ. महेश गुप्ता, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. २००७

३६. लोक–साहित्य (अहि राणीखान देशी बोली के परिप्रेक्ष्य में) –डॉ. बापूराव देसाई, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. १९९६

३७. लोक–साहित्य विमर्श– डॉ. श्याम परमार, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर, प्र. सं. १९७२

३८. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन–डॉ. कुलदीप, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र. सं. १९७२

३९. लोकगीतों की सांस्कृति पृष्ठभूमि– डॉ. विद्या चौहान, प्रगति प्रकाशन, आगरा.

४०. लोकगीतों का समाज शास्त्रीय अध्ययन–डॉ. छोटेलाल बहरदार, भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. २०००

४१. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम–जैन शांति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. प्र. सं. १९८३

४२. लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन (बुन्देलखण्ड एवं बघेलखण्ड के संदर्भ में) –डॉ. (श्रीमती) विनोद तिवारी, साहित्य वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. १९८७

४३. लोकगीतों में क्रान्तिकारी चेतना – सं. विश्वमिश्र उपाध्याय, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अगस्त १९९७

४४. लोक–रंग (उ.प्र.) – दयाप्रकाश सिन्हा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ १९९०

४५. श्रीमदभगवद्गीता–श्रीकृष्णदास गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर,

४६. स्त्री संघर्ष का इतिहास (१८००–१९९०) – सं. राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली , प्र. सं. २००२

४७. स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम–डॉ. ऋषभ देव शर्मा, गीता प्रकाशन, हैदराबाद, प्र. सं. २००४

४८. स्त्रीत्व का मानचित्र–डॉ. अनामिका, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, पेपरबँक संस्करण– २००१

४९. हिन्दी व्यंग साहित्य में स्त्री–डॉ. सोलजा माहेश्वरी, विकास प्रकाशन, कानपूर १९९७

५०. हिन्दू–विवाह की उत्पत्ति और विकास– डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, भारतीय लोक–संस्कृति शोध संस्थान, वाराणसी, प्र. सं. १९७४

५१. हिन्दी के लोकगीत (भाग –१) सं. डॉ. महेश प्रतापनारायण अवस्थी, सत्यवती प्रज्ञा लोक, प्रयाग, प्र. सं. २००२

५२. हिंदू विवाह में कन्यादान का स्थान –सम्पूर्णनन्द, भारतीय ज्ञानदीप प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ सं. १९७०

५३. हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्त्व–श्रीमती प्रीति मिश्र, आदित्य पब्लिशर्स, (म. प्र.) २००१

५४. हिन्दी काव्य और नारी– डॉ. जुल्फि कारबान देसाई, विनय प्रकाशक कानपुर, प्र. सं. २००५

५५. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास –डॉ. सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली. चौथा संस्करण २०११

8. सहाय्यक ग्रंथ सूची :

१. अंगिका लोक साहित्य (मूल अंगिका के अनुवाद: डॉ. बहादुर मिश्र, शब्द सृष्टि, दिल्ली. सं. २००९

२. इक्कीसवीं सदी की ओर– सं. सुमन कृष्णाकांत, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली. प्र. सं. २००१

३. कश्मीर का लोक–साहित्य– मोहन कृष्ण दर, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्र. सं. १९६३

४. क्या अपराध है औरत होना ? – चन्द्रसिंह चेतन, ग्रन्थ विकास सी–३७, राजापार्क, जयपुर, सं. २००९

५. कुमाउँनी लोक साहित्य की पृष्ठभूमि–डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्र. सं. १९७९

६. धूमि–धूसरित मणियाँ (लोकगीतों पर एक विवेचन) –सीता एवं दमयन्ती, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, द्वितीय सं. १९६४

७. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य–डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी, वाणी प्रकाशन, प्र. सं. २००६

८. बाँसरी बज रही – श्री जगदीश त्रिगुणायत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र. सं. १९५७

९. भारतीय लोक–साहित्य की रूपरेखा–डॉ. दुर्गा भागवत, वि. भू. प्रकाशन, ज्ञानी बार्डर, साहिबाबाद, प्र. सं. १९८१

१०. भारतीय लोकगीत : सांस्कृतिक अस्मिता (१) सं. डॉ. सुरेश गौतम, शद्व सेतु, दिल्ली प्र. सं. २००२

११. भारतीय लोक साहित्य – श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, कापी राईट – १९५४

१२. भारतीय संस्कृति–डॉ. देवराज, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, लखनऊ, प्र. सं. १९६०

१३. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा –पृथ्वीराज अग्रवाल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सं. २००० ई.

१४. भारतीय समाज–श्यामचरण दुबे, अनुवाद–वंदना मिश्र, नेशनल बुक ट्रक्ट, इंडिया, प्र. सं. २००१

१५. भारतीय समाज में नारी आदर्शो का विकास – चन्द्रबली त्रिपाठी, दुर्गावती प्रकाशन, गोरखपूर, प्र. सं. १९८१

१६. भारतीय नारी : अस्मिता और अधिकार–आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र. सं. १९८६

१७. भारत के त्यौहार –सुरेशचन्द्र शर्मा, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र. सं. १९६३

१८. भोजपुरी लोकगीतों के विविध रूप– प्रो. श्रीधर मिश्र, प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद,प्र. सं. १९६१

१९. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन–डॉ. मोहनदान चारण, राजस्थान साहित्य मन्दिर, जोधपुर, प्र. सं. १९८०

२०. रूस लोक साहित्य – वी राजेंद्र ऋषि, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ६ सं. १९५६

२१. वनवासी भील और उनकी संस्कृति–श्रीचंद्र जैन, रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर,–३, द्वितीय सं. १९४७

२२. लोक वार्ता विज्ञान (खण्ड –१, २) डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, प्र. सं. १९९०.

२३. लोक साहित्य : सिद्धान्त एवं प्रयोग –डॉ. श्रीराम शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र. सं. १९७३

२४. 'लोक' – पीयूष दईया, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर (राजस्थान), प्र. सं. २००२

२५. लोक साहित्य–डॉ. बापुराव देसाई, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. १९९६

२६. लोक साहित्य का अध्ययन –डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र. सं. १९७८

२७. लोक–साहित्य के आयाम–जगदीश प्रसाद पीयूष, लोक साहित्य संस्थान इलाहाबाद, प्र. सं. १९७८.

२८. लोक : परम्परा पहचान एवं प्रवाह – डॉ. श्यामसुंदर दुबे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली. प्र. सं. २००३.

२९. लोकवार्ता की पगंडडियाँ– डॉ. सत्येन्द्र, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, राजस्थान, प्र. सं. १९७४.

३०. लोक संस्कृति और इतिहास– बद्री नारायण, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्र. सं. १९९४.

३१. लोक और लोक का स्वर –डॉ. विद्यानिवास मिश्र, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. २०००.

३२. लोकगीतो में रस योजना– डॉ. शिवदयाल जोशी, इन्दु प्रकाशन, अलीगड, प्र. सं. १९८५

३३. लोकगीत की सामाजिक व्याख्या – डॉ. कृष्णदास, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, प्र. सं. १९५६.

३४. लोकधारा के नये आयाम– डॉ. भीमसिंह मलिक –पल्लव प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. २००२.

३५. विवाह का समाजशास्त्र– डॉ. एम. एम. लवानिया, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, प्र. सं. २००९.

३६. विवाहिक जीवन – के. पी. भगवत, अनु. श्रीमती कमला भावे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली.

३७. व्रत और त्यौहार पौराणिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – जैन शांति, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्र. सं. १९९९.

३८. श्रृंखला की कडियां – महादेवी वर्मा, भारतीय भंडार, इलाहाबाद, प्र. सं. १९७७.

३९. स्त्री घोष– कुमुद शर्मा, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. २००२.

४०. स्त्रियों की पराधीनता जॉन स्टुअर्ट मिल, अनु. प्रगति सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र. सं. २००२.

४१. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत–डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद,प्र. सं. १९९०.

४२. हिन्दी लोक साहित्य (प्रथम खण्ड) – डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, विद्या विहार ८७/४० ए. कानपुर सं. १९८१.

४३. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत – सं. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद प्र. सं. १९९०.

४४. हिन्दू–विवाह का संक्षिप्त इतिहास – प्रो. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्र. सं. १९७०.

४५. हिन्दू स्त्री का जीवन– पं. रमाबाई, अनुवाद : शंभू जोशी, संवाद प्रकाशन, मेरठ (उ.प्र.), प्र. सं. २००६.

(मणिपुरी)

१. क्वाथा चीडदा ताबा मैतै खुन–श्री. मयाडलम्बम गौरचन्द्र, टाइम पिपलस, काकचिड–प्र. सं. १९९५.

२. चीनवुड साहित्य–डॉ. हुइरेम बिहारी सिंह, डी. क्लचरेल, फोरम, इम्फाल, प्र. सं. २०००

३. पेना–एन हरिमिति देवी, पेच पब्लिशिंग हाउस, इम्फाल, प्र. सं. २००७.

४. मणिपुरी लोक–साहित्य (मैतै)–सं. लाइश्रम बीरेन्द्र कुमार सिंह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्र. सं. २००८.

५. मणिपुरी फोक्लोरगी मचाकशिंग (चीनबुड अमसुं अईबा)– सं. डॉ. सोराम सनातोम्बी, मणिपुरी स्टेट आंक्राइंभस, इम्फाल, सं. १९९५

६. मणिपुरी कल्चरदा मीतयें अमा–डॉ. पी. गुनिन्द्र, पोकनफम पब्लिकेशन,इम्फाल २००५

७. मणिपुरी साहित्यदा फेमिनिजम–आर. जे. मैतै, एन. आर. पब्लिकेशन्स, इम्फाल २००९.
८. मणिपुरी लोक–साहित्य–राजकुमारी तम्फासना देवी, डी. मणिपुर, गीता प्रेस, इम्फाल– १९७४.
९. मणिपुरी नातका मरीलैनबा ईशैगी यंत्र–डॉ. लाइश्रम तेजबति, डिजिटेल प्रिन्टर, इम्फाल, प्र. सं. २००९.
१०. मणिपुरी कल्चरदा मीतयेङ अमा (प्र. खण्ड)– डॉ. पाओनम गुनिन्द्र, पोकनफम पब्लिकेशन्स, इम्फाल २०००.
११. मैतैगी लुहोंबा अमादि लौना–लैनबगी वायेन वाखुन–बी कुचलन्द्र शर्मा, डी. कल्चरल फोरम, इम्फाल– १९९८.
१२. फुंङगवारी शिंबुल–सं. बी. जयन्तकुमार शर्मा, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्र. सं. २००३.
१३. पांङगनी खुन्नुड इशै–सं. म. अबुदर राहमान अमसुं कयामुद्दिन, लिबरिटी पब्लिशिंग एसोसिएशन. इम्फाल– १९८६.

(English Books)

1. Folklore and Folklife in India - By. Sankar Sen Gupta, Indian Publications] Culcuta-1975
2. My Experience in Manipur and Naga hills - By. Johnstone Jems, Vivek Publishing house, Delhi- 1971.
3. My Three Year in Manipur - By. Grimwood Clair, Gyan Publishing house, new Delhi-2000.
4. The Meiteis-By. T. C. Hodson, B.R. Publishing Co. New Delhi- 1975.
5. Aspect of Indian Culture - By. E. Nikanta singh. Imphal- 1982.
6. Meitei Lai- Haraoba-By. Shri Ngariyayanbam Kulachanda Singh. Sanakonung Publishing. Imphal-1963.
7. The Religion of Manipur- By- Saraj. NaliniParratt. Culcuta- 1980.
8. History of Manipur(Volume-1)-By. Gangmumei Kabui.National Publication House. New Delhi. First Edition. 1991.
9. Triben And Castes of Manipur-By. Sipra Sen] Mittal Publication. New Delhi. First Edition. 1992.
10. Source fo the History of Manipur-Edited by Dr. S.N. Pandey. National Publishing House. New Delhi. First Published. 1985.

पत्र–पत्रिकाएँ :

१. जनपद–सं. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, वर्ष– १, अंक 1

२. प्रवासी संसार (अवधी विशेषांक) सं–राकेश पाण्डेय, सम्पादकीय कार्यालय,दिल्ली, अंक ४, वर्ष ६

३. शोध–दिशा–सं. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, हिन्दी साहित्य निकेतन, (उ. प्र.) अंक ४ जुलाई–दिसम्बर– २००९.

४. संगीत (लोक–संगीत अंक) –सं. लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हायरस, (उ. प्र.), अंक १ वर्ष– ३२ जनवरी– १९६६

५. समन्वय पूर्वोत्तर–प्र. सं. रामवीर सिंह, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, अंक ५, जनवरी–मार्च २००९

६. समाज–सं. महावीर अधिकार, मुख्य कार्यालय, एन्ड कनाट प्लेस, नई दिल्ली, अंक–६, वर्ष १ जुलाई– १९५४

७. समन्वय पूर्वोत्तर–सं. विद्याशंकर शुक्ल, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, अंक –११, अप्रैल–जून २०११

८. साहित्य अमृत–सं, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी , मुद्रक तथा स्वस्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा ४/२९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, अंक –५०, वर्ष–२६, दिसम्बर–२०१०

९. संस्कृति–सं. मदन शर्मा, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, अंक ८० वर्ष, २७, जुलाई सितम्बर–१९८५.

१०. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक)– सं. रामनाथ सुमन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण –१९९५.

११. साखी–सं. केदारनाथ सिंह, मनोज कुमार सिंह, सचिव–प्रेमचन्द साहित्य संस्थान, प्रेमचन्द्र पार्क, बेतियाहाता गोरखपुर (उ.प्र.) द्वारा प्रकाशित, अंक २०, अप्रैल २०१०

१२. संस्कृति–सं. भारतेश कुमार मिश्र, भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय, शास्त्री भवन, नई दिल्ली, अंक– २८ – २०१०

१३. साहित्य भारती–सं. हरीश नारायण सिंह, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, अंक ३, वर्ष १३, अप्रैल–जून–२०१०

परिशिष्ट

१

मणिपुरी लोकगीत

(मृत्यु संस्कार के गीत)

१

चतलसे चतलसे पोइरै तम्ना
चतलसे चतलसे ।
लम्बी लमशां
लाकपदा हकचां
पोलां अतिंडा लाक्लेदो प्रान्ना
दिहे मङादि लमदम
कैदा पाईखिबनो ?
खडहौदे ताइबं
कडाओनदूना लैहौरे ।

२

खम्नु किकोइ हिरानबा
हिरू कोक्हा फम्मिबा
शवा पुंदा लेप्लिबा
शाबिनबु कौशे मरकने
ननाओ लाइबळ थीबिना
शाबीनबु कोगे मान्जा ओ ।
हिरान ङम्लोइ योयमनाइ
लहान ताडूबं पाल्लिङै
ताइबंनबु मालं पानबदा
नपनगी इंखोल चाइगोननुं
शिडेन्नबु लैयाम शाहपने
हैरांनबु ताओजिं हैमुल्ले
नहा ओइबगी हौनशा
शिङेन्नबु चिनगे लौनिबा
लै खायखिदबा नमाने
हैरांबु पीखिदबा नपन्ने
इमा माइबगी मचनने
इपु माइबगी मशुने

शिरोइ नारोह हायबदाइ
शिरक्ले नारक्ले हायरगा
हिरानवी ओ हायबदि
हिरान ङम्लोइ योयमनाई

नङ्नबु ङम्लाइ मताकओ
हंङोइ पानजेन नुराबी
लैखु लैशक हैरवी
लैराइ लेंथा खंलबी
खोयनौ नङबु इता कौगे
खोयनौ नङबु चन्नबी
हिरानबी ओ इतारोइ

नङ्ना ङम्लोइ मतोकओ
ऐबु पाक्पा पनथौना
वाकयै हिबु हापलकये
ऐबु पाकपी पलेमना
हिरान फिगा हापलकये
इदु निंथौ चाओदबना
तोंजे नौबु हापलकये
इशाबि ऐना इचेना
हिरान रोनबु हापलकये
शम्बुन अमना पाम्बै ओइना
शम्लां अमना खोङ याना
ननाओ लाइबक थीबिदि
लानजखगे खंलेन येंबी हौरो ।

(श्रमगीत)

धन कूटते समय का गीत

(फौशु इशै)

३

चरा चबु चलोईबा
फोबु लोकपा यानवा
नङ्ना चाकपु हायरगा
फोशाक चजिक नमथिबी
चाकपु शादूना पीजगे
नङ्ना येन्जाङ हायरगा
लफु येन्दङ शुम्नमदवि
येन्जाबुं शादूना पीजगे
नङ्ना ङाबु हायरगा
खोंबान ङाचक कोकचाओबि
ङानु शादुना पीजगे
चाहा चाहा...
हादबा यादे चाहा ।

लौयान इशै

४

हो हैया हो हैया
खाले लोबू यानसिदा
लाइनिंथो लाइरेम्बी मनाइशा
खाले लौतारूरसे
इङेल लौकुम्मुरसे
लांले कोंयान वारूकोन
तानो याफाकपनिदा
ऊली ऊल चीङ

मङान ताना वाङबा चीङ
शेल्लोइ लुवां चीङ
पोंशम लौंदि लौनिंतुम
वांखम लौदि लौनिं फाक
पाखं शनम तोमयात लौ
तेकपी खोङशोइ लौ
खारा ईफुत लौ
पेरूक तानतुम येनशिन लौ
इपा लौंदि यानलसि
थांइ चींदा पै लोइमोम
पुंगा थोन मोंबा शंगाइ
शरिक लिगुम लिजगे
शेनकाओ लिगुम लिजगे ।

५

हो हैया हो हैया
खाले लौबु यानसिदा
लाइनिंथौ लाइरेम्बी मनाइशा
खालै लौतारूरसे
लांलेन फोंयान वारूकोन
तेनौ याफकपनिदा
उलि उल चीं
नौङा पोकपी चीं
मङान ताना वाबा चीं
शेल्लोइ लुवां चीं
पोंशम लोंदि लौनिंतुम
वांखम लौदि लौनिं फाक
पाखं शनम तोमयार लौ
तेकपी खोङशोइ लौ
खारा ईफुत लौ
पेरूक तानतुम येनशिन लौ
इपा लौदि यानलसि
हो यानलू यानलसि

थांइ चींदा पै लाइमोम
पुँगा थोन मोंबा शंगाइ
शरिक लिगुम लिजगे
शेनकाओ लिगुम लिजगे।

फौगो इशै:

६

हो लाईरेम्मा फोओइबी
तोय तोय तोय ।
थाङयी फोबु पैवीरो
तोय तोय तोय ।
चाककू लनकुबिररो
तोय तोय तोय ।
थाङयीना चीङदूम शाबीरो
तोय तोय तोय ।
हो लाईरेम्मा फोओईबी
तोय तोय तोय ।

७

होय होय हया हया रे
लाईरेम्मा नङबु लेङखतलसे
नातै अकोङजाम्बा मशुमाङदा
नते फमदा तेरशि
नयोफमदा योरशि
होय होय हया हे ।

८

उपाल चैरों नाचुमना
चैरोंना खाङयेनरेदो
फौगोलना तोइगाओनरेदो
चरुना फगोम्नरेदो

चाम्लौना हुमाई मरें हो
मालंना इचीक थेम्लेदो ।

९

हा लाइरेम्बा
तोय तोय तोय
चाकु लनशुबीरो
तोय तोय तोय
फोना चींदुम शाबिरो
तोय तोय तोय।

रोपनी गीत (लौरीं इशै)

१०

शजीबु लाकयेन ताइरे
कोंबा लैयौं फाले
इङा कुमदमलकले
इङेन कुमखाइरक्ले
इङोइ नुरा पोनजेनबी हो कुमदमले
या हरी कुमदमगी
हो–हो, हो–दे.
पाइमा लाथों खासिदा
हो तम्लबा हे दे ।

कटनी

११

खोंजोमनुबी युंलक्ले ।
हांखोम्बना लैकाइ कोयखिबदु, हल्लक्तरे दे ।
हांखोम्बना इहोम कोयदेद,
कौरौगीनबु खोंजामनुबीगा कायबनि ।
मेन्ज मेनौओ ।

आ: मेन्ज खोइराइ, खोइरोइ चींदे होव ।
इबुङोना अमुदोन नुंशि चंबी ताराळ चोंदाम्ब,
चंबी लाराक थहलग । उं ।
आ: अपामगीना अमुदोन नुंशि काद यौगे ए,
हायरदना उं ।
नुंशिनबु काद थुंगे हायरदना ।
चंबी लाराळ थतलगा उं ।
शींङेन्न अमुदोन नुंशि, लैरां माबु खयोम लाकपदि,
एकादशी नुमित थोकउरमाने ने:
लैरां माना हिगाय वादुम ओइरे ।

१२

इताद हाओसि नामोइनु,
इताद हाओसि नामोदनु,
हाओजम चनु फत्तबीना,
लवाइरेन मोंब कोइरेनथक्हा,
मोंब चैबीरे ।

१३

शजिबुगीदनबु इमानओ ।
नुंशि लाकयेन ताइरक्लेने, इमाखोय ।
इबुङोन अमुदीन नुंशि कोंब लमथोङ फातलक्ले ।
तलागीना, नुंशि शिशिन्नबशिंदुना,
तलागी येन्नीं हुल्लक्लेने ।
पामेलगी नाशिन्नबशिंदुना,
पालेमगी नापुं फारकलेदो–ओ: ओ: ।
मपारि नुंशि कायनखिबशिंदुना,
मालेम लैद ओल्लदुना, हिकना हिकना कपलकलेदो–ओ ओ ।
मपारि कायनबशिंदुना मथंलेन नुंशि कायनबशिंदुना,
इपारिगी करि शेहसि हायरदना
इमोमगी करि थोनसिगे हायरदना
मथंलेन ममान अनिदुबु, चिकन चिकन वातानरकलेदो ।
शजिबुगी लाकयेन हाइरकपा मतमदुदा,

आ: मपारि कायनखिबशिंदु, मथंलेन शेतनखिबशिंदु,
मालेम लैदा ओल्लदुना.
हिकन हिकन ए: कप्लकलेदो,
शाबी थंलेन मान्ज नंदुदि ।

प्रेम गीत

१४

इपुरोइदि इबंङो,
ननाइ ओइना लैजगै ।
लाइनिंथोदि इबुंङो,
पुकनिंग चेतना नींजगे ।।
इबुङोगी उमंदा,
लैरांतबु ओइरदूना ।।
हौजरगे लैकोन्दा, लैकालाम्ना शाएचगे ।।
लैकालाम्ना शाएचगे ।।
कुमजा मएम नाइदना,
नुंशिबा लैनम ओइउनबीयु ।।
थौजालगी मशक पीनबियु,
थौजालहबु पीनबियु ।।
थौजालगी मशक पीनबियु,
थौजालहबु पीनबियु ।।
इवुङोगी लमचतना,
खोइमु खोइबु ओइबिरो ।।
लैरांगी लैही चुपतुना,
थौजालगी महै पीनबियु, ।।
चनजरोइये लैनासु,
ताइबङ मैशा लांबना ।।
अयोन अरान ङाकपियु ।।
अरान ङाकपीयु ।।
लंजबा खिबिक कोकपियु ।।
थोजालगी महै पीनबियु ।।
नतेफमदा तेशनबियु,
नहनफमदा हनजिनबियु ।

खुबाक लाइखत याजरि,
थौजाल लैपुन, चाइथबियु ।।०।।

१५

शाबी इबुंङो नुंशिबा
थंलेन मान्जा पाम्मुवा
पलेम लाइबक चाओबीना
सना कैथेंल काखिङैदा
ननाओ लाइबक थीबीना
तरागी चयोग खाकचरमगे
शामु पाङगल कल्लबा
इरिल तुरेलगी इचिन्दा
पाखङ खोंदोइ हुनबीरकओ
मागी मचा ओइबा
थंलेम मान्जा पाम्मुबा नहाकपु ।

१६

शाबी इबुंङो नुंशिबा
मानज नङगी पाखलदा
ननाओबु करि ओइरसिगे
पाम्मु नखोङ हायगे थौरांजबा
पनथौना चैराक कनखिबना
पलेमना वारक चेतखिबना
नुंशि चेंलौ शक्पु उङमद्रे
हयेंमुक्की मपोक लांओन्दा
नुंशि शुमां मथौबुङ
तिंथौ ओइना होरगा
मानज नङना नुमिदां
थाङगा लैकाई कोइरूबा
हल्लकपदा लैकाई कोइरूबा
हल्लकपदा पाम्मु खुयादा
उफुल लैरिक तकथोकतुना
इसाबीगी नखोङ हाम्बा शकचगे

थंलेन सेवा
पन्दोल लोम्बा शकचगे ।
हनदक्की मपोकसिगीदि
लोइबी चींगी चामलौ
लाएक शेतपगुम
पाम्मु नङ्गा शेतनरे
ननाओ ऐबु वारौबीनुको: ।

१७

चरोइना तेतु खोंलकले
क्काकना लमपाओ शिवलकले
नुंशिबा याओल्लो
तादबा पलेम ताखिनि
खङ्दबा पन्थौ खङखिनी ।

१८

अपामना नुंशि शाबा ताइबङ लैहौरो ।
नुंशि ऐनु नखुत चनगे नीलंबा
लीएकऊ अपाम नुंशि ऐगी इखोङ्गुल
लमजिंबीगनि लांलोन खुदिं अपाम नंबु ।
ङसि कोबा नोंसिदी
चतलगे नुंशि ऐहाकित, लैहौरो अपाम नहाकना ।
थम्मोइ हीरि चेतना कोन ।
नुंशि ऐबु थिरकऊ
अपाम नंना खमना पामना लैहौनङाइ
खम्बा कौना पोक
नुशिं ऐना थोयना वांना हन्नङाइ
थोइबी कौना पोक
नुंशि मशक खङ्नबा तुं,
खङादे, लांलोन कयागी मतुं,
लैरे अपाम नंगी नकादा ।
नुंशि पनथुंनसि इथंलेन।

लोरी गीत

१९

नोंना वा–वा चुबने
ईमागी लांलेन तुमथरोने,
इंङागी नौंहौना कनवने
ईमागी लांलेन तुमथरोने,
हुम हुम हैया हुम हैया हुम ।

कोरौ नुमिहना थेंलकपने
पानथौ नपाना खारै लबुक माइकै पांखिबा
हलकपना हाल्लबादे इमादि
तरागी चेनेयेनसु लैहरि,
खारासु फौसु शुदरि
खारी फौसु शुदरि
खारी फौबु मासुगे
लांलेन तुमथरो
हुम हुम, हैया हुम, हैया हुम

पानथो नपाना हलकपबु हालबदि लांलेन
तरागी चाकपु थोंबबु लोइद्ररबदि
खोइरांनरनि खोइशाओनरनि
ईमागी शामु नंगलदा

२०

हुम हुम हुम
हया हयुम हुम
खोमलेन तुमखुल ताल्लोको
तांलौ इचिक हुल्लकले
हारौनसु शैरोइ तम्लकले
पारी ओ चाउद्रिबा
खोमलेन तुमखुन ताल्लोको
हुम हुम हुम
हया हयुम हुम

थाजना कोकतोल लोमलकले
इनुं चबुक लोल्लकले ।
शजिकना नोजंम याल्लानि
थबाना थाज लमजिंलानि
पारी ओ चाउद्रिबा
खोमलेन तुमखुन ताल्लोको ।
हुम हुम हुम
हया हयुम हुम

२१

था था थाबुंतोन
नचा मोराम्बी पोबीगे
पोबी शनम नम्बीगे
हेवां मशा अमता यादरकउ ।
नथिरक्ता ताखेर
अमुक हन्ना यादरकउ ।
नयुंलक्ता ताखरे ।
थ्वा कनाना चाबिनी ।

परिशिष्ट

२

क्षेत्र कार्य के दौरान लिए गए साक्षात्कारों की सूची

क्षेत्र कार्य के दौरान लिए गए साक्षात्कारों की सूची

क्र.सं.	नाम	आयु	विशेषज्ञता	पता
१.	लैमापोकपम याइमा मैते	७३	पेना वादक	लैमापोकपम, मणिपुर
२.	मयाङ्लाम्बम गौराचन्द्र मैतै	६५	पंडित	काकचिङ, मणिपुर
३.	पुखराम्बम तोलहाल मैतै	८५	पंडित	काकचिङ, मणिपुर
४.	पुथेम चाओबी लैमा	६१	लोक गायिका	अन्द्रो, मणिपुर
५.	हिजम हिराचन्द्र मैते	८०	पंडित	अन्द्रो, मणिपुर
६.	फानजाओबम अचौ मैतै	७७	खुनजाहनबा	अन्द्रो, मणिपुर
७.	युमखाइबम उमाचन्द्रा मैतै	७३	पंडित	अन्द्रो, मणिपुर
८.	अङोम कोमोल सिंह	८२	लोक गायक	सुगनु, मणिपुर
९.	कोनजेंबम धानपति	५१	लोक गायिका	खुरखुल,मणिपुर
१०.	लैचोनबम सोनजाओ	७१	बाँसुरी वादक	लैमराम, मणिपुर
११.	लैचोनबम	७७	खुलाकपा	लैमराम, मणिपुर
१२.	लैमापोकपम तोलहाल मैतै	८८	सस्वर पाठ	लैमराम, मणिपुर
१३.	लैमापोकपम ओंबी लैरेन	८५	लोक गायिका	लैमराम, मणिपुर
१४.	सरुङबम धर्ममाला देवी	६७	कुम्हारी	अन्द्रो, मणिपुर
१५.	पुखराम्बम गन्धासिंह	६५	सस्वर पाठ	लाइरेन्जम, मणिपुर
१६.	लाइश्रम लैबाकमचा मैतै	७८	पेना वादक	पुखरम्बम, मणिपुर
१७.	खुराईजम इबोबी मैतै	७१	पंडित	युमनाम हुइद्रोम, मणिपुर
१८.	मुतुवा बाहदूर	६६	मुतुवा संग्रहालय निर्देशक	अन्दो, मणिपुर
१९.	शौग्रापकम शान्तबाबू मैतै	४८	लोक साहित्य की जानकारी	इरोम मैज़ाओ, मणिपुर
२०.	इरुङबम पद्मावति देवी	८०	लोक गायिका	सगोलबन्द, मणिपुर
२१.	ओइनाम लुखोइ मैतै	६३	लोक गायिका	सगोलबन्द, मणिपुर
२२.	शोग्राकपम बिमोल मैतै	४५	लोक साहित्य की जानकारी	इरोम मैज़ाओ मणिपुर